I.S.S.N. 0975-6531

₹50/-

वैचारिकी

VAICHARIKI

सितम्बर-दिसम्बर (संयुक्तांक) 2021 ✱ भाग 37 - अंक 5-6

आचार्य चतुरसेन कृत अर्थ-भाष्यम् विशेषांक
(पौराणिक भारत)

आचार्य चतुरसेन
(1891-1960)

भारतीय विद्या मन्दिर, कोलकाता

• वैचारिकी •
सितम्बर-दिसम्बर 2021 भाग 37 अंक 5-6

भारतीय विद्या मंदिर द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

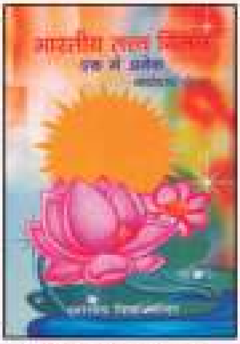

भारतीय तत्त्व चिंतन
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 150/- पृ.सं. 190
ISBN : 978-81-89302-15-9

रसो वै सः
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 150/- पृ.सं. 165
ISBN : 978-81-89302-16-7

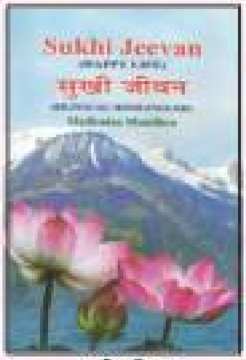

सुखी जीवन
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 275/- पृ. सं. 218
ISBN : 978-81-89302-52-8

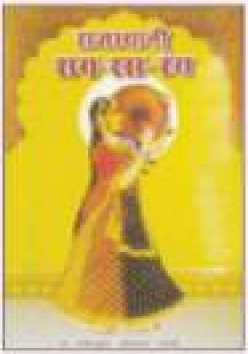

राजस्थान राग-रस-रंग
डॉ. रामेश्वर 'आनंद' सोनी
मूल्य 500/- पृ. सं. 384
ISBN : 978-81-89302-33-7

मानव मूल्य परिभाषाएं और व्याख्याएं
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 550/- पृ. सं. 304
ISBN : 978-81-89302-52-8

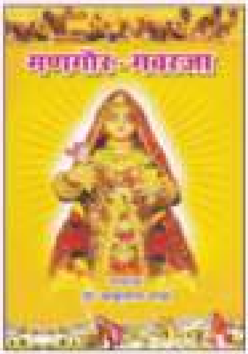

गणगौर-गवरजा
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 400/- पृ. सं. 264
ISBN : 978-81-89302-63-4

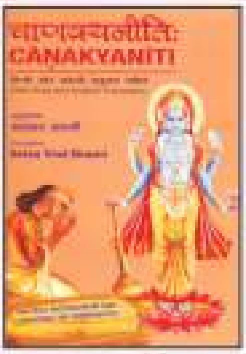

चाणक्यनीतिः
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 295/- पृ.सं. 194
ISBN : 978-81-89302-42-9

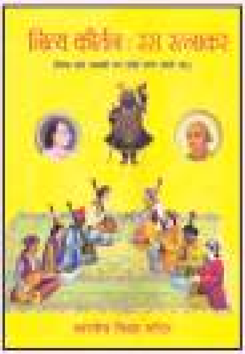

नित्य कीर्तन : रस रत्नाकर
मूल्य 900/- पृ.सं.-554
ISBN : 978-81-89302-35-1

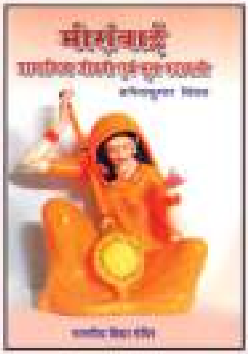

मीरांबाई
प्रामाणिक जीवनी एवं मूल पदावली
संपा. ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल
मूल्य 900/- पृ.सं. 584
ISBN : 978-81-89302-41-2

पुस्तकादेश हेतु संपर्क करें :- शंकरलाल सोमानी # मोबाइल : 09830559364 # ई-मेल : shankar.somani@simplexinfra.com

वैचारिकी

भारतीय विद्या मन्दिर की द्वैमासिक शोध प्रधान पत्रिका

वर दे, वीणावादिनि वर दे !
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव भारत में भर दे !
काट अंध-उर के बंधन-स्तर बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर;
कलुष-भेद-तम हर प्रकाश भर जगमग जग कर दे!
नव गति, नव लय, ताल-छंद नव नवल कंठ, नव जलद-मन्द्ररव;
नव नभ के नव विहग-वृंद को नव पर, नव स्वर दे!
वर दे, वीणावादिनि वर दे!

अध्यक्ष व प्रधान सम्पादक
डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा

सम्पादक
डॉ. बाबूलाल शर्मा

प्रबंध सम्पादक
शंकरलाल सोमानी

I.S.S.N. 0975-6531 **वैचारिकी** वर्ष : 37 अंक 5-6

(धर्म-दर्शन-विज्ञान, साहित्य-लोकसाहित्य, इतिहास-पुरातत्व, कला-लोककला)

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त

सितम्बर-दिसम्बर 2021 ● भाद्रपद कृष्ण 10-पौष कृष्ण 12, वि. सं. 2078 ● रु. 50

आचार्य चतुरसेन शास्त्री कृत अर्थ भाष्यम् विशेषांक

अनुक्रम

● **अध्यक्षीय** 03

● **सम्पादकीय** 04

● **पहला प्रकरण** 06

रावण की 'रक्ष' संस्कृति, तत्कालीन भारत की बहिष्कार-नीति, रावण का दुर्धर्ष कार्य, वेद का रावण-कृत सम्पादन, कृष्णयजुर्वेद ही रावणकृत सभाष्य वेद है, आर्य-अनार्यों का नया संगठन।

● **दूसरा प्रकरण** 16

आर्य संस्कृति पर आसुरी प्रभाव, जन्दावस्ता और छन्दवेद।

● **तीसरा प्रकरण** 20

असुर आचार्यों की सम्पन्नता, गीता में आसुरी-तत्व, दर्शन और सम्प्रदाय।

● **चौथा प्रकरण** 27

अत्रि, अरब, असुर, आर्यवीर्यान, ईरान-पर्शिया, उत्तर कुरु, किष्किन्धा, चन्द्र और चन्द्र वंश, दक्षिणारण्य, दाशराज्ञ।

● **पांचवां प्रकरण** 44

देव, दैत्य-दानव, नाग, नृसिंह, नरबलि, नरमांस-भक्षण, नरमुण्ड।

● **छठा प्रकरण** 51

पौराणिक-वंशावलियां, पृथु, प्रलय।

● **सातवां प्रकरण** 62

बेबीलोनियां, भृगुवंश और दैत्यगुरु शुक्राचार्य,मनुर्भरत वंश/सतयुग, मय।

● **आठवां प्रकरण** 70

यम, ययाति और उनका वंश, राक्षस।

● **नवां प्रकरण** 72

राम, सूर्यवंश (मूल), राम के समकालीन-नृपति, यदुवंश-माथुर शाखा में मधु, वाल्मीकि और उनकी रामायण, राम एक महान् सांस्कृतिक पुरुष, राम मूर्ति पूजन, होमर और वाल्मीकि, विजयादशमी, सीता का अग्नि-प्रवेश और परित्याग, विष्णु-अवतार राम, तुलसी के राम, हिन्दी साहित्य में रामचरित।

● **दसवां प्रकरण** 88

कपिल, रुद्र-शंकर-शिव-महादेव, लंका, वराह, वशिष्ठ, वरुण-ब्रह्मा-कर्त्तार– Lord Creator-Elohim (इलाही) Orunzd, वशलोक, वैकुण्ठ, विश्वमित्र, वेद-वेदांग, वेद और इतिहास, सायण-प्रसिद्ध वेद भाष्यकार, वेद का रावण भाष्य, वेदों के अन्य भाष्यकार, ब्राह्मण ग्रंथ और निरुक्त, पाश्चात्यों का वेदाध्ययन, आधुनिक भारतीय वेदाध्ययन, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्व वेद।

● **ग्यारहवां प्रकरण** 106

वैदिक संस्कृति, यज्ञों में पशुवध, शिश्न देवाः, यौन अभिव्यक्ति, सतयुग, सतयुग का भोगकाल, ऐतिहासिक दृष्टि, सतयुग की मुख्य-मुख्य ऐतिहासिक घटनायें, प्रलय, वैकुण्ठ, राजा की मर्यादा, वेदोदय, सूर्य-विष्णु-विवस्वान्-आदित्य-मित्र, सुषा, सत्यलोक, सुमेरु, क्षीर सागर, स्वर्ग, समसामयिकजन।

● **परिशिष्टानि** 123

संपादकीय कार्यालय

भारतीय विद्या मंदिर

12/1, नेली सेनगुप्ता सरणी

कोलकाता-700087

दूरभाष : 033-71001614

ई-मेल : bvm.vaichariki@gmail.com

वेबसाइट : www.bharatiyavidyamandir.org

सदस्यता शुल्क

एक प्रति 50/- रुपये

वार्षिक 300/- रुपये

द्वैवार्षिक 600/- रुपये

भुगतान

Payee's Name :

BHARATIYA VIDYA MANDIR

Current A/c.No. : 32030320176

Bank : State Bank of India

Branch : New Market

IFSC Code No. : SBIN0004662

■ प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु लेखक-प्रकाशक की अनुमति आवश्यक।

■ प्रकाशित लेखादि में अभिव्यक्त विचारों से प्रकाशक-सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

■ समस्त विवादों के लिए न्यायालय क्षेत्र कोलकाता होगा।

अध्यक्षीय

मुझे ऐतिहासिक उपन्यासों को पढ़ने में अभिरुचि है। हिंदी के ऐतिहासिक उपन्यास साहित्याकाश में शुक्र के समान प्रकाशमान और आकर्षक प्रकट हुए 1891 में आचार्य चतुरसेन। वे बहुमुखी प्रतिभा के रचनाकार थे। 32 उपन्यास, नाटक, करीब 450 कहानियां, गद्य गीत, इतिहास, धर्म, राजनीति, समाज, स्वास्थ्य-चिकित्सा आदि विभिन्न विषयों पर उनकी लेखनी प्रवाहमान रही। उपन्यासों में वैशाली की नगरवधू व सोमनाथ, बहुत प्रसिद्ध हुए, मेरे मत में इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति वयं रक्षामः उपन्यास है जिसमें उन्होंने विस्तार से रावण-कथा कही है जिसमें रावण का अद्‌भुत चरित्र-चित्रण अभिभूत कर देता है। इस उपन्यास को लिखने में उन्हें बहुत शोध-कार्य करना पड़ा। इस उपन्यास में प्राग्वेदकालीन नर, नाग, देव, दैत्य-दानव, आर्य, अनार्य आदि विविध नृवंशों के पुरातन रेखाचित्र हैं। इस उपन्यास में उन्होंने जिन्हें मिथ की दृष्टि से न देखकर यथार्थ रूप में उपस्थित किया है। इस उपन्यास में प्राग्वैदिककालीन एवं वैदिककालीन इतिहास, भूगोल और समाज का विस्तृत परिचय मिलता है। चतुरसेनजी ने वेद, पुराण, स्मृतिग्रंथ एवं अन्य ग्रंथों के साथ ही पारस, यूनान व अन्य देशों के ग्रंथों का अध्ययन भी किया। उन्होंने देशी-विदेशी शोधकर्त्ता विद्वानों के शोधकार्य के अध्ययन व ज्ञान मंथन के फलस्वरूप जो नवनीत प्रकट हुआ उसे इस उपन्यास के रूप में प्रस्तुत किया। इसमें प्राचीन काल के समाज, वंशों और व्यक्तित्वों के ऊपर आचार्य जी ने बहुत-सी सामग्री इकट्ठी की जो इस कृति में समाहित है। यद्यपि रावणकालीन या रामकालीन भूगोल के विषय में उनकी स्थापना से जिज्ञासापूर्ण असहमति रही, क्योंकि उन्होंने उस काल में भारत, पूर्वी द्वीपों, लंका, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका आदि को एक ही स्थल क्षेत्र में प्रदर्शित किया है जबकि भूगोल की यह स्थिति लाखों वर्ष पहले रही होगी। अस्तु। अध्ययन करते समय उन्होंने बहुत से नोट्स भी बनाए होंगे और उन्हीं के आधार पर उन्होंने प्राचीन संदर्भों को समझाने के लिए 'अर्थभाष्यम्' नाम से एक शोध ग्रंथ तैयार किया जिसकी एक प्रति आदरणीय रामरंगजी के माध्यम से हमें उनके दिल्ली स्थित परिवार से प्राप्त हुई। इसकी प्राप्ति में श्री शंकरलाल सोमानी का प्रयास उल्लेखनीय है। स्व. सोहनलालजी रामरंग (दिल्ली) का आग्रह था कि इस उपयोगी ग्रंथ का प्रकाशन करें। इसका प्रकाशन कर हमें एक सुख और आत्मगौरव का अनुभव हो रहा है। विद्वानों, साहित्य-मर्मज्ञ, शोधार्थियों के लिए मैं यह सामग्री अत्यंत उपयोगी समझता हूं।

इस शोधपरक सामग्री का सुसम्पादन कर डॉ. बाबूलाल शर्मा ने वैचारिकी का यह 'आचार्य चतुरसेनकृत अर्थ-भाष्यम् विशेषांक' तैयार कर इसका प्रूफ संशोधन का श्रम-साध्य कार्य भी स्वयं ही किया है। इसके शब्द संयोजन व अंक सज्जा का कार्य श्री संजय सिंह ने अत्यंत निष्ठापूर्वक किया। आशा है विद्वानों और सुधी पाठक बन्धुओं को वैचारिकी का यह विशेषांक पसंद आयेगा।

– डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा

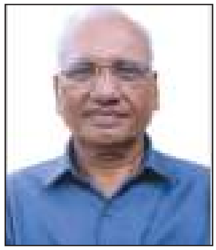

सम्पादकीय

आयुर्वेदाचार्य चतुरसेन शास्त्री (1891- 1960) आयुर्वैदिक चिकित्सक थे, परन्तु वे वैद्य के रूप में नहीं अपितु लेखक के रूप में प्रसिद्ध हुए। वे बचपन से ही आर्य समाज से प्रभावित थे। उन्होंने अपने जीवनकाल के 50 वर्षों में खूब लिखा। परिणामस्वरूप उनकी साहित्य, धर्म, राजनीति, इतिहास, समाजशास्त्र, स्वास्थ्य, चिकित्सा जैसे विभिन्न विषयों पर 186 पुस्तकें प्रकाशित हुईं। आचार्यजी का लेखन विविधात्मक है। साहित्यिक क्षेत्र में उन्होंने गद्य-काव्य, कहानी, उपन्यास, जीवनी, संस्मरण इत्यादि लिखकर अपना विपुल योगदान दिया।

यहां आचार्यजी के साहित्य-सृजन से संबंधित दृष्टिकोण को उद्धृत करना उचित लग रहा है, वे अपने उपन्यास वयं रक्षामः (1955 ई.) के 'पूर्व निवेदन' में लिखते हैं-'साहित्य जीवन का इतिवृत्त नहीं है। जीवन और सौंदर्य की व्याख्या का नाम साहित्य है। ... साहित्य का सत्य ज्ञान पर अवलम्बित नहीं है, भाव पर अवलम्बित है। एक ज्ञान दूसरे ज्ञान को धकेल फेंकता है। नये आविष्कार पुराने आविष्कारों को रद्द करते चले जाते हैं। पर हृदय के भाव पुराने नहीं होते। भाव ही साहित्य को अमरत्व देता है। उसी से साहित्य का चिर सत्य प्रकट होता है।' सत्य और साहित्य के सत्य में भेद करते हुए वे लिखते हैं– 'सत्य और साहित्य के सत्य में भेद है। जैसा है वैसा ही लिख देना साहित्य नहीं है। हृदय के भावों की दो धाराएं हैं; एक अपनी ओर आती है, दूसरी दूसरों की ओर जाती है। यह दूसरी धारा बहुत दूर तक जा सकती है– विश्व के उस छोर तक। इसलिए जिस भाव को हमें दूर तक पहुंचाना है, जो चीज दूर से दिखानी है, उसे बड़ा करके दिखाना पड़ता है। परन्तु उसे ऐसी कारीगरी से बड़ा करना होता है, जिससे उसका मूल रूप बिगड़ न जाए, जैसे छोटे फोटो को एन्लार्ज किया जाता है।'

आचार्यजी की दृष्टि में साहित्यकार का महत्वपूर्ण कार्य है सत्य की प्रतिष्ठा, लेकिन वे लिखते हैं– 'केवल सत्य की ही प्रतिष्ठा से साहित्यकार का काम पूरा नहीं हो जाता। उस सत्य को उसे सुन्दर बनाना पड़ता है। साहित्य का सत्य यदि सुन्दर न होगा तो विश्व उसे कैसे प्यार करेगा? इसलिए सत्य में सौंदर्य की स्थापना करनी पड़ती है। सत्य में जब सौंदर्य की स्थापना होती है, तब साहित्य कला का रूप धारण कर जाता है। सत्य में सौंदर्य का मेल होने से उसका मंगल रूप बनता है। यह मंगल रूप ही हमारे जीवन का ऐश्वर्य है। जीवन जब ऐश्वर्य से परिपूर्ण हो जाता है, तब वह आनन्द रूप हो जाता है। यही है 'सत्यं शिवं सुन्दरम्'।'

आचार्य चतुरसेन विशेष रूप से कथाकार के रूप में प्रसिद्ध हुए। उन्होंने 450 कहानियों तथा 32 उपन्यासों की रचना की। उनका यह कथात्मक लेखन अधिकांशतः इतिहास पर आधारित है जिसमें उन्होंने अतीत को साकार किया है। आचार्य चतुरसेन मुख्यतः अपने उपन्यासों के लिए चर्चित रहे। 1918 में उन्होंने अपने प्रथम उपन्यास हृदय की परख की रचना की और फिर

उपन्यास रचना का सिलसिला चल पड़ा। वैशाली की नगरवधू, वयं रक्षामः, सोमनाथ व गोली उनके कालजयी उपन्यास माने जाते हैं। अपने उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने कई ऐतिहासिक एवं पौराणिक अविस्मरणीय चरित्र हिन्दी साहित्य को प्रदान किये और इनमें इतिहास के विभिन्न काल-खंडों के राजनीतिक व सामाजिक परिवेश को साकार किया। जैसे 'सोना और खून' उपन्यास के दूसरे भाग में 1857 की क्रांति के दौरान मेरठ अंचल में लोगों की शहादत का मार्मिक वर्णन किया गया है। इसी तरह 'गोली' उपन्यास में राजस्थान के रजवाड़ों में गोलियों (दासियों) के सेविका होने के अलावा राजा-महाराजाओं की भोग्या होने का मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है। उनका प्रसिद्ध उपन्यास 'सोमनाथ' 1024 ई. में महमूद गजनवी द्वारा सोमनाथ मंदिर पर आक्रमण कर उसे लूटने की घटना पर आधारित है। इस आक्रमण व लूट के मूल कारण में रही तत्कालीन राजपूत राजाओं की संकुचित दृष्टि व पारस्परिक फूट, सोमनाथ मंदिर के वैभव तथा उसके विलासिता का अड्डा बन जाने तथा धार्मिक साम्प्रदायिक स्वार्थ से उत्पन्न गद्दारी का तथ्यात्मक विशद चित्रण इसमें किया गया है।

आचार्य चतुरसेन के सर्वाधिक प्रसिद्ध और लोकप्रिय उपन्यासों (सोमनाथ, वैशाली की नगर वधू, वयं रक्षामः) में से 'वैशाली की नगर वधू' (1948) उनका अत्यंत चर्चित रहा उपन्यास है जिसमें उन्होंने बुद्धकालीन सामाजिक-राजनीतिक परिवेश के साथ-साथ कृषि-व्यापार व शिल्प का हृदयग्राही चित्रण किया है। जैसा कि स्वयं आचार्य चतुरसेन ने लिखा कि वैशाली की नगरवधू लिखकर मैंने हिन्दी उपन्यासों के संबंध में यह नया मोड़ उपस्थित किया कि अब हमारे उपन्यास केवल मनोरंजन के चरित्र-चित्रण भर की सामग्री न रह जायेंगे। वे लिखते हैं, 'यह सत्य है कि यह उपन्यास है, परन्तु इससे अधिक सत्य यह है कि यह एक गम्भीर रहस्यपूर्ण संकेत है जो उस काले पर्दे के प्रति है जिसकी ओट में आर्यों के धर्म, साहित्य, राजसत्ता और संस्कृति की पराजय, मिश्रित जातियों की प्रगतिशील विजय सहस्राब्दियों से छिपी हुई है जिसे संभवतः किसी इतिहासकार ने आंख उघाड़कर देखा नहीं है।'

आचार्य चतुरसेन अपने उपन्यासों में औपन्यासिक शिल्प की बजाय इतिहास एवं ऐतिहासिक तथ्यों की खोजबीन को प्रमुखता देते हैं। इसे लेकर उनकी आलोचना भी होती रही कि वे अपने उपन्यासों में कथातत्व की बजाय ऐतिहासिक विवरण देने में ज्यादा रुचि रखते हैं। सच है आचार्यजी की निष्ठा इतिहास में है, वस्तुतः वे इतिहास को उपन्यास के रूप में लिखते हैं। प्रारम्भ में वे अपने उपन्यासों में मनोरंजनात्मकता को महत्व देते रहे परन्तु बाद में वे उनकी ऐतिहासिक उपयोगिता के प्रति सजग हो गये थे। इसी दृष्टि से उन्होंने वैशाली की नगरवधू की रचना के बाद रचित उपन्यास वयं रक्षामः के संबंध में लिखा था– 'अब यह मेरा नया उपन्यास 'वयं रक्षामः' इस दिशा में अगला कदम है। इस उपन्यास में प्राग्वेद्कालीन नर, नाग, देव, दैत्य, दानव, आर्य, अनार्य आदि विविध नृवंशों के जीवन के वे विस्मृत पुरातन रेखाचित्र हैं, जिन्हें धर्म के रंगीन शीशे में देखकर सारे संसार ने उन्हें अंतरिक्ष का देवता मान लिया था। मैं इस उपन्यास में उन्हें नर-रूप में आपके समक्ष उपस्थित करने का साहस कर रहा हूं। 'वयं रक्षामः' एक उपन्यास तो अवश्य है; परन्तु वास्तव में वह वेद, पुराण, दर्शन और वैदेशिक इतिहास-ग्रंथों का दुस्सह अध्ययन है।' वे लिखते हैं–'सत्य की व्याख्या साहित्य की निष्ठा है। उसी सत्य की प्रतिष्ठा में मुझे प्राग्वेदकालीन नृवंश के जीवन पर प्रकाश डालना पड़ा है। अनहोने, अविश्रुत, सर्वथा अपरिचित तथ्य आप मेरे इस उपन्यास में देखेंगे; जिनकी व्याख्या करने के लिए मुझे उपन्यास पर तीन सौ से अधिक पृष्ठों का भाष्य भी लिखना पड़ा है।' आचार्यजी ने इस भाष्य का नाम 'अर्थ भाष्यम्' रखा जिसमें 'अर्थ' का तात्पर्य व्याख्या, अभिप्राय, इष्ट, वस्तुतः, तथ्य प्रकट होता है। इसमें उनके द्वारा भारत के प्रागैतिहासिक युग से संबंधित श्रमसाध्य खोजबीन की गई है और इसका वयं रक्षामः उपन्यास से अलग भी स्वतंत्र महत्व है। हमारे पुराणों में इस काल के नृवंशों का विवरण उपलब्ध है। आचार्य चतुरसेन ने अपने इस भाष्य में पौराणिक भारत का तथ्यात्मक विवेचन अथवा भाष्य या व्याख्यान किया है। इससे किसी की असहमति भी हो सकती है, तथापि आचार्यजी ने जिस निष्ठा व परिश्रम से यह शोध-कार्य किया है, वह प्रणम्य है। मेरी यह धारणा है कि 'वैचारिकी' के इस 'अर्थ भाष्यम् विशेषांक' से पौराणिक भारत अथवा पौराणिक उल्लेखों से संबंधित कितने ही तथ्यों का प्रकाशन होगा।

–डॉ. बाबूलाल शर्मा

अर्थ भाष्यम् (पौराणिक भारत)

आचार्य चतुरसेन शास्त्री

पहला प्रकरण

1. रावण की 'रक्ष' संस्कृति

मसीह से लगभग अड़तीस शताब्दी पूर्व एक तेजस्वी और मेधावी तरुण आस्ट्रेलिया महाद्वीप से अपने साहसिक वीर साथियों सहित उत्तर पच्छिम द्वीप समूहों को जय करता हुआ स्वर्ण लंका की ओर बढ़ा। उसने भारत के समस्त दक्षिणी द्वीप समूहों-अंग द्वीप (सुमात्रा) यव द्वीप (जावा), मलय द्वीप (मलाया), शंख द्वीप (बोर्नियो), कुश द्वीप (अफ्रीका), बराह द्वीप (मैडागास्कर) पर अधिकार कर लिया और चारों ओर समुद्र से घिरी हुई, बड़ी-बड़ी सोने की खानों से भरी हुई लंका को अपनी राजधानी के लिए चुना।[1]

इस तेजस्वी तरुण का नाम रावण था। उन दिनों लंका का अधिपति लोकपालधनेश वैश्रवण कुबेर यक्षराज था।[2] अपने वक्तव्य को आगे बढ़ाने से प्रथम हम यहां रावण और कुबेर का वंश-परिचय देना उचित समझते हैं। आस्ट्रेलिया का अत्यंत प्राचीन नाम 'आन्ध्रालय' है। अत्यंत प्राचीन काल में राजा कुशिक के पौत्र विश्वामित्र के कुछ वंशजों को बहिष्कृत कर दिया गया था।[3] ये बहिष्कृत कौशिक जन आन्ध्र नाम से प्रसिद्ध हुए और आंध्रालय में बस गए। आधुनिक खोज से पता चलता है कि आस्ट्रेलिया के मूल निवासियों की तथा भारतीय द्रविड़, कोल, भील और संथालों की एक ही मूल भाषा है, उनका रूप-रंग भी वही था, वे अनेक जातियों में विभक्त हैं, किसी के हाथ का छुआ नहीं खाते, न अपनी जाति को दूसरी जाति में मिश्रित होने देते थे। उनके पास भारत का प्राचीन अस्त्र अक्षय तूणीर (Boomerang) था, वे पुनर्जन्म में विश्वास करते थे[4]। उन दिनों भारत और आस्ट्रेलिया के बीच इतना अंतर न था तथा सीलोन और मैडागास्कर की भूमि भी बहुत विस्तृत थी तथा भारत को आस्ट्रेलिया से जोड़ती थी तथा इन समस्त टापुओं में एक ही जाति निवास करती थी। इन द्वीपों को भारत के अनुद्वीप ही माना जाता था और इन द्वीपपुंजों का विशाल भूभाग लंका महाराज्य के ही अंतर्गत था। कालान्तर में प्रजापति कश्यप के पुत्र महर्षि पुलस्त्य आंध्रालय (आस्ट्रेलिया) गए और वहां के महिदेव तृणविन्दु के अतिथि बने। उन दिनों राजसत्ता और धर्मसत्ता, सभी आर्य अनार्य जातियों में संयुक्त थी। अधिकांश में ऐसा ही था। तृणविन्दु भी धर्म और राज्य दोनों का अधिकारी था। उसने पुलस्त्य को अपनी पुत्री ब्याह दी। इस स्त्री से पुलस्त्य को 'विश्रवा' नामक पुत्र हुआ, जिसे पुलस्त्य ने सब शास्त्रों में पारंगत कर दिया। युवा होने पर विश्रवा को भरद्वाज ने अपनी

पुत्री ब्याह दी। उससे 'वैश्रवण' का जन्म हुआ। वैश्रवण बड़ा तेजस्वी, मेधावी और उत्साही तरुण था, उसे धनेश कुबेर का पद दे कर लोकपाल बना दिया गया। पुष्पक विमान भी उसे भेंट कर दिया गया। पिता के परामर्श से वह दक्षिण समुद्र के कूल पर त्रिकूट पर्वत पर बसी हुई लंकापुरी को अपनी राजधानी बनाकर रहने लगा तथा अपने परम ऐश्वर्य को भोगने लगा।

इस समय यह नगरी सूनी पड़ी थी। उसके चारों ओर सुदृढ़ दुर्ग (परकोटा) था, गहरी खाई थी। अस्त्र-शस्त्र भी वहां भरपूर थे। वैश्रवण कुबेर ने लोकपाल होकर नगरी को फिर से बसाया, उसे उन्नत किया और देव, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, असुर तथा दानवों से सम्पन्न किया।[5]

वास्तव में यह नगरी दैत्यों की थी। हेति और प्रहेति नामक दो सम्पन्न दैत्य थे। हेति ने काल दैत्य की बहिन भया से विवाह किया, उसका पुत्र विद्युत्केश हुआ, जिसका विवाह संध्या की पुत्री सालकटंकटा से हुआ। उससे सुकेश नामक पुत्र हुआ। उसे विश्वावसु गन्धर्व ने अपनी पुत्री वेदवती ब्याह दी। इनके माली, सुमाली और माल्यवान् तीन प्रतापी पुत्र हुए। इन्हीं तीनों भाइयों ने दक्षिण समुद्र तट पर त्रिकूट सुवेल पर्वत पर तीस योजन चौड़ी और सौ योजन लम्बी लंकापुरी बसाई, तथा उसे विविध भांति सम्पन्न किया। इन्हें नर्मदा नाम की गन्धर्वी ने अपनी तीन पुत्रियां ब्याह दी थीं। ये तीनों तेजस्वी भाई दैत्यराज बलि (प्रहलाद का पौत्र) के प्रधान सेनापति थे। गन्धर्व पुत्रियों से माल्यवान को सात पुत्र और एक पुत्री हुई, सुमाली को ग्यारह पुत्र और चार पुत्रियां हुईं, माली को चार पुत्र हुए। इन तीनों भाइयों का दैत्य परिवार इस प्रकार वृद्धिगत होता गया। धन-संपदा भी खूब बढ़ी। इसके बाद दैत्यराज बलि दैत्य से विष्णु (सूर्य) का युद्ध हुआ, जिसमें बलि बन्दी हुआ और ये तीनों दैत्य बन्धु विकट संग्राम में सेना सहित पराजित हुए।[6] इस संग्राम में इनके बहुत से परिजन और योद्धा मारे गए। बड़ा भाई माली रण-भूमि में ही काम आया। सुमाली और माल्यवान् भाग कर पाताल लोक में जा छिपे।[7] लंका लौटने का उन्हें साहस न रहा। इससे लंका चिरकाल तक उजाड़ और सूनी पड़ी रही। उसी सूनी लंका पर वैश्रवण ने लोकपाल धनेश कुबेर होकर अधिकार कर लिया।[8]

कुछ समय बाद सुमाली फिर इस प्रदेश में आया। वह वृद्ध हो गया था। उसके साथ उसकी प्राणाधिक प्रिय पुत्री कैकसी भी थी। उसकी अभिलाषा थी कि किसी प्रकार वह अपनी लंका का उद्धार करे। परन्तु अग्नि के समान तेजस्वी कुबेर लोकपाल को देख उसका साहस न हुआ। उसने सोचा कि अब ऐसा क्या काम करूं कि मेरी भलाई हो। उसने दूरदर्शिता से विचार कर पुलस्त्य-पुत्र विश्रवा से अपनी पुत्री कैकसी का ब्याह कर दिया। इस विवाह से उस दैत्य का संबंध प्रजापति कश्यप के वंश से हो गया। अब वह पुत्री के पुत्र की प्रतीक्षा धैर्य से करने लगा। विश्रवा के कैकसी से तीन पुत्र और एक पुत्री हुई– पुत्र रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण, पुत्री सूर्पनखा। विश्रवा ने तीनों पुत्रों को यथावत् शिक्षा दी। अब वे ज्योंही युवा हुए, रावण को उसके नाना सुमाली ने अपनी पैतृक नगरी लंका लेने को उकसाया, वहां के स्वर्ण रत्न, शस्त्रागार एवं वैभव की बहुत-बहुत चर्चा की और उसके मन में वहां बैठकर महाराज्य-संगठन की योजना उत्पन्न कर दी। रावण महत्वाकांक्षी, साहसी और मेधावी था। वह अपने भाइयों, मित्रों और तरुण साथियों को लेकर आंध्रालय से निकला और एक-एक कर सब द्वीप समूहों को जय करता हुआ लंका के सम्मुख आ धमका।[9] उसका प्रधान सलाहकार उसका नाना सुमाली उसके साथ था। सुमाली के दो पुत्र प्रहस्त और अकम्पन तथा माल्यवान के पुत्र विरूपाक्ष तथा मारीचि भी उसके साथ थे। लंका के निकट पहुंच कर सुमाली ने रावण को छाती से लगा कर कहा- पुत्र, बहुत दिनों के हमारे मनोरथ अब पूर्ण होंगे। विष्णु का अब हमें कोई भय नहीं। मेरी लंका में तुम्हारा भाई कुबेर रहता है, वह यदि राजी से उसे छोड़ दे तो ठीक है, नहीं तो हम शस्त्र से उसे मार

कर तुम्हें लंकाधीश्वर बनावेंगे। तुम्हीं डूबते हुए दैत्य वंश के सहारे हो, परन्तु रावण नाना की यह बात सुनकर चुप हो गया। वह इस सोच में पड़ा कि कैसे बड़े भाई से ऐसा प्रस्ताव करे। परन्तु सुमाली के पुत्र और रावण के मामा तथा मंत्री प्रहस्त ने खोद-खोद कर रावण को समझाया– 'वीर पुरुषों में भाईचारा नहीं होता। दिति और अदिति दोनों सगी बहिनें थीं तथा दोनों ही प्रजापति कश्यप की पत्नी थीं। पर अदिति से देव और दिति से दैत्य जन्मे। अपने पराक्रम से तथा मातृपक्ष से ज्येष्ठ होने से सारी पृथ्वी दैत्यों ही के अधिकार में थी, पर विष्णु ने छल-बल से दैत्यों का नाश करके देवों को आगे बढ़ाया।'

मंत्री प्रहस्त की यह बात सुनकर रावण ने प्रहस्त को ही अपना दूत बनाकर कुबेर के पास भेजा। उसने लोकपाल कुबेर से कहा– मुझे आपके भाई दशग्रीव रावण ने यह निवेदन करने भेजा है कि यह लंकापुरी और लंका का साम्राज्य हम दैत्यों का है, इसलिए इसे आप हमें लौटा दें तो ठीक है। यह एक धर्म की बात है। इसमें हमारा आपका प्रेम भी बना रहेगा। कुबेर ने कहा– जब पिता की आज्ञा से मैंने लंका में वास किया था; तब यह सूनी थी, इसका कोई स्वामी न था, मैंने इसे सुसम्पन्न और समृद्ध किया है। अब रावण भी आकर रहे मुझे आपत्ति नहीं है। अभी रावण के साथ मेरा बंटवारा नहीं हुआ है, सब धन और राज्य के स्वामी पिता ही हैं। फिर मैं पिता की अनुमति भी लूंगा।

कुबेर ने जब पिता विश्रवा से सलाह की तो उसने कहा– रावण दैत्यों के बल से समृद्ध है। तेरे लिए यही अच्छा है कि लंका को छोड़ दे। दैत्य-रावण प्रजा से परिपूर्ण है और उसने सारे द्वीप-समूहों पर अधिकार कर लिया है, सो मेरी सम्मति में सुरक्षा इसी में है कि तुम कैलास पर मन्दाकिनी के तट पर अपनी राजधानी बनाओ। वहां तेरी सजातीय अप्सरा गन्धर्व, किन्नर, देव आदि जातियां भी हैं।

कुबेर ने पिता की बात मान लंका खाली कर दी। रावण ने अपने दल-बल सहित लंका अधिकृत कर ली और 'रक्षामः' कहकर अपने को समुद्र का रक्षक घोषित कर दिया तथा राक्षस जाति का संगठन किया। इस प्रकार वह 'रक्ष' संस्कृति का प्रतिष्ठाता हुआ। राक्षसों ने मिलकर रावण को सम्पूर्ण द्वीप-समूहों का अधिपति स्वीकार कर लिया। अपनी बहिन सूर्पनखा का विवाह दानव विद्युज्जिह्व के साथ कर दिया। रावण ने दिति के पुत्र मय दैत्य की पुत्री मन्दोदरी से स्वयं का विवाह किया, फिर वैरोचन की दौहित्री वज्रज्वाला से कुम्भकर्ण का और गन्धर्वों के राजा शैलूष की कन्या सामा से विभीषण का विवाह कर दिया। दिवंगत माली के चारों पुत्र विभीषण के मंत्री हो गये। रावण का साम्राज्य सुगठित होता ही गया, फिर जब उसका महाबली पुत्र मेघनाद युवा हुआ; तो उसने इन्द्र, वरुण, कुबेर और यम इन चारों लोकपालों को जय करने का संकल्प दृढ़ किया।[10] यहां हम पाठकों की सुविधा के लिए दैत्य-राक्षस परिवार का वंश-वृक्ष देकर आगे बढ़ेंगे–

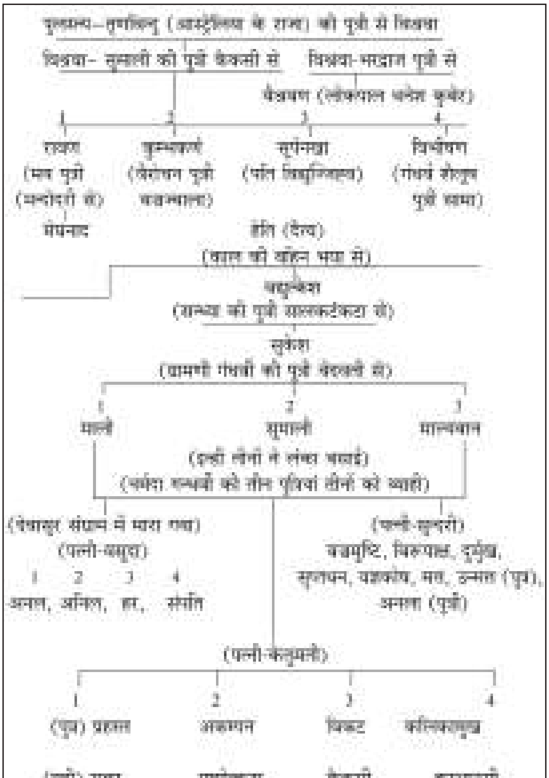

2. तत्कालीन भारत की बहिष्कार-नीति

आर्यों में प्राचीन काल से यह नियम रहा कि सामाजिक श्रृंखला भंग करने वालों को समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था। दण्डनीय जनों को जाति-वहिष्कार के अतिरिक्त प्रायश्चित, जेल और जुर्माने की भी सजा दी जाती थी। प्रायः ये बहिष्कृत जन दक्षिण भारत में भेज दिए जाते थे। धीरे-धीरे इन बहिष्कृत जनों की दक्षिण और वहां के द्वीप पुंजों में दस्यु, दास, महिष, कपि, नाग, पौन्ड्र, द्रविड़, काम्बोज, पारद, खस, पल्लव, चीन, किरात, झल्ल, मल्ल, दरद, शक आदि जातियां संगठित हो गईं। प्रारम्भ में केवल व्रात्य ही जाति-च्युत किए जाते थे, पर पीछे यह निष्कासन उग्र हो गया। राजा सगर ने अपने पिता के शत्रु शक, यवन, काम्बोज, चोल, केरल आदि जनों को जीतकर उनका समूल नाश करना चाहा था, पर पीछे वसिष्ठ के कहने से उन्हें वेद-बहिष्कृत करके दक्षिण के अरण्यों में निकाल दिया।[11] नहुष पुत्र ययाति ने नाराज होकर अपने पुत्र तुर्वसु को सपरिवार जातिभ्रष्ट करके मांसाहारी म्लेच्छों की दक्षिण दिशा में खदेड़ दिया था।[12]

विश्वामित्र ने कहीं से एक लड़का प्राप्त किया और उसे अपने सौ पुत्रों में मुख्य ठहराया। इस पर पचास ने पिता की यह आज्ञा नहीं मानी। उन सबको विश्वामित्र ने क्रुद्ध हो दक्षिण अरण्य में निकाल दिया। उनके वंशज आन्ध्र, पुण्ड्र, शवर, पुलिंद आदि जाति में परिवर्तित हो गये।[13]

इस काल में लोभी वणिक को 'पणिक' कहते थे, इसका अर्थ 'पणलोभी' है। ऐसे लोभी पणिकों को भी आर्यों ने बहिष्कृत करके दक्षिण अरण्य में निष्कासित कर दिया था।[14] वैदिक भाषा में ठग, धोकेबाज और लालची व्यापारी को 'पणि' कहते हैं।[15] आर्यों द्वारा बहिष्कृत होकर दक्षिणारण्य में इन्होंने अच्छा बाजार (पण्य) बसाया और कुछ दिन बाद ये पाण्य कहलाने लगे। फिर उस प्रदेश का नाम भी पाण्डन्य प्रसिद्ध हुआ।

इन निष्कासित पणियों ने सागवान के जहाज बना कर दूर-दूर के देशों में व्यापार-विनिमय किया और पश्चिमी एशिया में भूमध्य सागर के किनारे पर बस्तियां बसा कर रहने लगे। विदेश में भी पणियों ने 'फिनीशिया' और चोलों ने 'चाल्डिया' देश बसाए।[16] वेद में 'मना' शब्द वजन के अर्थ में आया है।[17] फिनीशिया में यह शब्द 'मनह', लैटिन में 'मिन', ग्रीक में 'मिना', बैबिलोनिया में 'मिन' और अंग्रेजी में 'माउण्ड' है जो इसी 'मना' या 'मन' का रूप है। यह शब्द निश्चय ही इन्हीं पणियों के द्वारा विदेशों में गया। ऐसे ही और भी अनेक शब्द हैं। चाल्डिया के तो बहुत से शब्द वैदिक हैं।[18] शब्द साम्य के अतिरिक्त चाल्डिया के डैल्यूज-टेवलर्ट में वैदिक मनु के जल विप्लव की कथा वैसी ही मिलती है, जैसी शतपथ ब्राह्मण में है।

पाश्चात्य पण्डितों ने कुछ काल पूर्व भारत के मूल निवासियों की एक जाति मान कर उन्हें 'एबारिजिनीज' कहना प्रारम्भ किया था। अब वह मन्तव्य रद्द करके उन्हें बाहर से आया हुआ कह कर उनके दो विभाग कर दिए हैं, एक 'कोलारियन' दूसरा 'ड्रविडियन'। इन्हें दो पृथक जाति मानते हुए भी दोनों को स्पष्ट रीति से अभी तक पृथक प्रमाणित नहीं किया गया है। परन्तु वास्तव में वे न तो बाहर से आए हुए जन हैं, न उनकी दो जातियां हैं। वे वास्तव में समय-समय पर बहिष्कृत किए हुए आर्य ही हैं। पाश्चात्य पण्डितों में से सर्वश्री हॉजसन, डाल्टन, क्लाडवेल आदि ने इन जातियों की भाषा, रूप, रंग और शरीर संगठन पर बहुत गवेषणा की है, परन्तु अंतिम तथ्य यही प्रकट होता है कि कोल, भील और संथालों से लेकर दक्षिण के समस्त द्रविड़ एक ही जाति के लोग हैं, एक ही मूल भाषा की शाखाओं को बोलते हैं। कोल और द्रविड़ों से लेकर लंका, मैडागास्कर, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया तक जितनी 'इथियोपिक' उपजातियां हैं सब एक ही संस्कृति और वंश से पृथक हुई हैं[19] जो ब्राह्मणों का संसर्ग छूट जाने से, क्रिया लोप होने से, संस्कारहीनता से भिन्न-भिन्न

जातियां बन गईं।[20] इनमें से बहुत सी तो भारत ही के दक्षिण में बस गईं, बहुत सी अन्य देशों में फैल गईं जिनके उत्तराधिकारी समस्त एशिया, अफ्रीका, अमेरिका और यूरोप के देशों में मिलते हैं और जिन पर विश्व के इतिहासवेत्ता गवेषणा कर रहे हैं।

3. रावण का दुर्धर्ष कार्य

स्वर्ण लंका में अपना सिंहासन स्थापित करके और सम्पूर्ण दक्षिणावर्ती द्वीप-समूहों को अधिकृत करके रावण का ध्यान भारतवर्ष की ओर गया। लंका भारत के चरणों ही में थी रावण के रक्त में शुद्ध और बहिष्कृत दोनों ही आर्यों का रक्त था। उसका पिता विश्रवा आर्य था; और माता दैत्य राजपुत्री थी। उसका पालन-पोषण आर्य विश्रवा के आश्रम में उसी के तत्वावधान में हुआ था, उसकी शिक्षा दीक्षा भी उसके पिता ने अपने अनुरूप दी थी। वेद का उस समय जो स्वरूप था, उसे उसने अपने पिता से बाल-काल ही में अध्ययन कर लिया था। ज्ञात रहे, तब तक वेद ही आर्यों का एकमात्र साहित्य और धर्म-वचन था जो केवल मौखिक था, लेखबद्ध न था। रावण के मातृ पक्ष में दैत्य संस्कृति थी। दैत्य और असुर, देवों तथा आर्यों के भाईबन्द ही थे। परन्तु रहन-सहन और विचार-व्यवहार में दोनों में बहुत अंतर पड़ गया था। विशेषकर बहिष्कृत जातियां आर्यों से द्वेष भी रखती थीं। बहिष्कार का सबसे कटु रूप ब्राह्मणों, पुरोहितों द्वारा संस्कार-क्रिया से उन्हें वंचित रखना तथा यज्ञों से बहिष्कृत समझना था। यह एक ऐसी अपमानजनक बात थी जिसने इन जातियों में आर्यों के विरुद्ध, दैत्यों तथा असुरों से भी अधिक, आर्यों के दामादों बान्धवों ने विद्वेष और विरोध की ज्वाला सुलगा दी। रावण के मन में तीन तत्व काम कर रहे थे। उसका पिता शुद्ध आर्य और विद्वान ऋषि था। उसकी माता शुद्ध दैत्य वंश की थी। उसके बन्धु-बान्धव बहिष्कृत आर्य-वंशी थे। उन्हें क्रिया-कर्म से च्युत कर दिया गया था। इस तेजस्वी पुरुष ने अपने को समुद्र का रक्षक घोषित करके राक्षस उपाधि धारण की, प्रबल बाहुबल से लंका महाराज्य की स्थापना की, जिसमें जावा, बाली, मैडागास्कर, अफ्रीका आदि सात द्वीप भी सम्मिलित थे। इसके बाद उसका ध्यान भारत और भारतीय आर्यों को दलित करने और उन पर अपना आधिपत्य स्थापित करने की ओर गया।

आर्यों और देवों का संगठन उस काल अत्युत्तम था। उन्होंने लोकपालों, दिग्पालों की स्थापना की थी, जो आर्य देश के प्रान्त भाग की रक्षा करते थे। आर्यों और देवों की प्रबल जातियों में तब मरुत, बसु, आदित्य प्रभावशालिनी थीं। चोटी के पुरुषों में इन्द्र, रुद्र, यम, वरुण, कुबेर आदि थे। यम, वरुण, इन्द्र और कुबेर चार लोकपाल थे।

रावण ने देवों और आर्यों के इस संगठन को जड़मूल से उखाड़ फेंकने की योजना बनाई। उसने सांस्कृतिक विप्लव का सूत्रपात किया। उसका मेधावी मस्तिष्क और साहसिक शरीर ही यथेष्ट था, तिस पर उसके साथी-सहयोगियों में उसके नाना सुमाली, मंत्रियों और सेनापतियों में प्रवण, प्रहस्त, महोदर, मारीचि, महापार्श्व, महादंष्ट्र, यज्ञकोष, दूषण, खर, त्रिशिरा, दुर्मुख, अतिकाय, देवान्तक, अकम्पन आदि महारथी रण और राजनीति के पण्डित भी थे। मय दानव की पुत्री मन्दोदरी से विवाह करके उसने एक प्रबल जाति को सम्बन्धी बना लिया था। फिर कुम्भकर्ण से भाई और मेघनाद से पुत्र। अब रावण की सामरिक शक्ति चरम सीमा को पहुंच गई। उसने रामेश्वरम् के निकट समुद्र-मग्न पर्वत-शृंखला के सहारे दक्षिण भारत से सम्बन्ध स्थापित किया। दक्षिण भारत में इस समय दो दल निवास करते थे– एक वे जो बहिष्कृत आर्य थे, दूसरे वे जो विदेशों से आकर भारत में समुद्र के उपकुलों पर आ बसे थे। ये दल आर्य और अनार्य के नाम से प्रसिद्ध थे।[21] रावण ने दोनों को अपने साथ लिया और वैदिक संस्कृति पर आसुरी प्रभाव स्थापित किया।

सबसे प्रथम उसने आर्यों के चार राजा लोकपाल यम, कुबेर, वरुण और इन्द्र को जय करने का

संकल्प किया। उसने राक्षसों तथा दक्षिण के बहिरंग भारतीयों की संयुक्त सेना लेकर भारतीय नरपतियों तथा अपने भाई कुबेर को दलित किया, उसके बाद यम और वरुण को। इन्द्र को बन्दी बनाकर वह लंका में ले आया। मार्ग में जो राज्य, जो सरदार मिला उसी से उसने युद्ध किया। उसका आतंक सम्पूर्ण जम्बू द्वीप में छा गया। केवल दो वीरों से उसे मुंह की खानी पड़ी– एक हैहयवंशी कार्तवीर्य अर्जुन से माहिष्मती (मैसूर) में, दूसरे किष्किन्धा के कपिराज बाली से। इन दोनों से पराजित होकर उसने मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर लिया।[22]

इस प्रकार जम्बूद्वीप और भारत के आर्यदल की राजसत्ता और अधिकार को दलित कर उसने धर्म और अध्यात्म पर भी अपनी छाप लगाई। पाठक जानते हैं- उन दिनों देव, असुरजनों सर्वत्र ही 'महिदेवों' का अधिकार था, अर्थात् धर्म और राज्य दोनों का शासक एक ही था। रावण ने भी सम्पूर्ण आर्य-अनार्य, अधिकृत और अनधिकृत आर्यों तथा आर्यतरों–सब को मिलाकर एक धर्मनीति की प्रतिष्ठा की।

4. वेद का रावण-कृत सम्पादन

सबसे प्रथम रावण ने वेद का सम्पादन किया। उस समय वेद ही एक मात्र आर्य साहित्य था– वह भी मौखिक। अपने पिता से उसने वेद पढ़ा था। उस पर विचार किया था। उसी वेद का उसने सम्पादन किया। ऋचाओं पर उसने टिप्पणियां तैयार की। मूल मंत्रों की व्याख्या की। व्यवहार अध्याय को बीच-बीच में वृद्धिगत किया। इस प्रकार मूल वेद और रावण कृत टिप्पणियां और व्याख्याएं सब मिलकर वेद का एक ऐसा संस्करण तैयार हो गया जो जम्बूदीप के सब आर्यों तथा आर्येतरों के लिए मान्य हो गया। कुछ तो वेद के नाम से, और कुछ रावण के प्रभाव से। आगे चलकर यही रावण-वेद 'कृष्णयजुर्वेद' के नाम से विख्यात हुआ।

कृष्णयजुर्वेद में पशुवध, मद्यपान, स्त्री समर्पण, शिश्नपूजन, गोवध, नरवध, ब्राह्मणवध, कुमारी वध आदि का विधान सम्मिलित हो गया जो वास्तव में बहिष्कृत आर्यों एवं असुरों की परिपाटी थी।

कृष्णयजुर्वेद का तैत्तिरीय ब्राह्मण और उस पर सायण भाष्य में उल्लेख है– 'वाचे पुरुषमालभेत् (तै.ब्रा.), वाग्देवता वै पुरुषं पूरकं स्थूलशरीरमित्यर्थः' (सायण) अर्थात् वाणी के देवता के लिए पुरुष का वध करे।

ब्राह्मणे ब्राह्मणमालभते (तै.ब्रा.) ब्राह्मण जात्यभिमानी देवस्तास्मै कंचित् ब्रह्मवर्चयुक्त ब्राह्मणजातीयं पुरुषमालभते (सायण) अर्थात् ब्राह्मण अभिमानी देवता के लिए ब्रह्मवर्चसयुक्त ब्राह्मण का बध करे।

'आशायै जामिम् (तै. ब्रा) आशायै अलभ्यवस्तु विषयतृष्णाभिमानिन्यै निवृत्तरजस्कां भोगायोग्यां स्त्रियमालभते' (सायण) अर्थात् अलभ्य वस्तु की तृष्णा के अभिमानी देवता के लिए जिस स्त्री का रजोधर्म बन्द हो उसका वध करे।

'प्रतीक्षायै कुमारीम्' (तै.ब्रा.) प्रतीक्षायै लब्धव्यस्य वस्तुनी लाभप्रतीक्षणभिमानित्यै कुमारीमनूढ़ां कन्यामालभते (सायण) अर्थात् लब्ध प्रतीक्षा वाले देवताओं के लिए कुमारी जो अभी युवा नहीं हुई उसका वध करे।

'पशूनेवावरुन्धे सप्त ग्राम्याः पशवः सप्तारण्याः सप्तच्छंदांस्युभय-स्यावरुव्यै।'

अर्थात् यज्ञ में गाय घोड़ा आदि सात ग्राम्य पशु व काले हिरण आदि सात जंगली जीव, अथवा दोनों प्रकार के सात पशुओं की योजना करे (तैतिरीयापस्तंब हिरण्य केशी काण्ड-6, (प्र. 1 अ. 8)।

'आदद ऋतस्य त्वा देव हविः पाशनाऽऽरभे (वही)' सावित्रेण रशनामादाय यशोर्दक्षिणे बाह्यौ परिवीयोर्ध्वमृत्कृष्य आदद इति। दक्षिणोऽधः शिरसि पाशेनाक्ष्णया प्रतिमुच्य घर्षा मामुषानित्युत्तरतो यूपस्य नियुनक्ति दक्षिणत एकादशिनान् इति। अक्ष्णया परिहरति बध्यंहि प्रत्यंचं प्रतिमुंचति व्यावृत्यै (सायणभाष्य)। अर्थात् देवस्यत्व. इस मंत्र से रस्सी लेकर तत्सवितुः इस मंत्र से पशु की दाहिनी भुजा

बांध कर ऊपर खींचे, पीछे आदद. इस मंत्र से रस्सी को सिर की तरफ ले जाकर दूसरे पैरों को बांध कर पशु को अच्छी तरह जकड़ दे, जिससे वह हिले डुले नहीं। फिर—व्रज्रो वै स्वधितिः शांत्यै पार्श्वत्।

'वपोत्खेदनार्थ दक्षिणपार्श्वे छिन्द्यात। शूलाग्रेण वपां छिन्द्यात। (सायणभाष्य) अर्थात उस पशु के चर्म को शूल से निकाले और शूल की नोक से चर्बी को दूर करे। जब मांस एकत्र हो जाय तो सुकृताच्छमितारः कृण्वन्तूत मेध श्रृतवाकं पचंतु' अर्थात् शमिता (मांस को साफ करने वालों से) मांस साफ करा कर पकावे। तथा—

'एतद्यज्ञस्य यदिडा सामिप्रश्नाति अर्थात् उस मांस से हवन करके शेष भाग को खाये।'

मांसयज्ञ और प्राणिवध के साथ मद्यपान भी विहित कर दिया गया। दो प्रकार की मदिरा को मिलाकर पीवे। जिसके पिता पितामहादि सुरा नहीं पीते वे व्रात्य हैं।[23] परन्तु बात यहीं तक समाप्त नहीं होती। इस प्रकार यज्ञ में मांस खाकर और मद्य पीकर यजमान-पत्नी के साथ अनेकविधि प्राकृत और अप्राकृत संभोगों का वर्णन है। यजुर्वेद का एक मंत्र है–'गणानांत्वा गणपति हवामहे...'। यह मंत्र प्रायः सनातनधर्मी पंडितगण शुभ अवसरों पर मंगल रूप उच्चारण करते हैं। इसका तथा इसके साथ के अनेक मंत्रों का अर्थ अत्यंत अश्लील है। इसका अभिप्राय है— यजमान-पत्नी यज्ञ-मण्डप में सबके सामने घोड़े के पास सोवे और कहे– हे अश्व, तू गर्भदाता है, मुझे गर्भ धारण करा। फिर उसके शिश्न को खींचकर अपनी योनि से स्पर्श कराए और फिर कहे– तू गर्भ धारण कराने वाला है, मैं तेरे वीर्य को... धारण करती हूं। यह अश्वमेध यज्ञ की विधि है।[24]

5. कृष्णयजुर्वेद ही रावणकृत सभाष्य वेद है

रावण शिश्न-पूजक था। वह जहां-जहां जाता एक स्वर्ण निर्मित लिंग साथ ले जाता– उसे बालू की वेदी पर स्थापित करके लिंग-पूजन करता था।[25] इस बात को मानने के बहुत कारण हैं कि उस काल में आर्येतर तथा असुर जातियां लिंग-पूजक होती थीं।[26] मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में बहुत से लिंग मिले हैं। इस प्रकार द्रविड़ों में जो कृष्ण-यजुर्वेद अब तक प्रचलित है उसमें हिंसामय यज्ञ, सुरापान, मांस भक्षण, स्त्री सहवास, नरबलि और शिश्न-पूजन का विधान विहित है। यही रावण द्वारा संपादित वेद है यही, रावण-सम्प्रदाय का मूल ग्रन्थ है।

चक्रदत्त एक प्राचीन वैद्यक ग्रन्थ है। इसमें बालरोग चिकित्सा प्रसंग में मांस मद्य बलि और देवपूजन का एक जगह ठीक वैसा ही आदेश है जो रावण सम्प्रदाय में प्रचलित था– बलि तस्य प्रवक्ष्यामि येन संपद्यते शुभम्। नद्युभयतट मृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वा शुक्लोदनः शुक्लपुष्पं शुक्ल सप्तध्वजाः सप्त प्रदीपाः सप्तस्वस्तिकाः सप्त वाटिकाः सप्त शष्कुलिकाः सप्त जम्बुडिकाः सप्त मुस्तकाः गन्धं पुष्पं ताम्बूलं मांसं सुराग्रभक्तं च पूर्वस्यां दिशि चतुष्पथे मध्यान्हे बलिर्दातव्यः। ततः अश्वत्थ पत्रं जलकुम्भे निक्षिप्य शान्त्युदकेन स्नापयेत् रसेन सिद्धार्थक मेष श्रृंग निम्ब पत्र शिव निर्माल्यैर्बालकं धूपयेत्। ओंनमोरावणाय, अमुकस्य व्याधि हन हन मुंच मुंच ह्रीं फट् स्वाहा। एवं दिनत्रयं बलिं दत्वा चतुर्थ दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत्। ततः संपद्यते शुभम्।

कृष्णयजुर्वेद वाममार्ग का उद्गम है, यहीं से वाममार्ग की स्थापना हुई है।[27] इस कृष्णयजुर्वेद के विरुद्ध बहुत कुछ कहा गया है। महीधर का कहना है कि यह मलिन बुद्धि से रचा गया है।[28] प्राचीन भाष्यकार विद्यारण्य कहते हैं कि बुद्धि की मलिनता से ही वह 'कृष्ण' कहा गया है।[29] भाष्यकार द्विवेदांग का कहना है कि शुक्ल यजुर्वेद शुद्ध है, परन्तु ब्राह्मण मिश्रित मंत्रों के कारण कृष्णवेद अशुद्ध है।[30] यज्ञेश्वर यह कहते हैं कि यज्ञकर्म अनुष्ठान-मार्ग में दुर्ज्ञेयता उत्पन्न होने ही से उसे कृष्णत्त्व प्राप्त हुआ है।[31]

इसमें संदेह नहीं कि यह (कृष्णयजुर्वेद) वेद की सर्वप्रथम व्याख्या है। इसमें मंत्र भाग और ब्राह्मण भाग का एक साथ मिश्रण कर दिया गया है। हम

बतायेंगे कि आगे चलकर संहिता और ब्राह्मण पृथक-पृथक संपादित किए गए। ऋग्वेद का एतरेय, यजुर्वेद का शतपथ, सामवेद का ताण्ड्य और अथर्व वेद का गोपथ ब्राह्मण है, परन्तु तैत्तिरीय ब्राह्मण में ऐसा नहीं है। इसका तैत्तिरीय नाम कैसे पड़ा यह हम आगे बताएंगे। अभी इस बात पर विचार करना है कि मंत्र और ब्राह्मण दोनों को एक कर देने का यह परिणाम हुआ कि मूल वेद और रावणकृत व्याख्या दोनों मिलकर एक रूप धारण कर गए और अब यह निर्णय ही नहीं किया जा सकता कि इस तैत्तिरीय शाखा में कौन सा मंत्र भाग है और कौन सा ब्राह्मण भाग। इस तैत्तिरीय शाखा के मानने वाले ब्राह्मण, जो वेद के ज्ञाता हैं, भिन्न-भिन्न मत रखते हैं, कोई किसी भाग को ब्राह्मण कहता है, कोई किसी को मंत्र। मंत्र-ब्राह्मण मिलाकर इस संहिता में 18 हजार यजु पढ़े जाते हैं।[32] परन्तु शुक्ल यजुर्वेद की संख्या केवल 1900 मन्त्रों की है, जिनका द्रष्टा वाजसनेय ऋषि है।[33]

कृष्ण यजुर्वेद की परम्परा में एक नवीनता यह है कि जहां आर्य परम्परा के अनुसार यज्ञ कराने के लिए चार विद्वानों की आवश्यकता होती है, जो एक-एक वेद के ज्ञाता होते हैं (ऋग्वेद से होता, यजुर्वेद से अध्वर्यु, सामवेद से उद्‌गाता और अथर्ववेद से ब्रह्मा)।[34] इसी मर्यादा और परम्परा के अनुसार हरिश्चन्द्र के यज्ञ में विश्वमित्र, जमदग्नि, अगस्त्य और वसिष्ठ तथा युधिष्ठिर के यज्ञ में याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ, ब्रह्मदेव और व्यास ये चारों क्रमशः होता, अध्वर्यु, उद्‌गाता और ब्रह्मा के पद पर आसीन हुए थे। परन्तु कृष्णयजुर्वेद की परम्परा में उक्त चारों कार्यकर्ता ऋषियों के स्थान पर केवल एक आचार्य चरक ही सबका काम चला देता है। चरक असुरों का आचार्य प्रतीत होता है। वृहदारण्यक उपनिषद में लिखा है कि चरक मद्र देश में घूमते हैं।[35] यजुर्वेद के ब्राह्मण भाग में दुष्ट कर्म करने वाले को चरक कहा है।[36] वैदिक परिपाटी में शाखा-भेद भी है। वेद के पठन-पाठन की अनेक विधियां निर्धारित हैं-उन्हीं विधियों को शाखा-भेद कहते हैं। शाखा-भेद के प्रवर्तक ऋषि ही गोत्र-प्रवर्तक होते थे। इसी से ब्राह्मण अनेक शाखाओं और गोत्रों में विभक्त हो गए। पर कृष्ण-यजुर्वेद की कोई शाखा नहीं है। इसलिए द्रविड़ों में, जहां इसका प्रचार है, न शाखा भेद है न गोत्र-विस्तार।[37] शाखा-भेद के स्थान पर इसमें अनुवाकों की संख्या का भेद रखा गया है। इसके अनुसार 64 अनुवाक द्राविड़ों के, 80 आंध्रों के, 47 कर्णाटकों के और 86 तैलंगादिकों के हैं।

अस्या शाखाभेदेन अनुवाक-संख्या भेदो वर्तते।
तत्र द्राविडैस्याश्चतुःषष्ठि संख्याकाअनुवाकाः पठयंते।
आन्ध्रैरस्याशीत्यनुवाकाः।
कर्णाटकैश्चतुःसप्तत्यनुवाकाः।
अन्यैरेकोननवत्यनुवाकाः परिपठयंते।

(तैत्तिरीय आरण्यक)

6. आर्य-अनार्यों का नया संगठन

रावण ने कृष्णयजुर्वेद के नाम से वेद का नवीन आसुरी संस्करण संपादित करके उसमें अपने साथ के बाहर से आये हुए दैत्यों, असुरों, यक्षों, राक्षसों को दीक्षित किया–फिर भारत के दक्षिणांचल में फैले हुए बाहर से समागत अनार्यों (अय्यर) और आर्य-बहिष्कृत आर्यो (नायर) दोनों को आसुरी रूप में दीक्षित किया। चारों लोकपालों तथा वसु, नाग, गन्धर्व, आदित्य आदि आर्यों तथा देवों की सब जातियों को पराभूत करके उसने उनपर राजनैतिक और सांस्कृतिक प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

विजय यात्रा में उसके हाथ से, युद्ध करता हुआ सूर्पनखा का पति मारा गया। इससे अनुतापित होकर उसने सूर्पनखा को दक्षिण भारत का दण्डकारण्य दे दिया और अपने भाई खर को वहां का गवर्नर तथा सेनापति दूषण को संरक्षक बना 14 हजार राक्षसों की सेना उसे दे दी। इस प्रकार सूर्पनखा ने दण्डकारण्य में राक्षस उपनिवेश स्थापित कर लिया।

सा वाष्पपरिरुद्धाक्षी रक्ताक्षी वाक्यमब्रवीत्।
कृतास्मि विधवा राजंस्त्वया बलवता बलात्।

स त्वया निहतो युद्धे स्वयमेव न लज्जसे।
एवमुक्तोदशग्रीवो भगिन्या क्रोशमानया।
अब्रवीत् सान्त्वयित्वा तां सामपूर्वमिदं वचः।
अलं वत्सेरुदित्वा ते न भेतव्यञ्च सर्वशः।

भ्रातुरैश्वर्ययुक्तस्य खरस्य वस पार्श्वतः।
चतुर्दशानां श्राता ते सहस्राणां भविष्यति।
आगच्छत खरः शीघ्रं दंडकानकुतोभयः।
स तत्र कारयामास राज्यं निहतकंटकम्।
सा च सूर्पनखा तत्र न्यवसद्दण्डके बने।

(वाल्मीकि रामायण)

सूर्पनखा ने बलपूर्वक आर्य-वैदिक यज्ञानुष्ठानों को आसुरी ढंग पर करने के अनेक उपाय किये। उसने सहस्त्रों राक्षसों को यह आदेश दिया कि जहां कहीं आर्य ऋषि रावण विरोधी विधि से यज्ञ कर रहे हों, वहां बलपूर्वक बलि-मांस और मद्य की आहुति दो। इतना ही नहीं, उसने राक्षसों से यज्ञकर्त्ता ऋषियों को मार कर बलि देना प्रारम्भ करवा दिया। नर-भक्षण भी उसका एक व्यापार हो गया था। वाल्मीकि लिखते हैं कि ये मनुष्यभक्षी राक्षस दण्डकारण्यवासी मुनियों को खा जाते हैं।[38] मारीच और सुबाहू तो जैसे इसी काम के लिए नियुक्त थे। उनके लिए वाल्मीकि कहते हैं कि वे मांस और रुधिर से यज्ञवेदी को पाट देते थे।[39] इसी को लक्ष्य करके विश्वामित्र ने राम से कहा था कि इन लोगों ने इन दोनों जनपदों का नाश कर दिया है।[40] राम के दण्डकारण्य में पहुंचने पर ऋषियों ने उनसे कहा था; अरण्य में मनुष्यभक्षी राक्षस रहते हैं, वे तपस्वी और ब्रह्मचारियों को मारकर खा जाते हैं।

एहि पश्य शरीराणि मुनीनां भावितात्मनिम्।
हतानां राक्षसैर्घोरैर्बहूनां बहुधा वने।
पंपानदीनिवासानामनुमन्दाकिनीमपि।
चित्रकूटालयानांच क्रियते क्रदनं महत्।
ततस्त्वा शरणार्थंच शरण्यं समुपस्थितः।
परिपालय नो राम वध्यमानान्निशाचरैः *(वाल्मीकि)*

हत्वा छित्वा च भिक्तवा च क्रीशंतीं रुदतीं गृहात्। प्रसह्य कन्याहरणं रक्षसां विधिरुच्यते।। गुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहोयत्रोपगच्छति। समाविष्टो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः।। ज्ञातिभ्यो दक्षिणां दत्त्वा कन्यायै चैव शक्तितः। कन्या प्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरोधर्म उच्चते।

यहीं राम को विराध राक्षस मिला था। मारे हुए ऋषियों की हड्डियों को दिखाकर ऋषियों ने राम से कहा था– यह राक्षसों द्वारा खाए हुए ऋषिओं की हड्डियों के ढेर देखिए। पंपा से चित्रकूट तक के तमाम अरण्य निवासियों का इन्होंने नाश कर दिया है। इनसे हमारी रक्षा कीजिए। ये आर्यों की कन्याओं को जबर्दस्ती हरण कर ले जाते हैं जो कौमार्य नष्ट होने पर उन्हें अपना पति मान लेती है, इसलिए पैशाच, राक्षस और आसुर विवाह भी हमें धर्म-सम्मत स्वीकार करने पड़े हैं– समाविष्टो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमीऽधमः।।/ ज्ञातिभ्यो दक्षिणां दत्वा कन्यायै चैव शक्तितः।/ कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरोधर्म उच्चते।

<u>संदर्भ</u>

1. देखिए, वायु पुराण और वाल्मीकि रामायण, उत्तरकांड, चौथा सर्ग।
2. देखिए, बा. रा. उ. का. तीसरा सर्ग।
3. तस्यमेह विश्वामित्रस्यैकशतं पुत्रा आसुः। पंचाशदेवज्यांसो मधुच्छंदसः। पंचाशत्कनीयांसस्तत्येज्यायांसो न ते कुशलं मंनिरे। ताननु व्याजहारतान्वः प्रजाभक्षीष्टेति। त ऐतेऽन्ध्राः पुण्ड्राः शवराः पुलिन्दाः मुतिवा इत्युदत्या बहवो भवंति। विश्वमित्रा दस्यूनां भूयिष्ठाः ऐतरेय ब्राह्मण 7।4।18।
4. अगस्त 1914 के 'थियोसाफीस्ट' में जिनराजदास एम. ए. के लेख में Northern Tribes of Central Australia by Baldwin Spincer and H.G. Gilen.
5. वाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड सर्ग 3-4।
6. वाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड सर्ग 5।
7. वहां अफ्रीका के पूर्वी भाग में अपना राज्य स्थापित किया, जो सुमालीलैंड कहाता है।
8. वा. रा. उ. का. सर्ग 8।
9. वा. रा. उ. का. सर्ग 9-10।
10. वाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड सर्ग 13।
11. शकाः यवन काम्बोजाः पारदा पह्लवास्तया। कौलि सर्पाः समहिषा दार्वाश्चोलाः स केरलाः सर्वेतेक्षत्रियास्तात धर्मस्तेषां निराकृता। वसिष्ठ वचनाद्रजन् सगरेण महात्मना। (महाभारत-हरिवंश-विष्णुपुराण)
12. यत्वं मे हृदयाज्जातो वयस्त्वं नप्रयच्छति। तस्मात् प्रजा समुच्छदं तुर्वसो तव यास्यति। संकीर्णाचार धर्मेषु प्रतिलोम चरेषु च। पिशिता शुशि जात्येषु मूढराजा भविष्यति गुरुदार प्रसत्ते तिर्यग्योनिगतेषु च। पथ धर्मिषु पापष म्लेच्छेषु त्वं भविष्यति। (महाभारत)
13. एतरेय ब्राह्मण 7।4।18।

14. The panis have been mentioned more than once in the previous chapter. We have shown that they were Aryans, belonging to the trading class. They were a community by themselves. Selfish, narrowminded, intent only on their own business and gain. They did not perform the same sacrifice nor worship the same God, as the cultured Aryans did, which made them incur their displeasure, nay, hatred. (Regvedic India)

14. अक्रतून ग्रथिनः मृध्रवाचः अश्रद्धान् पणीन् (अर्थात् पाकेटमार गठकटे पणि) ऋग्वेद 7/6/3 चेम्बर्स डिक्शनरी।

15. वैशस्तुव्यवहर्ता विट्वार्तिकः पणिको वणिक्। (राजनिघण्टु)।

16. ऋग्वेद 8।78।2 स चा मनाहिरण्यया।

17. (संस्कृत)– सिनिवालि, अप्सु, यह्व, ऋतु, परशु, तैमात। उरुगुला। (चाल्डियन) सिनवुव्वुलि, अब्जु, यहवे, इतु, पिलक्कु, तिआमत, उरुगुल। संस्कृत और चाल्डियन में ये सब शब्द समार्थवाची है।

18. देखिए हार्मस्वर्थ की हिस्ट्री आफ दी वर्ल्ड पृ. 329।

19. शनकैस्तु क्रियालोपादिमा क्षत्रियजातयः। वृषलत्त्वं परिगता ब्राह्माणादर्शनेन च। पौण्ड्रकाश्चौण्ड्र द्रविड़ाः काम्बोजाः यवनाः शकाः। पारदाः पल्हवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः (मनुस्मृति)

20. आज भी ये दोनों दल दक्षिण में 'अय्यर' और 'नैयर' के नाम से प्रसिद्ध हैं। मद्रास प्रांत में 'अय्या' शब्द महाशय या जनाब के आदरसूचक अर्थो में अब भी प्रयुक्त होता है।

21. वाल्मीकि रामायण, उत्तर काण्ड, सर्ग 18।19

22. अन्नस्य वा एतच्छमलं यत्सुरा। यस्य पिता पितामहादि सुरां न पिबेत् स व्रात्यः (तैत्तिरीय ब्रा.)

23. अस्मिन्मंत्रे गणपति शब्हादश्वोवाजी ग्रहीतव्य इति। तद्यथा महिषी यजमानस्य पत्नी यज्ञशालायां पश्यतां सर्वेषामृत्विजामश्व समीपे शेते शयाना सत्याह हे अश्व, गर्भधं गर्भधारकं रेतः अहं अजानि आकृष्य क्षिपामि त्त्वं च गर्भधं आ अजासि आकृष्य क्षिपसि। (महीधर)

24. यत्र यत्र प्रयातिस्म रावणो राक्षसेश्वरः। जम्बूनदमयं लिंगं तत्र स्म नीयते। वालुकावेदिमध्ये तु तल्लिङ्ग स्थाप्य रावणः (वाल्मीकि रामायण, उत्तर कांड)

25. देखिए, रायबहादुर चिंतामणि विनायक वैद्य कृत महाभारत मीमांसा पृ. 452।

26. 'मेघनाद उड्डीस' वाममार्ग का प्रसिद्ध तंत्र ग्रंथ है, जो रावण-पुत्र मेघनाद कृत है।

27. तानि जुंषि बुद्धिमालिन्यात्कृष्णानि जातानि (महीधर)।

28. बुद्धि-मालिन्य-हेतुत्त्वात् तद्यजुः कृष्णमीयंते (विद्यारण्य)।

29. शुक्लानि यजुंषि शुद्धानि यद्वा ब्राह्मणेन मिश्रित मंत्रकानि. (द्वेवेदांग)।

30. यज्ञकर्मानुष्ठानमार्गस्य दुर्ज्ञेयत्वात् कृष्णत्वमिति (भट्ट यज्ञेश्वर-आर्यविद्यासुधाकर)।

31. अष्टादश सहस्त्राणि मंत्रब्रह्मणयोः सह। मंत्र ब्राह्मणयोर्वेदाम धेयम् यजुंषि यत्र पठयन्ते स यजुर्वेद उच्यते।

32. द्वेसहस्रे शतं न्यूनं मंत्रे वाजसनेयके।

33. ऋग्वेदेन होता करोति यजुर्वेदेनाध्वर्युः सामवेदेनोद्गाता अथर्वेर्वा ब्रह्मा।'

34. मद्रेषु चरकाः पर्यव्रजा।

35. दुष्कृताय च चरकाचार्य (यजु. 30।10 ब्राह्मण भाग)।

36. द्रविड़ों के गोत्र वही हैं जो अन्यों के हैं, तैत्तिरीय शाखा से संबंधित कोई गोत्र नहीं है।

37. भक्ष्यन्ते राक्षसैर्भीमैर्नरमांसोपजीविभिः।
ते भक्ष्यमाणा मुनयो दण्डकारण्यवासिनः। (वाल्मीकि)।

38. रक्षांसि पुरुषादीनि नानारूपाणि राघव।
वसन्त्यस्मिन महारण्ये व्यालाश्च रुधिराशनाः

39. वसनं चर्म वैयाघ्रं वसार्द्र रुधिरोक्षितम्। (वाल्मीकि)।
उच्छिष्टं वा प्रमत्त वा तापसं ब्रह्मचारिणम्।
अदंत्यस्मिन् महारण्ये तान्निवारय राघव। (वाल्मीकि)।

■

"उस देश से यहाँ तक कितने राज्य हैं? मुलतान है, मरुस्थल के राजा हैं। सपादलक्ष के, नान्दोल के चौहान, झालौर के परमार, अवन्ती के भोज, अर्बुद के ढुण्ढिराज हैं। फिर पट्टन के सोलंकी हैं। इनके साथ लक्ष-लक्ष, कोटि-कोटि प्रजा है, जन-बल है, अथाह सम्पदा है, इनका अपना घर है, अपना देश है। फिर भी यह आततायी विदेशी, इन सबके सिरों पर लात मार कर, सबको आक्रान्त करके, देश के दुर्गम स्थानों को चीरता हुआ, राज्यों को विध्वंस करता हुआ, इस अति सुरक्षित समुद्र-तट पर सोम-तीर्थ को आक्रान्त करने में सफल हो तो कुमार, यह उसका दोष नहीं, उसका विक्रम है- उसका शौर्य है। दोष यदि कहीं है तो तुममें है।"

- सोमनाथ (आचार्य चतुरसेन)

दूसरा प्रकरण

1. आर्य संस्कृति पर आसुरी प्रभाव

आप यदि इस बात पर विचार करें कि आर्य संस्कृति पर इस आसुरी प्रभाव ने कितना गहरा रंग डाला तो उसके लिए पुराणों तथा महाभारत के पृष्ठ पलटिये। विश्वामित्र, पाराशर आदि ऋषियों के व्यभिचार-कार्य, रन्तिदेव के घर प्रतिदिन हजारों गायों का वध, शिव और कृष्ण के अश्लील वर्णन, इन्द्र और चन्द्र का ऋषिपत्नियों से व्यभिचार तथा नित्य के जीवन में गोवध, इन सब बातों से यह प्रकट होता है कि किस प्रकार आसुरी संस्कृति ने आर्य संस्कृति पर प्रभाव डाला। महीधर के भाष्य के अनुसार अश्वमेध यज्ञ में यजमान-पत्नी का घोड़े से सहवास, शुनःशेप की कथा[1] जिसमें नरबलि का क्रूरतम उदाहरण है, इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रंथों में अजीगर्त का भयानक वर्णन इस बात पर प्रकाश डालता है कि व्यभिचार, नरवध और पशुवध तथा मद्य मांस सेवन सांस्कृतिक रीति से आर्य सभ्यता में प्रविष्ट हो गया था।

राम-रावण युद्ध का प्रभाव– हम बता आये हैं कि दुर्धर्ष रावण को केवल दो स्थानों पर मुंह की खानी पड़ी, एक हैहयवंशी सहस्रबाहू अर्जुन से और दूसरी कपिराज बालि से। परन्तु राम से भीषण संग्राम में रावण का सपरिवार निधन हुआ। विजयी होने के लिए राम को दो कार्य करने पड़े, उन्हें कपिराज सुग्रीव और राक्षसराज के भ्राता विभीषण से सन्धि कर उनसे सहायता लेनी पड़ी, साथ ही उन्हें प्रसन्न करने तथा उनका विश्वास सम्पादन करने के लिए रामेश्वर में समुद्र के अंचल में लिंग स्थापन करके उसकी पूजा करनी पड़ी। जब रावण का निधन हो गया तो रावण का राज्य विभीषण को देकर उसे राक्षसों का राजा स्वीकार किया। परन्तु कालान्तर में पराजित राक्षसवंश पनप न सका। राम के पुत्र कुश ने अफ्रीका महाद्वीप पर अधिकार कर उसका नाम कुशद्वीप रखा। इतना होने पर भी रावणकृत रक्ष संस्कृति नष्ट न हुई, विशेष कर इसलिए कि उसी ने यक्ष-रक्ष, देव-गंधर्व और आर्यों के सब दलों को एकत्र कर दिया था। राजनीतिक और सामाजिक दृष्टिकोण से भी तब उसी का समर्थन करना पड़ा।

हम कह चुके हैं तब राजा को राजनीतिक और धार्मिक दोनों अधिकार प्राप्त थे। रावण भी धर्मनियन्ता और राज्यशासक दोनों ही था। रावण के मरने पर राजसत्ता तो विभीषण के हाथ में गई, पर धर्म-सत्ता भारत के दक्षिणांचल में बसी हुई उस मिश्रित जाति की संपत्ति हुई जो आर्य, अनार्य और आर्येतर तथा आगन्तुक सभी के मेल से बनी

थी, तथा द्रविड़ कहलाती थी। इन्हीं द्रविड़ों ने ब्राह्मण बन कर रावण की वैदिक सभ्यता को आगे चलाया। धीरे-धीरे ये आचार उड़ीसा, बंगाल, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र में फैलने लगे। उन्होंने आर्यभाषा और अपनी भाषा ठीक-ठीक सीखी, फिर आर्य भाषा में जो नवीन ग्रन्थों की रचना की, उसमें तीन बातों का ध्यान रखा गया–(1) आर्यों के वे सब सिद्धान्त जो उनके प्रचार में बाधक नहीं थे; स्वीकार कर लिए गए, उनकी खूब बढ़ा-चढ़ा कर प्रशंसा की गई। (2) आर्यों की गूढ़ बातों के, जो सर्वसाधारण की समझ से बाहर थीं, अभिप्राय बदल कर उनमें अपने मन्तव्य स्थापित किए गए। (3) साधारण बातों का विरोध करके उनके स्थान पर अपने सिद्धान्त स्थापित कर दिए गए। यह एक ऐसी युक्ति थी और द्रविड़ों की आसुरी संस्कृति ने ऐसे रूप में आर्य संस्कृति में प्रवेश पाया कि पीछे दोनों घुल मिलकर एक हो गईं। इस एकीकरण के सिद्धान्त को दार्शनिक रूप दिया गया, जिसके तीन मूल अवयव थे–उपनिषद, गीता और वेदान्त। यही तीन ग्रन्थ द्रविड़ संस्कृति में प्रस्थान त्रयी के नाम से विख्यात हैं।

उपनिषदों में आसुरी प्रभाव– छान्दोग्य उपनिषद आसुर उपनिषद है।[2] यह बात छान्दोग्य ही में लिखी है। इस उपनिषद में इन्द्र (देव) और विरोचन (असुर) ये दोनों प्रजापति के पास आत्मज्ञान सीखने जाते हैं, इसका वर्णन है। प्रजापति उनकी पात्रता की परीक्षा लेता है, इन्द्र संस्कृत और विरोचन मलिन प्रमाणित होता है। इन्द्र प्रत्येक बात पर तर्क करता है, पर विरोचन जो सुनता है, उसी पर विश्वास करता है, तथा असुरों में उन्हीं सिद्धान्तों का प्रचार करता है।

'यह शरीर जैसा स्वच्छ था, वैसा ही दर्पण में देखते हैं। हे भगवन, जिस प्रकार हम वस्त्रों से अलंकृत हैं, उसी प्रकार हम दोनों अपने को दर्पण में देखते हैं। तब प्रजापति बोले–'यही आत्मा है, यही अमृत है, यही अक्षर है, यही ब्रह्म है।' यह सुनकर दोनों चले गए।[3]

तब प्रजापति ने कहा– ये आत्मा को न पाकर-न जानकर जा रहे हैं। ये नष्ट होंगे।

विरोचन असुरों के निकट जाकर कहने लगा, 'हम लोग स्वयं ही पूजनीय और सेवनीय हैं। इसलिए यहां अपने आप ही को पूजता हुआ पुरुष दोनों लोकों को प्राप्त होता है।' इस प्रकार असुर अपने आपको ही आत्मा एवं अमर मानने लगे।

तो हान्वीक्ष्य प्रजापतिरुवाचाऽनुपलभ्यात्मान-मननुविष्य व्रजतीयतरएतदुपनिषदो भविष्यन्ति। देवा वाऽसुरा वा ते पराभविष्यन्तीति सह शान्तहृदय एव विरोचनोऽसुरान् जगाम। तेभ्योहैतामुपनिषदं प्रोवाचात्मैवेह महह्य आत्मा-परिचर्य आत्मनमेवह मह्यन्नात्मानं परिचरन्नुभौ लोकानवाप्नोतीतिमंचामुंचेति। (छान्दोग्य 30।3।8।4)

उन्होंने दान यज्ञ बन्द कर दिए, क्योंकि प्रजापति ने उनसे कह दिया था कि 'एष आत्मेति हो या चैतदमृतमभयमेतद् ब्रह्मैति' अर्थात यह शरीर ही अमृत है, ब्रह्म है, आत्मा है। इसी आधार पर सब असुर प्रदेशों- अफ्रीका, मिस्र, असीरिया, बैबिलोनिया आदि में अपने ही को ब्रह्म कहने की भावना जड़ पकड़ गई। इसी आधार पर मृतकों को मसालों से संवारने, वस्त्राभूषणों से सजाने और ममी तथा पिरामिड बनाने की प्रथा चली।[4] छान्दोग्य ने वेद विरोध भी किया। वहां लिखा है– जिस प्रकार मछली मारने वाला मछली को जल में देखता है, उसी भांति मृत्यु ने वेदों को ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद में स्थित देखा। वे देव मृत्यु को देख वेदों के स्वरों में प्रविष्ट हो गए।[5]

याज्ञवल्क्य का विद्रोह– रावण के समय तक भी वेद का कोई संगठित रूप न था। न इससे पूर्व वेदमंत्रों की कहीं कोई व्याख्या ही थी। इसलिए रावण कृत कृष्ण-यजुर्वेद को अनार्य, असुर, राक्षस-व्रात्य और दक्षिण के द्रविड़ों ही ने नहीं, सम्पूर्ण आर्यों ने स्वीकार कर लिया और इन्द्र आदि देवता तक उसी आधार पर बलि तथा पशुवध करके आसुरी पद्धति से यज्ञ करने लगे, जिसमें हजारों पशुओं का वध होता था।

इसका सर्वप्रथम विरोध किया याज्ञवल्क्य ने। उससे एक ही पीढ़ी पूर्व व्यास ने वेदों का संकलन और संपादन किया था। वेद के चार भाग करके अपने चार शिष्यों को उन्होंने दे दिया था। वेदों का यह बटवारा बड़ा महत्वपूर्ण था। इसका महत्व राज्य के बटवारे से कम न था। यह बटवारा उन शिष्यों के वंश में परम्परा के लिए चलता रहा।

व्यास ने अपने प्रधान शिष्य वैशम्पायन को यजुर्वेद दिया था। जब वैशम्पायन अपने शिष्यों को यजु पढ़ाने लगे तो उसमें पशुवध, सुरापान, नरवध और स्त्रीसंभोग आदि आसुरी तत्वों को देख कर उसका एकबारगी ही विरोध याज्ञवल्क्य ने कर दिया। यह विरोध साधारण न था। शताब्दियों-सहस्राब्दियों से चली आती हुई धर्म परंपरा का विरोध था। वैशम्पायन के सभी शिष्यों ने कृष्ण यजुर्वेद को स्वीकार किया, केवल याज्ञवल्क्य ने ही उसे त्यागा और सूर्य से उसने शुद्ध यजुः का अध्ययन किया।

इस घटना को एक विचित्र रूप दिया गया है-- एक दिन वैशम्पायन ने क्रुद्ध होकर याज्ञवल्क्य से कहा, तू हमारी दी हुई विद्या उगल दे, इस पर याज्ञवल्क्य ने सब विद्या वमन कर दी, उसे अन्य शिष्यों ने तीतर बनकर चुग लिया, इसी से इसका नाम तैत्तिरीय संहिता हुआ–'व्यास-शिष्यो वैशम्पायनो याज्ञवल्क्यादिभ्यः स्वशिष्येभ्यो यजुर्वेदमध्यापयत्। तत्र दैवात्केनापि हेतुना क्रुद्धो वैशम्पायनो याज्ञवल्क्यं प्रत्युवाच, मदधीतं त्यजेति। स योगसामर्थ्यान्मूर्तां विद्यां विधायोद्वाम। वातानि यजूंषि गृह्णीतेति गुणवक्ता अन्ये वैशम्पायन शिष्यास्तित्तिरियोभूत्वा यजुंष्यभक्षयन् तानि तैत्तिर्यानि यजूंषि ज्ञातानि। ततो दुःखितो याज्ञवल्क्यः सूर्यमाराध्यान्यानि शुक्लानि यजुंषि प्राप्तवान्। (महीधर कृत यजुर्वेद भाष्य)'।

इस घटना से इस बात पर प्रकाश पड़ता है कि यद्यपि याज्ञवल्क्य ने इसके विरोध में भारी प्रयत्न किया और पृथक् ब्राह्मण ग्रंथ शतपथ रच कर उसे पूर्णांग किया, फिर भी वैदिक संस्कृति पर से आसुरी छाया गई नहीं और मद्य, मांस, पशुवध, नरवध तथा स्त्रीसहवास वैदिक यज्ञों का एक अनिवार्य अंग बन गया। ऋषि और मुनियों ने आसुर प्रभाव का विरोध भी किया, बहिष्कार भी किया पर उससे वह मिटा नहीं। क्योंकि वैदिक यज्ञों की कोई विधिविहित दूसरी परिपाटी प्रचलित न थी। व्यवस्थित रूप से याज्ञवल्क्य ने ही उसका विरोध किया और शतपथ ब्राह्मण सहित शुक्ल यजुः का सर्वथा आर्य संस्करण, आसुरी प्रभाव से यथासंभव पृथक कर स्थापित किया।

2. जन्दावस्ता और छन्दवेद

केवल संहिता ही वेद हैं, संहिता 'ज्यों के त्यों' मंत्रों का नाम है। पाणिनि कहते हैं– पद के अंत को अन्य पद के आदि के साथ संधि नियम से बांधने का नाम संहिता है।[6] ऋक्प्रातिशाख्य का कहना है कि पदों की प्रकृति के वास्तविक रूप का नाम संहिता है।[7] प्राचीन काल में मंत्रों के पद अलग न थे, संयुक्त ही थे, पर जब वेदार्थ पर मतभेद हुआ और 'न तस्य' को 'नतस्य' समझा जाने लगा तो पदों का विच्छेद पाठ जारी किया गया।[8] इस प्रकार हरेक की दो-दो संहिताएं हो गईं। यहीं से शाखाओं का आरम्भ हुआ। ब्राह्मणों (ब्राह्मण ग्रंथों के निर्माण) का काल पीछे आया। शाखाओं के कारण ही गोत्रों का प्रचार हुआ। इस प्रकार आसुर प्रभाव से वेदों को बचाने के लिए बड़े-बड़े उपाय किये गये। सबसे अधिक आसुरी प्रभाव अथर्ववेद के संगठन पर हुआ। उसका संगठन भी तीनों वेदों के बाद में हुआ। पारसियों की धर्म पुस्तिका जन्दावस्ता इसी के अति निकट है। वैदिक साहित्य में अथर्ववेद के अन्य नामों में एक नाम 'छन्द' भी है।[9] 'जन्द' शब्द इसी 'छन्द' का अपभ्रंश है। 'अवस्ता' 'वेद' का अपभ्रंश है।

'जन्दावस्ता' का अभिप्राय है 'छन्दवेद'।[10] अरबी के प्रसिद्ध विद्वान और कुरान के महापण्डित

श्री सेल ने अपनी 'कुरान' की भूमिका में लिखा है कि – मुहम्मद ने अपने विश्वास यहूदियों से लिए और यहूदियों ने पारसियों से।[11] परन्तु पारसियों के विश्वासों के संबंध में मार्टिन हांग का कथन है कि 'पारसियों के पुराने साहित्य 'गाथा' में महात्मा जरदुस्त एक पुराने ईश्वररीय ज्ञान को स्वीकार करते हैं, अथर्व की प्रशंसा करते हैं और उस अंगिरा की प्रशंसा करते हैं जिसका वेदों में वर्णन है।[12] जिस गाथा में अंगिरा का वर्णन है वह यह है—

स्पन्तेभ अतथ्वा मज्दा में गही अह्रा।
ह्यत मा वोहु पइरि जसत् मनंगहा।
दक्षत् उष्यातुष्मा मइतिश वहिश्ता।
नाहत् ना पोउरुश् द्रेग्वतो ख्यात् चिक्ष्मुषो
अत् तो वीस्पेंग अंग्रेग अषाउना आदरे

(गाथा य. 18।22)

अर्थात् 'हे अहुरमज्द, मैने तुझे आबादी करने वाला जाना, जब तेरा संदेश लाने वाला अंगिरा मेरे पास आया तो उसने प्रकट किया कि संतोष सबसे उत्तम वस्तु है। एक पूर्ण पुरुष कभी भी पापी को प्रसन्न नहीं रख सकता, क्योंकि वह सत्य ही का पक्ष करता है।' इस गाथा में अंगिरा के लिए 'अंग्रेग' शब्द आया है। अंगिरा अथर्व ही का वाचक है।[13] इस प्रकार जरदस्तु ने अथर्व ही के द्वारा संदेश प्राप्त किया तथा उसका धर्म अथर्वानुमोदित है।

संदर्भ

1. ऋग्वेद में. 1 सूक्त 14 से 30 तक का सायण भाष्य पढ़िये।
2. असुराणां ह्येषा उपनिषद्। छान्दोग्य.
3. तो हीचुर्यथैवेदमवां भगवः साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ च राममेवेमी भगवः साध्वलंकृतौ सुवसनौ, परिष्कृतावित्येष आत्मेति होवाचैत-दमृतमयमेतद् ब्रहीति तौह शांतहृदयो प्रवजतुः (छान्दोग्य 8।8।3)।
4. तस्मादप्यद्येहा ददानमश्रद्दधानमयजमानमाहुरासुरो। वतेत्यसुराणां ह्येषोपनिषद्प्रेतस्य शरीरं भिक्षया वसनेनालंकारेणेति संसकुर्वन्ते तेन ह्यमुं लोकं जेष्यन्तो मन्यन्त इति। (छान्दोग्य 8।8।5)।
5. तानु तत्र मृत्युर्यक्ष मत्स्यमुदके परिपश्र्वेदेवं पर्यपश्यदृचि। साम्नि यजुषि तेनु वित्वोर्ध्वाऋचः साम्नो यजुषः स्वरमेव प्राविशन्। (छान्दोग्य 1।4।3)।
6. परः सन्निकर्षः संहिता (अष्टाध्यायी 1।4।109)
7. पदप्रकृतिः संहिता (ऋग् प्रातिशाख्य)।
8. जटामालाशिलालेखा ध्वजो दण्डो रथो धनः। अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा मनीषिभिः (व्याडीकृत विकृतवल्ली 1।5)
9. ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह। (अथर्व.18।4।24)। तस्मात्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्पाद्यजुस्तस्मादजायत। (ऋग-यजु-साम-अथर्व पुरुष सूक्त)
10. I still hold that the name of Zend was originally a corruption of the Sanskrit word UÆônù Chhanda, which is the name given to the language of the Veda by panini and others. (Chips from a German Workshop. vol. 1, P. 88.)
11. Mohammed borrowed from the Jews who learnt the names and offices of those beings from the Persians as they themselves confess. (Talmud Hieros and Roshbashan, Sale's Koran, P. 50)।
12. In the Gatha (which are the oldest parts of the Zendavesta) we find Zarthushta alluding to old revelation and praising the wisdom of Sooshyants, Atharvas, Fire-priests. He exhorts his party to respect and revere the Angra. (Yas-xviii, 12) i. e. the Angiras of the Vedic Hymns. (Hung's Essays P. 294.)।
13. अथर्वाजिरसोमुखम् (अथर्व)। ■

देव तो भावना के देव हैं।
साधारण पत्थर में
जब कोटि-कोटि जीवित जन श्रद्धा,
भक्ति और चैतन्य सत्ता
आवेशित करते हैं तो वह
जाग्रत देव बनता है।।

– सोमनाथ (आचार्य चतुरसेन)

तीसरा प्रकरण

1. असुर आचार्यों की सम्पन्नता

यह भी प्रतीत होता है कि इस आसुरी विद्या के ज्ञाता आचार्य खूब सम्पन्न, धनी, और खुशहाल होते थे। उनके पास बड़े-बड़े महल, वस्त्रालंकार, रथ, सवारी, दास-दासी और सुन्दर स्त्रियां होती थीं। वे मद्य मांस सेवन से भी परहेज न करते थे।[1] छान्दोग्य उपनिषद के एक असुर आचार्य की आमदनी और ठाठ का परिचय इस वर्णन से मिल जायेगा–

वन के मध्य स्थित सुन्दर वन में रैक्व नामक एक असुर ऋषि थे। उनके पास राजा ज्ञानश्रुति छः सौ गाय, स्वर्ण, मणि, रथ और बहुत सा धन लेकर गया। इस पर ऋषि ने कहा– अरे शूद्र, यह हमको न चाहिए। तब वह राजा दुबारा एक हजार गाय, बहुत सा धन, अपनी कन्या और उस गांव का पट्टा जिसमें ऋषि रहते थे- लेकर गया, तो कन्या के सुन्दर मुंह को देखते ही ऋषि जी पिघल गए और उस कन्या के मुख को प्यार से देखते हुए बोले– हे शूद्र, यह भेंट ठीक लाए हो, अब इस कन्या के मुख कमल की बदौलत ही मेरा ज्ञान सुनना।[2]

यज्ञ की आसुरी व्याख्या– ये आसुरी ऋषिगण इस ऐश्वर्य के बीच जिस वाममार्ग की स्थापना कर रहे थे उसका पता छान्दोग्य और वृहदारण्य उपनिषद के इस रूपक से लगता है जिसमें उन्होंने यज्ञ की व्याख्या की है। वहां लिखा है- हे गौतम, स्त्री ही अग्नि है, शिश्न समिधा है, योनि ज्वाला है, आकर्षण घूम है, प्रवेश अंगार है, आनन्द चिनगारी है, वीर्यपात ही आहुति है, इस आहुति से गर्भ होता है।[3] यह हुई यज्ञ की रूप व्याख्या। यज्ञ में वेद पाठ होता है, उस वेद पाठ का भी रूप इस उपनिषद् में लिखा है, यह सुनिए। हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ आदि सामगान की विधियां हैं। यह वामदेव गान भी रूपक अलंकार से मैथुन में ही समझाया गया है– "संदेशा भेजना हिंकार, इशारे करना प्रस्ताव, रति उद्गीथ और प्रत्येक स्त्री के साथ सोना प्रतिहार, वीर्य रोकना निरोध और वीर्यपात निधन है।"[4] इसका माहात्म्य इस प्रकार कहा गया है– 'जो वामदेव्य गान को मैथुन में ओत-प्रोत जानता है, वह मिथुनी (मैथुन में प्रवीण)' होता है। मैथुन से संतान होती है, आयु भर सुखी रहता है, दीर्घजीवी होता है, धनी और कीर्तिवान होता है, इसलिए किसी स्त्री को न छोड़ना चाहिए, यही व्रत है।

समएव मेतद्वाम देव्यं मिथुन प्रोतंवेद मिथुनी भवति
मिथुनात्मिथुनात्युजायते सर्वभायुरेति ज्योग जीवतिमहान्।
प्रजयमिर्भवति महान्कीत्यत कांचन परिहरेत तत् व्रतम्। (छांदोग्य)

(यहां जो 'कांचन' शब्द आया है, इसका अर्थ शंकराचार्य ने अपने भाष्य में किया– न कांचन कांचिदपि स्त्रियं स्वात्मतल्पप्राप्तां न परिहरेत्समागमार्थिनीम्- 'अर्थात् समागम की इच्छा से जो स्त्री शैया पर आवे उसे कभी न छोड़ें')।

बृहदारण्यक उपनिषद (3।2।13) में उपर्युक्त वर्णन है, इसी उपनिषद में जिस स्त्री का जार हो तो उसकी शुद्धि अमुक विधि से करें, ऐसा लिखा है।[5] वृहदारण्यक उपनिषद में स्त्री सहवास सुख की उपमा ब्रह्मानन्द से दी है[6] और यहां तक लिखा है कि बेहोशी की हालत में भी रमण करे (तस्मिनस्वप्ने रत्वा चरित्वा)।

स्त्री सहवास की भांति ही उपनिषदों में मांसाहार का विधान है—'यदि कोई यह चाहे कि मेरा पुत्र पंडित, सभा में जाने योग्य, अच्छा भाषण करने वाला, सब वेदों का ज्ञाता और जीवन पर्यंत सुखी रहने वाला हो तो उसे घोड़े या बैल का मांस घृत मिले हुए भात के साथ खाना चाहिए।[7] मद्यपान के संबंध में लिखा है– जिसके पिता और पिताहमहादि मद्य न पीते हों वह नीच है। (यस्व पिता पितामहादि सुरा न पिवेत्स व्रात्यः) इन असुराचार्यों के ऐश्वर्य का पता कठोपनिषद के इस वाक्य से भी लगता है कि- हे नचिकेता तू मुझसे बड़े-बड़े महल, जमींदारी, जेवर, हाथी, घोड़े, पुत्र, पौत्र, और सुन्दर स्त्रियां मांग ले, पर यह प्रश्न न कर।[8]'

2. गीता में आसुरी तत्व

श्रीमद्भगवद्गीता प्रस्थान त्रयी की दूसरी पुस्तक है। आजकल गीता का माहात्म्य बहुत बढ़ गया है। तिलक और गांधी जी ने इस महत्व को बढ़ाने में बड़ा योग दिया है। गीता में आसुरी सम्पति का वर्णन किया गया है—'लोक में दो भूत-सर्ग हैं— एक दैव दूसरा आसुर। दैव का वर्णन हो चुका, आसुर का कहते हैं। प्रवृत्ति और निवृत्ति में असुर भेद नहीं मानते। न शौच और आचार, न सत्य ही का विचार करते हैं। काममोहित हो वे दुष्कृत्य करते हैं, तथा दम्भी होते हैं। वे कामभोगरत होते हैं। वे असत्यवादी-अप्रतिष्ठित हैं और जगत को अनीश्वर कहते हैं। मैं ईश्वर हूं, मैं भोगी हूं, मैं सिद्ध हूं, बलवान हूं, सुखी हूं, आढ्य हूं, जनसम्पन्न हूं, मुझसा कोई और नहीं है– ऐसा मानते हैं। वे मोह-जाल में फंसे हैं, और उनका चित्त भ्रमित है, वे काम भोगों में फंसे हैं, अवश्य अपवित्र नरक में गिरेंगे, वे अपने ही प्रशंसक हैं और मदमस्त रहते हैं। वे दम्भ से विधिरहित यज्ञ करते हैं। अहंकार, दर्प, बल, काम, क्रोध में मग्न हैं। ओरों पर ईर्ष्या करते हैं, अपने आप ही को सब कुछ समझते हैं।[9]

आसुरी भावों का यह वर्णन गीता में कब मिश्रित हुआ है– इस पर विचार करने का यह अवसर नहीं। यहां तो यह देखना है कि गीता के मूल में जो अहं तत्व है, वही असल आसुरी सिद्धान्त है। कृष्ण गीता में जो यह कहते हैं— कि मैं ही सब कुछ हूं, जगत में जो कुछ श्रेष्ठ है वह मैं हूं, तुम सब धर्मों को छोड़कर मेरी शरण आओ। असल आसुरी सिद्धान्त तो यही है– जो आर्य सिद्धान्त और वेद से विरोधी है। इसी से गीता वेद का विरोध करती है। बहुत शाखा वाले अनन्त वेदों से बुद्धि चंचल हो जाती है, वेदवाद में रत, जो वेदों में सब कुछ है अन्यत्र कुछ नहीं कहते हैं वे अज्ञानी हैं। वे कामभोग और स्वर्ग के मानने वाले और कर्म में अनेक प्रकार की विधि करने वाले, तथा भोग ऐश्वर्य में ही प्रीति रखते हैं। ऐसे लोग समाधि को नहीं प्राप्त हो सकते। हे अर्जुन! वेद त्रिगुणात्मक है, इसलिए तू निर्द्वंद्व, शुद्ध चित्त, योगक्षेम का त्यागी, आत्मनिष्ठ हो जा। वेद उपयोगी नहीं हैं, वे तो बड़े तालाब की अपेक्षा छोटे कुएं के समान हैं। वेद से तेरी मति मंद हो गई है, अतः जब निश्चल वृत्ति होगी, तभी योग प्राप्त होगा।

व्यवसायात्मिका बुद्धेरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनंताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्।
यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीतिवादिनः।
कामात्मानःस्वर्ग परा जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति।
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयाऽपहृतचेतसाम्।
व्यसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते।
त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्।
यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके।

तावान्सर्वेषु देवेषु ब्राह्मणस्य विजानतः।
श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचलाबुद्धिस्तदा योगमवास्प्यसि।

(गीता, अध्याय 2 श्लोक 41। 42। 43। 44। 45। 46।47)

वेदान्त ब्रह्मसूत्र– वेदांत दर्शन न्याय, वैशेषिक, योग, सांख्य, मीमांसा सभी का विरोध करता है। शंकराचार्य ने वेदान्त सूत्रों ही से अन्य दर्शनों का खण्डन किया है। इसके अधिकांश सूत्र तैत्तिरीय और वृहदारण्यक उपनिषद् के आधार पर बनाए गए हैं और उसका मूल उद्देश्य वही अहं तत्त्व है अर्थात् आत्मनिष्ठा। अब उपनिषद् गीता और ब्रह्मसूत्रों के संगठन पर विचार करना चाहिए— यह संगठन एक दूसरे की सहायता से आसुरी तत्वों को पुष्ट करने के उद्देश्य से हुआ है। हम फिर से इन तीनों ग्रन्थों पर विवेचनात्मक दृष्टि डालते हैं।

प्रस्थानत्रयी और शंकर का दुस्साहस– उपनिषद, गीता और वेदान्त सूत्र-इन तीनों के संगठन को 'प्रस्थानत्रयी' नाम दिया गया है। यह नाम श्री शंकराचार्य ने दिया है और बौद्धों के 'त्रिपिटक' की प्रितस्पर्धा में यह नाम रचा गया है। तीनों ग्रन्थों में प्रधान उपनिषद हैं। गीता में स्वयं कहा है कि उपनिषद् रूपी गायों को दुह कर गीता रूपी दुग्ध अर्जुन को पिलाया गया है। इस प्रकार गीता और वेदान्तदर्शन दोनों ही उपनिषदों के ही आधार पर बनाये गए हैं। ये उपनिषद ब्राह्मणों (ब्राह्मण ग्रंथों) के भाग हैं। शंकराचार्य ने सब प्रमाण उपनिषदों ही से लेकर ब्रह्म-सूत्रों के भाष्य की रचना की है। उन्होंने जो नवीन सांस्कृतिक दृष्टिकोण बनाया है, उसमें उन्होंने उपनिषद् को श्रुति और गीता को स्मृति बना दिया है। प्राचीन श्रुति वेद थे और याज्ञवल्क्य, मनु आदि स्मृतियां। अभी तक न किसी ने उपनिषद् को श्रुति ही बताया था, न गीता को स्मृति। सबसे प्रथम यह कार्य शंकराचार्य ने किया। इसका असल कारण यह था कि उन्हें जिन तत्वों की आवश्यकता थी, वे न वेद में थे, न स्मृतियों में। इसी से उन्हें यह दुस्साहस करना पड़ा। परन्तु इसका सांस्कृतिक प्रभाव आर्य संस्कृति पर यह पड़ा कि वह वेद और स्मृति से विमुख होकर सम्प्रदाय की ओर अभिमुख हो गई। जिस प्रकार वेद संहिता में आवश्यक बातों के न मिलने से उपनिषदों को नवीन श्रुति बना लिया गया, उसी प्रकार जहां-जहां व्यास सूत्रों के भाष्य में स्मृति के प्रमाणों की आवश्यकता हुई, शंकराचार्य ने गीता ही के श्लोक उद्धृत किए हैं।

प्रस्थानत्रयी की समीक्षा– गीता और ब्रह्म-सूत्र दोनों ही व्यास रचित कहे जाते हैं- पर हमें इस बात में सन्देह के बहुत से कारण मिलते हैं। वास्तव में उपनिषदों को नई श्रुति और गीता को स्मृति बनाकर उनके सिद्धान्तों को दार्शनिक रूप देने ही के लिए वेदान्त सूत्रों की सृष्टि हुई है। संभव है, व्यास का कोई ब्रह्म-सूत्र हो। पर वर्तमान ब्रह्म-सूत्र तो सर्वथा आधुनिक है, उसके अनेक सूत्रों में तो केवल उपनिषद और गीता में कथित भावों का खुलासा ही है। चिन्तामणि विनायक वैद्य भी इसी मत को स्वीकार करते हैं।[10]

एक उदाहरण लीजिए। वेदान्त में ईश्वर के अस्तित्व पर केवल दो सूत्र हैं– (शास्त्रयोनित्वात् - ईश्वर न होता तो ज्ञान कहां से आता?— जन्माद्यस्ययतः—संसार की स्थिति-प्रलय उत्पत्ति कैसे होती? तीसरे एक सूत्र में युक्ति की गई है– तत्तुसमन्वयात् वर्णन होने से– समन्वय होने से उसका अस्तित्व है, परन्तु समन्वय के जितने भी प्रमाण उद्धृत किए गए हैं सब उपनिषद् और गीता के ही हैं, और उन्हीं स्थलों के जो आसुर हैं। वेदों का तो कहीं उल्लेख ही नहीं है, यदि यदाकदा कहीं कुछ है भी तो वह भाष्यकारों ही का है। इस प्रकार वेदान्त यथार्थ में वेदान्त (वेदों का अन्त करने वाला) दर्शन है। संभवतः वैशेषिक आदि दर्शनों का विरोध इसीलिए किया गया है कि उनमें वेदोक्त भाव हैं।

अब आप एक बात पर ध्यान दीजिए— सब जानते हैं कि बौद्ध धर्म के चार भेद हैं। चारों में से दो पदार्थ को नाशवान मानते हैं। इनके मत से संसार में दो समुदाय हैं—एक में भूमि, जल, तेज और वायु के परमाणु हैं, दूसरे में रूप-विज्ञान-वेदना-संज्ञा और संस्कार, ये पांच स्कन्ध सम्मिलित हैं। पहले को वाह्य समुदाय और दूसरे को अन्तः समुदाय मानते हैं। बौद्ध दृष्टि से यही दो समुदाय सृष्टि का कारण हैं। वेदान्त

सूत्र–'समुदाय उभयहेतुकेऽपि तदप्राप्तिः' (2।2।1) में इन्हीं दोनों समुदायों का संकेत है। सूत्र का अर्थ है कि दोनों समुदाय जड़ हैं, अतः वे जगत उत्पादक नहीं। इस सूत्र से यह तो स्पष्ट ही है, कि 'ब्रह्मसूत्र' बौद्धों के बाद की रचना है, क्योंकि बौद्ध धर्म में चार सम्प्रदायों का विस्तार मसीह की पहिली शताब्दी के लगभग हुआ है। उसमें अनेक सूत्र तैत्तिरीय और वृहदारण्यक उपनिषद ही से सम्बन्धित हैं[11]। कृष्ण यजुर्वेद वर्तमान रूप में वैशम्पायन के शिष्य याज्ञवल्क्य के काल में सम्पादित हुआ था।[12] उसका ब्राह्मण तो बाद में बना तथा ब्राह्मण के बहुत दिन बाद उसका उपनिषद बना। वेदान्त सूत्रों में व्यास, व्यासपुत्र शुक तथा व्यासपिता पराशर का भी उद्धरण है।

पूर्व तु बादरायणो हेतुत्वव्यपदेशात् 3।2।41।

पुरुषार्थोऽतः शब्दादिति वादरायणः 3।4।1।

अनुष्ठेयं वादरायणः साम्यश्रुतेः 3।4।19।

द्वादशाहवदुभयविधं वादरायणोऽतः 4।4।12।

यह बड़ी विचित्र बात है कि वादरायण ही अपनी रचना में अपना उल्लेख करें। पूर्वोक्त कारणों से यह ग्रन्थ उत्तरकालीन प्रतीत होता है, और इसका एक प्रबल प्रमाण यह है कि उस पर कोई प्राचीन भाष्य नहीं है।[13] एक बात और भी चमत्कारिक है- श्रीमद्भागवत और वेदान्त दर्शन दोनों ही का प्रारम्भ एक ही है– श्रीमद्भागवत और वेदान्त दर्शन दोनों ही का प्रारम्भ एक ही वाक्य 'जन्माद्यस्य यतः' से होता है। श्रीमद्भागवत के कर्ता का तो आज तक पता ही नहीं लगा— हां गीता और वेदान्त व्यासकृत समझे जाते हैं, परन्तु इसमें कितना सत्य है यह पाठक अब विचार लें। गीता में ब्रह्म-सूत्रों का उल्लेख है,[14] परन्तु वेदान्त के अनेक सूत्र केवल गीता के आधार पर हैं।

वेदान्त सूत्र 'स्मृतेश्च' 1। 2। 6 गीता के 'ईश्वरः सर्व भूतानां' का संकेत करता है। 'अपिच स्मर्यते' 2।3।45– गीता के ममैवांशोजीवलोके. का संकेत करता है।

'अपिच स्मर्यते' 2।3।24 गीता के—न तद्भासायते सूर्यो. इसका संकेत करता है।

इन सूत्रों में स्मृति की जिज्ञासा गीता ही से पूरी की गई है। शंकराचार्य ने वेदान्त सूत्र के 2।3।45 और 1।3।24 वें सूत्र के भाष्य में यह बात कह भी दी है।[15] कि यह बात गीता स्मृति में है।

तिलक, जो गीता के संसार भर में सबसे बड़े विद्यार्थी हैं, गीता की प्राचीनता पर संदेह करते हैं।[16] गीता पर शंकराचार्य से पूर्व किसी ने टीका ही नहीं की। न शंकर से पूर्व इसका पृथक कोई अस्तित्व ही था। गीता के 18वें अध्याय के अन्त में संजय कहता है कि व्यास की कृपा से मैंने इस परम गुह्य को कृष्ण से सुना। संजय ने कृष्ण से सुना, पर व्यास की कृपा से क्यों? बात तो यह प्रतीत हो रही है कि संजय खुद दिव्य दृष्टि से देखा युद्ध का हाल धृतराष्ट्र को कह रहे हैं। अर्थात् व्यास से पहिले संजय को ही पूरा ज्ञान होना चाहिए।

अब उपनिषदों पर भी एक बार फिर विवेचक दृष्टि डालिए। शंकर ने दस उपनिषदों को प्रधान मान कर उनका भाष्य किया है। उनमें भी ईशोपनिषद प्रथम है। यह वाजसनेयी शुक्ल यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय है, और ईशावास्य वाक्य से प्रारम्भ होता है। इसी से इसका नाम ईशोपनिषद है। परन्तु अब प्रारम्भ ही में इसकी मिलावट देखिए–

वेद में मंत्र हैं–

हिरण्यमयेनपात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

याऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् (यजुर्वेद)

परन्तु उपनिषद में इस मंत्र में डेढ़ श्लोक मिलाया गया है, देखिये–

तत्त्वं पूषन्मपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह।

तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि।

योद्रऽसावसी पुरुषः सोऽहमस्मि (ईशोपनिषद्)

कुछ विद्वानों का कथन है कि यह डेढ़ श्लोक कण्व शाखा का है। कण्व शाखा में वह है अवश्य; बृहदारण्यक (5।15।1) में भी है। परन्तु सर्वत्र यह बाहर से आया है। और इस बात के संदेह के बहुत कारण हैं कि आसुर उपनिषद् से ही आया है। इसी प्रकार मुण्डक उपनिषद् के तृतीय मुण्डक के नवम् खण्ड में एक श्लोक को ऋचा कह कर बताया गया है। पर चारों वेदों में कहीं भी वह ऋचा नहीं है। इसी

प्रकार से तैत्तिरीय उपनिषद् में भी ऐसी बातें हैं, जो वैदिक परम्परा की विरोधिनी हैं। वृहदारण्यक में लिखा है– आरम्भ में एक ही आत्मा था दूसरी कोई वस्तु न थी।[17] परन्तु छांदोग्य कहता है– आरम्भ में केवल एक सत था और कुछ नहीं था।[18] आगे छांदोग्य ही में इसके विपरीत कहा गया कि एक कहता है कि आरम्भ में एक असत् ही था उसी से सत की उत्पत्ति हुई।[19] इससे यह पता लगा कि उस काल में आत्मा, सत और असत् पर विश्वास रखने वाले तीन सम्प्रदाय थे।[20] एक आत्मा से, दूसरा सत् से और तीसरा असत् से जगत् की उत्पत्ति मानते थे।

अब आप 'सत्' और 'असत्' इन दो शब्दों पर ध्यान दीजिए। सत् का अर्थ भाव या अस्तित्व है। इसका अर्थ है– सृष्टि ऐसी ही थी। असत् का अर्थ शून्य, अभाव है। इसका अभिप्राय यह है कि प्रलय-दशा थी। सत् और असत् से भाव और अभाव ही का अर्थ लिया गया है। क्योंकि वहां बहस भी है कि असत् से तेज और जल कैसे उत्पन्न हो सकता है। इससे यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि यह सत् और असत् दोनों ही शब्द प्रकृति के लिए हैं और थी तथा नहीं थी का अर्थ रखते हैं। इस प्रकार सत् और असत् सिद्धान्त वाले भौतिक कारणों ही से जगत की उत्पत्ति मानते हैं।

अन्ध विश्वास भी उपनिषदों में बहुत हैं– 'चोर का हाथ बांध कर लाते हैं, राजा उसके हाथ में लाल गर्म लोहा देता है, यदि वह उससे जल जाता है तो चोर है'।

यदि स्वप्न में स्त्री दीखे तो समृद्धि मिलेगी।[21] काले दांत वाला पुरुष दीखे तो मृत्यु होगी।[22] 'जैसे चन्द्रमा राहु के मुख से छूटता है।[23] सूखा काठ हरा करने वाली[24] बाजीकरण औषधि को अपने पुत्र और शिष्य को भी न बताएं' ये सारी बातें बुद्धिविरोधी, अन्धविश्वासमूलक हैं तथा आसुरी मिश्रण है।

सृष्टि रचना और स्वर्ग के संबंध में जो उपनिषदों के सिद्धान्त हैं, वे सेमेटिक सिद्धान्तों से मिलते हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में सत था या असत था या आत्मा थी। यह अनार्य सिद्धान्त ही है। इसी प्रकार स्वर्ग और मोक्ष, बहिश्त और नजात की छाया है, जो सेमेटिक दर्शन है।

गीता में कहा है कि असुर यह मानते हैं कि यह संसार असत्य है, कोई ईश्वर नहीं है, मैं ही ईश्वर हूं, मैं ही भोक्ता हूं, मैं ही सिद्ध, बलवान और सुखी हूं।[25] इसी से अपने शरीर की सेवा वे जीवन भर तथा मरने पर भी करते हैं। अब इस सिद्धान्त से वेदान्त का सिद्धान्त–'ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या है, जीव ही ब्रह्म है[26], मिलाइए तो आप देखेंगे कि यह शुद्ध आसुरी भाव है। गीता का ईश्वरोऽहम' और वेदान्तियों का 'अहं ब्रह्मास्मि' तथा उपनिषद का 'एव आत्मेति', एतद् ब्रह्म सब एकार्थवाची ही हैं। श्रीकृष्ण का ईश्वर की भांति पूजा जाना मनुष्य-पूजा का एक ज्वलंत उदाहरण है। कृष्ण ही की भांति और भी मनुष्य पूजे जाते थे। असीरिया के असुर वाणीपाल और नासिरपाल भी ऐसे ही राजा थे, जिन्हें वहां के लोग पूजते थे। उपनिषदों में भालुकी क्रौंचकी, आसुरायण, वैयाध्रपदी, यम-मृत्यु आदि असुर राजाओं और ऋषियों के नाम आते हैं। असुराचार्यों की वंशावलियां भी वहां मिलती हैं। उपनिषदों से यह भी पता लगता है कि ब्राह्मणों, आर्यो से यह विद्या गुप्त रखी जाती थी।[27] ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ क्षत्रियों ने इस विद्या को स्वीकार किया था।[28]

3. दर्शन और सम्प्रदाय

पाशुपत दर्शन वास्तव में बौद्ध और हिन्दू वामाचार का सम्मिश्रण है। इनके आचारों में जटा धारण करना, भस्म लगाना, नंगा रहना या चर्मखण्ड धारण करना और लिंग पूजन करना ही है। लिंग-पूजन को इन्होंने बहुत महत्व दिया है। भारत में ईसा की चौथी शताब्दी में लिंगपूजन का बड़ा महत्व हो गया था। वाकाटक राजाओं के सम्बन्धी राजा भारशिव कहाते थे, वे अपने कंधे पर लिंग लिए घूमा करते थे।[29] इसी वाकाटक वंश के राजा द्वितीय रुद्रसेन को द्वितीय चन्द्रगुप्त ने अपनी कन्या प्रभावती ब्याह दी थी। इस प्रकार गुप्त व भारशिव और वाकाटक तीनों राजवंश लिंग पूजन के समर्थक और मतानुयायी थे। फिर भी भारत में सर्वत्र इसका प्रचार नहीं हुआ। ह्वेनसांग अपने यात्रा-विवरण में कहीं भी लिंग-पूजन का वर्णन नहीं करता, महादेव की मूर्ति के वर्णन

उसने अवश्य किए हैं। काशी में उसने महादेव की 100 फुट ऊंची ताम्बे की महादेव मूर्ति देखी थी।[30] एलौरा और दक्षिण के अनेक स्थानों में शिव की बड़ी-बड़ी विशाल मूर्तियां देखने को मिलती हैं।

परन्तु महमूद गजनवी के समय में लिंग-पूजा सर्वत्र प्रचलित हो गई थी, और उसके साथ स्थायी रूप से शिव का नाम जुड़ गया था। सोमनाथ में लिंग-पूजन ही होता था। मूर्तियों के बनाने की विधि अलवरूनी ने वृहत्संहिता के आधार पर लिखी है। परन्तु संभवतः मुसलमानों के आक्रमण से ही मूर्ति के स्थान पर शिवलिंग की पूजा प्रारम्भ हो गई थी। मुसलमान मूर्ति को तोड़ डालते थे। धातु की होने पर उठा ले जाते थे, उन्हें फिर बनाना दिक्कततलब था। ऐसी हालत में लिंग स्थापना सरल थी। फलतः सर्वत्र शैव विधि में लिंग-पूजन प्रारम्भ हो गया। लोग वामाचार को भूल कर भी शुद्ध शिव-लिंग पूजने लगे। परन्तु वाममार्ग का यह विष बौद्ध-जैन-शैव-वैष्णव सभी में फैल गया। छठी-सातवीं शताब्दी में बौद्धों ने जो तांत्रिक ग्रंथ लिखे हैं, वे लिंग-पूजा के समान ही वीभत्स हैं, उनमें नग्न स्त्री-पूजन तथा मत्स्य, मांसादि का यथेष्ट सेवन भरपूर है, वे दिन में बुद्ध की और रात में नग्न स्त्री की पूजा करते थे। इसी समय उन्होंने मंजु श्रीकल्प आदि पुराणों की रचना की। ऐसा ही जैनों ने किया। बौद्ध तथा जैनों के अनाचार की प्रतिक्रिया-रूप कापालिकों का शैव पंथ निकला– जिन्होंने तलवार, स्त्री और मद्य की सहायता से सबको अपने रंग में रंग लिया।

सातवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में दक्षिण के जैनों पर सुन्दर पाण्ड्य ने खूब गजब ढाया। पहले यह राजा जैन-धर्मी था; पीछे उसकी पत्नी के शैव गुरु तिरुज्ञान संमंद ने उसे शैव धर्म में दीक्षित कर लिया। इसके बाद उसने अपने पहले के जैन-धर्म-गुरुओं का कत्लेआम शुरू कर दिया। आठ हजार जैन साधुओं की उसने क्रूरतापूर्ण हत्या की। उसके क्रूर अत्याचारों के चित्र अर्काट के तिरुवत्तूर मंदिर की दीवारों में खुदे हुए हैं।[31] वैष्णव धर्म– भक्ति से अभिप्राय वैष्णव धर्म से है। शठकोपाचार्य और यौवनाचार्य ने जो उद्योग किया, उस पर फल आया ईसा की तीसरी शताब्दी में, जब मद्रास के द्रविड़ ब्राह्मण विष्णु स्वामी ने वैष्णव संप्रदाय की स्थापना की। इसे पुष्ट किया रामानुजाचार्य ने। उनका जन्म ई.1017 में श्रीरंग के पुजारी-वंश में हुआ। वे संस्कृत के प्रकांड पण्डित थे। उन्होंने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य रचा और विशिष्टाद्वैत मत चलाया। उस समय बुलोत्तुंग नामक चोल राजा रंगम में गद्दी पर था। उसे रामानुज का यह उद्योग अच्छा नहीं लगा। उसके भय से ई. स. 1080 से 1090 के बीच रामानुज को रंगम छोड़कर भागना पड़ा। बुलोत्तुंग ने रामानुज के मित्र वुरत्तालवार की आंखें फुड़वा डालीं, और इस संप्रदाय का जो आदमी जहां मिला, उस पर अत्याचार किया। रामानुज ने दस-बारह वर्ष मद्रास में रह कर और वहां के राजा विहिदेव (विष्णुवर्धन) को अपना अनुयायी बना कर जैनों पर मनमाना अत्याचार किया, उनके सिर तेल की घानी में डाल कर पीस दिए।[32] शिव और विष्णु दोनों ही लड़ाके देवता हैं। दोनों ने दैत्य-वंश का संहार करने में उचित अनुचित कुछ भी नहीं देखा। शिव तो साक्षात् भूत-पिशाचों के स्वामी हैं, इसी से उनके सम्प्रदाय में पाशुपत और कापालिक जैसे अघोरी-पंथों का उदय हुआ। दक्षिण में जब शैवों द्वारा बौद्धों और जैनों का महत्व नष्ट हुआ तो वासुदेव और विष्णु की पूजा प्रचलित हो गई। आगे ये दोनों, 'विष्णु के अवतार ही वासुदेव हैं,' कहकर एक कर दिए गए। परन्तु इस देव-पूजा को वैदिक आधार प्राप्त नहीं था। इससे उक्त वंशीय लोग उसे नहीं मानते थे, इसलिए रामानुज ने श्रीभाष्य और अन्य संस्कृत ग्रन्थ लिख कर विष्णु पूजा को महत्व देने का प्रयत्न किया तथा प्रस्थानत्रयी का सहारा लिया।

रामानुज के पश्चात् माध्वाचार्य ने वैष्णवों की एक और शाखा स्थापित की। इनका जन्म ई. 1197 में हुआ और मृत्यु 1276 के लगभग हुई। यह समय उत्तर भारत में मुसलमानों के उदय का था। लोग जबर्दस्ती मुसलमान बनाए जा रहे थे, और स्थान-स्थान पर मस्जिद तथा ईदगाह बन रहे थे। उधर दक्षिण में हिन्दू ब्राह्मण नए-नए पंथ बनाए जा रहे थे। उस काल में जैसी राजनैतिक अंधाधुंधी थी, वैसी ही धार्मिक भी। जैसे कोई छोटा-मोटा जमींदार थोड़ी सेना

एकत्र कर आसपास का इलाका लूट कर राजा बन जाता था, वैसे ही कोई भी विद्वान ब्राह्मण अपने अनूकुल ब्रह्मसूत्र का भाष्य लिखकर एक नया संप्रदाय खड़ा कर डालता था। जनता के सुख-दुखः से उस समय न राजा को वास्ता था, न इन धर्माधिकारी ब्राह्मणों को।

वैष्णव धर्म की तीसरी शाखा के प्रवर्तक निम्बार्क ने बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में काम किया। ये तेलगु ब्राह्मण थे। इन्होंने वासुदेव पूजा को दूसरी दिशा में मोड़ा। विष्णु और लक्ष्मी अथवा कृष्ण-रुक्मिणी को एक ओर हटा कर राधा-कृष्ण की पूजा को महत्व दिया। राधा और गोपियों को आगे लाने वाले ये प्रथम वैष्णव नेता थे। इनके बाद 15वीं शताब्दी के अंत में तथा 16वीं के प्रारम्भ में वल्लभाचार्य और चैतन्य ने राधा-कृष्ण की पूजा का और भी विकास किया। धीरे-धीरे वामतत्त्व की प्रधानता बढ़ी, और कृष्ण की अपेक्षा राधा की पूजा को महत्त्व मिलने लगा। कृष्ण और गोपियों की क्रीड़ाएं गुप्तकाल में उच्चवर्ग में प्रिय हो चली थीं, अब राधा को परकीया के रूप में खुल्लमखुल्ला आगे लाने पर उसी के आधार पर वामतत्त्व ज्ञान स्थापित किया गया। जयदेव कृत गीतगोविन्द में राधा-कृष्ण के रास और उनकी रति-क्रीड़ा का अत्यंत अश्लील वाममार्गी वर्णन है।

संदर्भ

1. प्राचीनशालः औपमन्यवः महाशालाः महाश्रोत्रियः (छान्दोग्य 5।11।1)। शैनको ह वै महाशालो (मुण्डक 1।13)।
2. तस्याहमुखमुपोद्गृहणन्नुवाचआजहारेमाः शूद्रानेनैव मुखेनालापयिष्यथा इति। (छान्दोग्य 4।25)।
3. योषा वा अग्निगौतमस्यउपस्थ एव समिल्लोमानि धूमो योनिरर्चियदन्तः करोति तेऽङ्गारा
अभिनन्दा विस्फुलिङ्गास्तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति तस्मा दाहुत्यै पुरुषः सम्भवति।
योषा वाव गौतमाग्निस्तस्याउपस्थ एव समिदुपमंत्रयते स घूमो योनिर्रचियंदन्तः करोति
तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुलिंगाः तस्मिन्नेतस्मिन्नौ देवा रेतो जुह्वति तस्या आहुर्तेर्गर्भः सम्भवति।
(वृहदारण्यक 6।2।13 और छांदोग्य 5।8।1-2)।
4. उपमन्त्रयते स हिंकारो ज्ञापयते स प्रस्तावः स्त्रिया सह शेते स उद्गीथः प्रतिस्त्री सह शेते स प्रतिहारः कालं गच्छति तन् निधनं पारंगच्छति तन्निधनमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतम्। (छांदोग्य. 2।13।1)।
5. अथ यस्य जायये जारः स्यात्तंचेद्द्विष्यादाम पात्रेऽमुपसमाधाय (बृहदारण्यक 6।4।12)।
6. वृहदारण्यक 4।3।21 और 4।3।34।
7. अथ य इच्छेत्पुत्रो मे पण्डितो विजिगीषुः समितिगमः शुश्रुषितां वाचं भाषिता जायेत, सर्वान्वेदाननुब्रवीत् सर्वमायुरियादिति मांसौदनं पाचयित्वा सपस्मन्त्रमश्नीयातामीश्वरौ जनयित्वा औक्षेण वाऽऽर्षभेण वा। (बृहदारण्यक 6।4।11)।
8. कठोपनिषद 1।25।
9. गीता।
10. देखिए महाभारत मीमांसा पृ. 55।
11. वेदान्त का दूसरा सूत्र तैत्तिरीय उपनिषद के 'यतोवाद्मानि' भूतानि. वाक्य से संबंधित है। तथा तीसरा–बृहदारण्यक उपनिषद के – एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेवैतत्–से।
12. आदित्यानि इमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येना-रव्यायन्ते।
(बृहदारण्यक उपनिषद)।
13. शब्द-बौधायनी टीका अवश्य सुनी जाती है।
14. ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव, गीता 13।4।
15. स्मर्यते भगवद्गीतासु गीतास्वपिच स्मर्यते।
16. देखिये गीता रहस्य भाग 2 पृ. 536।
17. आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नयत्किंचन मिषत् (वृह.1।1)।
18. सदैव सोम्येददमग्रे आसीदेक मेवाद्वितीयम् (छान्दोग्य 6।1।1)।
19. तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सदजायत। (छान्दोग्य 6।1।1)।
20. फाहियान कहता है कि मध्यभारत में 96 मिथ्या– दृष्टि संप्रदाय है; वे आत्मा की नित्यता मानते हैं। प्रत्येक संप्रदाय की शिष्य परंपरा है। (Buddhist Records. P. XI viii)।
21. यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियं स्वप्नेषु पश्यति। समृद्धिं तत्र जानीयात् तस्मिन् स्वप्ननिदर्शने। (छान्दोग्य 5।2।9)
22. पुरुषं कृष्णदंतं स राजं हंति (छान्दोग्य)
23. चन्द्र इव राहुर्मुखात् प्रमुच्य (छान्दोग्य 8।13।1)।
24. शुष्के स्थाणौ निषिञचेज्जयेरञ्छाखाः प्ररोहेयुः पलाशातिनतमेतं नपुत्राय वान्तेवासिने वा ब्रूयात् (वृहदारण्यक 6।3।12)।
25. असत्यमप्रतिष्ठां ते जगदाहुरनीश्वरम् (गीता 16/8) ईश्वरोऽ अहं-भोगी सिद्धोऽहं बलवान सुखी (गी. 16।14)।
26. ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः। (वेदान्त)।
27. न प्राक् त्वत्तः पुरा विद्या ब्राह्मणान् गच्छति (छान्दोग्य (5।3।7) अथेदे विद्येतः पूर्वं न कस्मिंश्चन ब्राह्मण उवास तां (बृहदारण्यक 6।2।8)।
28. सर्वेषु लोकेषु क्षत्रस्यैव प्रशासनमभूत (छान्दोग्य 4।3।7)।
29. असंभारसन्निवेशितलिंगोद्धहनशिवसुपरितुष्टसमुत्पादितराजवंशानां.... भारशिवानां आदि (Corpus Inscriptionum Indicarum iii; 23-9-37. 245)।
30. Buddhist Records ii. 45.
31. Early History of India, P. P. 474-75.
32. देखिए–Ancient India, P. P. 258-60.

■

चौथा प्रकरण

1. अत्रि

चन्द्रवंश के आदि पुरुष अत्रि हैं, जो प्रजापति थे। ये भृगु-पुत्र शुक्र के पुत्र थे।[1] इनका राज्य अत्रिय देश में था।[2] तथा ये वेदर्षि थे। इनका स्थान 'परेण हिमवतम्' अर्थात् हिमालय के उस पार अपर्वत में अत्रीक (Atrek) नदी के तीर पर 'अत्रिपत्तन' (Atropatene) था, जिसको अब 'अजरबेजान' भी कहते हैं।[3] यह ईरान और रूस का सीमान्त प्रदेश है। इसी स्थान को ईरानियों का स्वर्ग (द्वितीय वैकुण्ठ) कहा गया है[4], सत्यलोक या सत्यगद्दी (Sattagydia) के सम्मुख सुमेरु प्रांत के निकट यह स्थान है। Atropatene ही आत्रेय भूमि थी तथा इसी को वैकुण्ठ या स्वर्ग कहा गया है।[5] इस भूमि को तपोभूमि भी कहते थे, यहां रात-दिन प्रकाश रहता था।[6] संसार में केवल ईरान का यह प्रदेश, जो तपूरिया प्रांत कहाता है, तथा जिसे पुराणों में तपोभूमि कहा गया है, देमावन्द पर्वत के अंचल में है। यहां रात-दिन प्रकाश रहता है।[7] पुराणों का कथन है कि यह अत्रि आश्रम की भूमि 'सब कामनाओं को देने वाली' अर्थात् 'कामधेनु' थी।[8] ठीक यही बात ईरान के प्राचीन इतिहासकार भी लिखते हैं, कि यह भूमि सर्वोपरि उपजाऊ, फल-फूल देने वाली है। यहीं 'सुरतरु' कल्पवृक्ष है, यही स्थान लक्ष्मी का जन्म-स्थान था।[9] यहां 'अतीक' नदी है।[10] यहां अत्रि गोत्र के लोग (Atreus) बसते हैं।[11] अत्रि-वंश का वंश-वृक्ष इस प्रकार है–

अत्रि (अत्रि असुर याजक थे)
|
चन्द्र 'सोम' (जिनके नाम पर चन्द्रवंश चला)
|
मंत्र-द्रष्टा (ऋ. 10।95) बुध (पत्नी, इला-मनुपुत्री)
|
मंत्र-द्रष्टा (ऋ. 10।95) पुरूरवा

2. अरब

अरब पूर्वी और पश्चिमी सभ्यता का प्राचीनतम प्रथम वाणिज्य स्थल है। प्राचीन काल से ही अरब के असुर और फिनीसिया के फशीश बड़े प्रसिद्ध नाविक थे। मूसा के काल में भी अरब और भारत के बीच भारी व्यापार-सम्बन्ध था। यही कारण है कि भारत और मिस्र के अरब से जो जल-थल मार्ग हैं, वहीं इन देशों में आबादी है। शेष भाग जन-शून्य है। यमन को Universal Mart कहा गया है।[12] अरब में सोने की इस कदर बहुतायत थी कि उसका मूल्य लोहे से केवल दूना और पीतल से तिगुना था। हां, चांदी का मूल्य

सोने से दस गुना था।[13] अरब में लोग चन्दन का ईंधन जलाकर खाना पकाते थे। उनके खर्चीले स्वभाव, भूषण, रत्न तथा हाथी-दांत जड़े किवाड़ों के महल अद्भुत थे। अरब के च्छुडद् आदि धर्म क्षेत्रों में होम यज्ञ की सुगन्धित वायु मिस्र आदि देशों तक जाती थी। इसीलिए एलेग्जेंडर बेबिलोनिया में अपनी राजधानी बनाना चाहता था। मिल्टन ने अपनी कविता में 'The Ideal Treasures of Arabia' का उल्लेख किया है, जहां की सुगन्धित हवा से सागर महकते थे। Saana का प्रसिद्ध मंदिर, 'Beit Gharnadan' 'शुक्र' Venus का मन्दिर था। कुरिश में 'अलउजा' का मंदिर 'शुक्र' का मंदिर था।

मक्का (Mocha) मूकों-मगोका प्राचीन स्थान है। यहां का प्रसिद्ध मंदिर 'काबा' वास्तव में 'काव्य-शुक्र' ही का मंदिर है। यह स्वाभाविक ही है कि शुक्र के वहां से चले जाने के बाद उनके भक्तों ने उनकी समाधि बनाई हो।[14] काबा शब्द काव्य ही का अपभ्रंश रूप है, तथा यही कारण है कि 'शुक्र' का अर्थ 'जुमा' (बड़ा) किया जाता है तथा शुक्रवार को पवित्र दिन माना जाता है। रसूल मुहम्मद के समय में काबे में 'शुक्र' के अतिरिक्त वृहस्पति (Jupiter), मंगल (Mars), अश्विनीकुमार (Yank or Hors), गरुड़ (Nasr-Eagle), नृसिंह (Yaghuth) की मूर्तियां थीं। एक मूर्ति 'बलि' की थी, जिसका एक हाथ स्वर्ण का था, जो दानी होने का प्रतीक था। इसका नाम Holul था जिसके सम्बन्ध में कहा गया था कि वह प्रथम Syria के Belka के स्थान में थी। यह मूर्ति अब्राहिम और इस्माईल की मूर्ति के बराबर रखी थी।[15] एक राजा की मूर्ति का नाम Wadd था, जिसकी उपासना Kelb वंशी अरब करते थे। Sawak की मूर्ति की पूजा Amadan Tribe (सूर्यवंशी) करते थे। मगों की अग्नि पूजा भी होती थी। Mana के उपासक Khozzah खोजा लोग थे, और Aluzza कुरीशों की देवी थी। पैगम्बर मुहम्मद, इब्राहिम व हगर के पुत्र इस्माईल के छोटे भाई केदार के वंश में थे। इस्माईल काबा के नेता थे। मुहम्मद पैगम्बर ने सब मूर्तियों को तोड़कर फिकवा दिया। सिर्फ एक 'काला पत्थर' समारोह के साथ काबे के मन्दिर में स्थापित किया। इस धार्मिक समारोह को Monotheism कहते हैं।[16] यह काला पत्थर एक शिव-लिंग है, जो यथेष्ठ ऊंचा और चौड़ा है तथा जो सोने की जलहरी पर रखा है। इसे ही Mana कहते हैं।[17] अब मुसलमान हज के यात्री इसी को चूमते हैं और इसे 'संगे अवसद' कहते हैं। वास्तव में प्राचीन काल में अरब में शिव की पूजा होती थी, जिसे इतिहासकार Sabaism कहते हैं। पीछे अन्य देवों की पूजा प्रचलित हुई। मुहम्मद ने उन सब भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं की पूजा बन्द कराकर इस प्राचीन शिव की उपासना ही को प्रधानता दी। प्रसिद्ध है कि यह पत्थर पहले सफेद था, अब चिरकाल से पापियों के पाप और स्पर्श (चूमने) से वह काला पड़ गया।

अरब के प्राचीन धर्म का नाम Sabaism या Sabeanism है Saba या Saw धर्म का केंद्र Hadrament प्रांत में था। इस धर्म के मानने वाले ग्रह-पूजा भी करते थे, जो प्राचीन अरब और पर्शिया में प्रचलित थी। ये लोग Sabeans कहाते हैं तथा उनके प्रदेश का नाम Saba था। अरब का जो प्रांत आज Katar कहाता है वह पुराण-वर्णित केदार है। केदार के ऊपर Sheb है। Bida केदार के नीचे है। च्ण्ड्ड के सामने ही फारस की खाड़ी है, जो 'क्षीर सागर' कहाता था, तथा जहां विष्णु निवास करते थे। भारत में पीछे जो बद्रीनाथ और केदारनाथ नाम के शिव-मंदिर हिम-शैल पर स्थापित हुए, वे इन्हीं केदार और बीदा के नाम पर हैं, जो प्राचीन काल में अरब के शिव-स्थान थे। संभव है इन मंदिरों के संस्थापकों की वंश-परम्परा अरब के Sabeans से सम्बन्धित हो। क्योंकि ये लोग दक्षिण के वहिरागत जनों में थे, भारतीय आर्य न थे।

अरबी घोड़े उत्तम नस्ल के समझे जाते हैं। अरब संसार-भर में उत्तम घोड़ों के लिए प्रसिद्ध है। संस्कृत में 'अर्व' कहते ही उस स्थान को हैं जहां

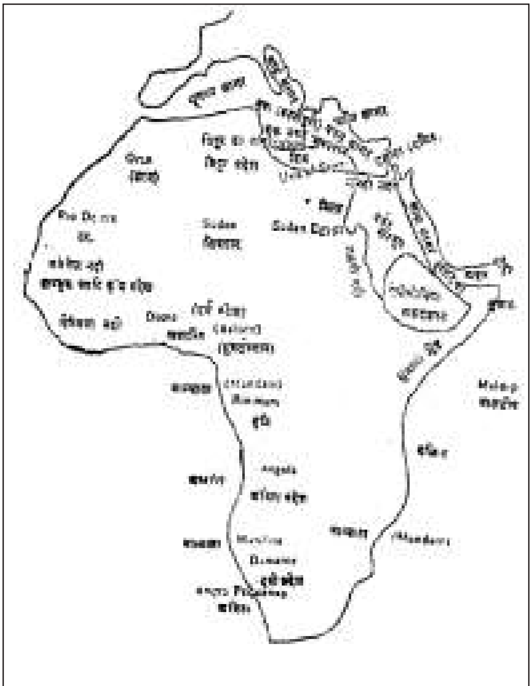

अरब

उत्तम घोड़े हों। 'अर्व' की 'शेख' जाति ब्राह्मण के समान सर्वोच्च समझी जाती है। प्रसिद्ध है कि अरब याजकों (ब्राह्मणों) ही का देश था। स्मृति 'शेख' को ब्राह्मण-संयोग से उत्पन्न संकर जाति बताती है।[18] रामानुज-सम्प्रदाय का मूल प्रचारक यवनाचार्य नवीं शताब्दी में अरब ही से आया था, जिसे शकोप आदि आंदोलनकारियों ने मदद दी थी। यह अरब का ब्राह्मण था और उसने एलेग्जेण्ड्रिया के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय में शिक्षा पाई थी।[19] अरब के लोग कविता-प्रेमी, वाचाल तथा अतिथि-सत्कारकर्ता प्रसिद्ध हैं। घुड़सवार भी उत्कृष्ट हैं। फसाहत बलागत भी अरबों में अप्रतिम है। अरबी भाषा में सूर्य के दो सौ, सिंह के पांच सौ, तलवार के एक हजार और मधु के एक सौ नाम हैं। कविता में अरबी साहित्य अद्वितीय है। अरब की मजलिस संसार प्रसिद्ध है।[20] पाश्चात्य इतिहासकारों का मत है कि 'अरब' शब्द हिब्रू भाषा के शब्द 'अराबा' या 'अरोबा' से बना है, जिसका अर्थ होता है– मैदान। इसका प्राचीन नाम Land of Shinar है।[21] पुराणों में वर्णित श्रीनार यही प्रदेश है। फारस के इतिहासज्ञों का मत है कि श्रीनार, 'शीनारभूमि' पर्शियन गल्फ के ऊपर है।[22] यही सुमेरु है। पौराणिक मत से अरब का ही प्राचीन नाम भूमि, नभि, सुमेरु और श्रीनार था। अधिकांश उत्तर कालीन देवासुर-संग्राम इसी भूमि में हुए। कारण यह है कि यह उस काल का प्रमुख वाणिज्य-स्थल था। 'शुक्रनीति' से यहां महिदेवों की स्थापना हुई, तथा दारुण देवासुर-संग्राम समाप्त हो गए। अरब की प्राचीन किम्वदंती है कि प्राचीन काल में Lohsa अर्थात् Bahrian प्रान्त में बड़े शूरमा Giants रहते थे। यहां एक Terrestrial Paradise था। इस प्रांत को अब 'रोबा-उल-खेत' कहते हैं। 'शुक्रनीति' से युद्धों की समाप्ति हुई, तथा शुक्र की प्रतिष्ठा हुई और शुक्र को महान् 'जुम्मा-आरूबा' की उपाधि दी गई।[23] अरब में (Samara) समर नामक स्थान अनेक हैं। ये सब कभी प्रसिद्ध युद्ध-स्थल रह चुके हैं। इस प्रकार अरब, भूमि, सुमेर, Plain, अरेबिया आदि नाम इस देश के पड़े।

इतिहासवेत्ता कहते हैं कि 'जोक्टन' के पुत्र का नाम 'यारब' था। उसके नाम पर यह देश अरब प्रसिद्ध हुआ। परन्तु पाश्चात्य Scripture कहते हैं कि जोक्टन के कोई पुत्र था ही नहीं। संभवतः यह जोक्टन (Jokten) कश्यप है तथा यारब, Edom, Erythros, Ad सूर्य के नाम हैं। फारस की खाड़ी का नाम पहले Erythros Red था, तथा लाल सागर का नाम पहले Edom था। ये सब सूर्य ही के नाम हैं। Red सूर्य का ही प्रतीक है। फारस के मरुभूमिनिवासी पहले 'आदिल' कहाते थे। अदन आद का नगर था। वहां आद का मन्दिर था जो सोने-चांदी की ईंटों से बना था।[24] उसकी छत मोतियों और हीरों से जड़ी हुई थी। Aditas आदित्य थे। आद, आदम, रबरा सूर्य के नाम हैं।[25] सूर्य के उपासक मग थे। Bawal, Sunday, Rabiah, Rabihah सूर्य के दिन व मास हैं। इस प्रकार अरब सूर्य, वशिष्ठ, शुक्र तथा भृगुवंशियों एवं शिव

की विहार-भूमि है। मग, मिहिर, मूक, मुनि, मक्का आदि अरब नाम इसके संकेत हैं। मग याजिक थे, इसी से अरब की वायु यज्ञ के धुएं से भरी रहती थी।[26] तथा यमन-प्रदेश मंदिरों से भरपूर था, जो मुनियों के थे।

अरब के निवासी शैव (Sabaism) धर्मी थे। Saba या Sawa धर्म का केंद्र Hadramant प्रान्त में था। इस्लाम धर्म उसी का रूपान्तर है। शैव्यों के धर्म में मुख्यतः ग्रह-पूजा होती थी। सूर्य, शनि आदि सात ग्रहों की पूजा के सात प्रसिद्ध मन्दिर थे।[27]

3. असुर

'असु' धातु से असुर शब्द बनता है। इसका अर्थ है प्राण। असुर शब्द का अर्थ है प्राणवान, सामर्थ्यवान, बलवान। वैदिक साहित्य में सुर शब्द कहीं नहीं है। असुर शब्द इन्द्र, वरुण, मित्र, अग्नि आदि के लिए प्रयुक्त हुआ है तथा सब देवों का समावेश असुरों में ही किया गया है। कहीं-कहीं देवों के अतिरिक्त अन्य असुर कहे गए हैं।[28]

परन्तु ब्राह्मणों, आरण्यकों और उपनिषदों में अनेक स्थानों पर देवासुर शब्द है। पुराणों में 'देवासुरसंग्राम' तथा बौद्ध-ग्रन्थों में देवासुर संग्रामों भी है। इनसे यह प्रमाणित होता है कि मसीह से पूर्व लगभग दसवीं सदी के बाद देवों से असुरों को भिन्न कर दिया गया था। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि जब असीरियन लोगों ने बेबिलोनिया को निरन्तर चढ़ाई करके जय कर लिया तो सर्वत्र उनका प्रभाव छा गया। उनके मुख्य देवता असुर थे तथा विजयी होने से वे अपने को असुर कहने लगे थे। अतः 'असुर' शब्द उसी भांति घृणा और तिरस्कार से लिया जाने लगा, जिस प्रकार 'राक्षस' शब्द।

'आदित्य' और 'दैत्य' दोनों ही कश्यप के पुत्र तथा विमात्र भाई थे। आदित्यों की पहले असुर संज्ञा थी, फिर उन्होंने देव-संज्ञा ग्रहण कर ली। और बेबिलोन को विजय करके दैत्यों के उत्तराधिकारियों ने असुर संज्ञा ग्रहण की। असुरों ने प्रथम शाकद्वीप में राज्य बसाए, फिर इस्तखर Istkhar में। यह इस्तखर प्रह्लाद की राजधानी थी। इस्तखर से हटकर वे शीनार या सुमेर भूमि में आए। तब यह प्रदेश ही असुर प्रदेश बन गया,[29] जो असुर वाणीपाल के समय तक रहा, जिसका काल ई. पू. 650-640 है। असुरों का प्रस्तार 'निमिरी' तक हुआ, जिसे अब कुर्दिस्तान कहते हैं।[30] पीछे निमिरी का नाम असीरिया पड़ा जिसकी राजधानी निनिवा थी।[31]

संसार के आश्चर्यजनक प्रासाद मिस्र में तारक और मय नामक असुरों के निर्मित किये थे। असुर-नरेश सरगन ने 2650 ईस्वी पूर्व में अपने साम्राज्य भर में सड़कें बनवायी थीं।[32]

4. आर्यवीर्यान् (Azerbaijan)

मत्स्यराज की सहायता से जल-प्रलय में बचकर जहां सुषा के महाराज अभिमन्यु ने कुछ परिजनों के साथ शरण पाई थी, उसका नाम 'आर्यवीर्यान्' इसलिए पड़ा कि वहीं से फिर आर्य-वंशों के मूल पुरुषों की उत्पत्ति हुई। इसी स्थान को 'आर्यनम वीजो- अजरबेजान' कहते हैं। यही आधुनिक आरमीनिया प्रांत है। आजकल यह अजरबेजान प्रान्त रूस का सीमान्त इलाका है। इसी प्रांत के 'शिव स्थान' में सर्व प्रथम स्वर्ण की खान निकली थी। कुछ दिन कुबेर ने भी यहां निवास किया था।[33] यहीं अत्रि का आश्रम था तथा यहां चन्द्र का जन्म हुआ था।[34] इसे ही ईरानियों का स्वर्ग (Terrestrial Paradise of Iran) कहते हैं। यही सत्यलोक कहाता था।

5. ईरान-पर्शिया

यह देश मूल नृवंश का मूल स्थान है। यहीं पर कश्यप सागर तट पर[35] मरीचि-पुत्र कश्यप और उसकी पत्नियों दक्षपुत्रियों) दिति-अदिति-दनु आदि से दैत्य-अदित्य-दानव आदि प्राचीन नृवंश के मूल पुरुष उत्पन्न हुए। दैत्य-दानवों से फिर असुर आदि और आदित्यों से देव व आर्य जातियों का उद्‌गम हुआ।[36] तथा उनका विस्तार समस्त भू-मण्डल में

हुआ। इसी देश में अपवर्त,[37] नर्क,[38] यमलोक,[39] बैकुंठ[40], सत्यलोक,[41] कल्पतरु,[42] सुरपुर, इन्द्रलोक, शरवन[43] अत्रि आश्रम,[44] चन्द्रलोक,[45] तपो-भूमि,[46] आदि भारतीय पुराणों में प्रसिद्ध स्थान हैं। यहीं वह तपोभूमि है जहां कभी रात नहीं होती।[47] मनुर्भरतों के छै विजेताओं ने चाक्षुष मन्वन्तर में ईरान को जय किया, तथा वहां अपने साम्राज्य स्थापित किए।[48] ग्रीस और तुर्किस्तान को भी मनुर्भरत मन्यु ने जय किया था। इक्ष्वाकु-वंशी युवनाश्व के पिता आर्द्र थे। उनके नाम पर आर्द्रपुर (Adrianople) नगर तथा आर्द्र सागर (Adriatic Sea) है। उनके पुत्र युवनाश्व के नाम पर युवन सागर (Ionion Sea) है। बैबिलोनिया के सम्राट पुरुरवा के पुत्र आयु थे।49 ईरानी जाति क्ष्छुद्यत्त अयाति के वंश में हैं, जो दैत्यगुरु शुक्र तथा दैत्यपति वृषपर्वा के दामाद थे।[50] शंकर का जोटा प्रदेश भी यहीं है। आज हम शंकर को जटाधारी कहते हैं। वह बालों की जटा नहीं। ईरान का जाटा प्रदेश (Jatah or Zothale) यहां के 'शंकर' प्रदेश में है।[51] जाट और जिप्सी जाति इसी प्रांत की है। साध्य, वसु आदि यम के वंशजों की यहीं शाखा चली, जिन्हें पुराणों में साध्य, वसु कहा है और पर्शिया के इतिहास में सीथियन और वासव कहते हैं।[52] नन्दनवन, पारदिया के अधीश्वर देवराज इन्द्र (Indabugash) थे।[53] ययाति और नहुष को भी इन्द्र पद मिला था। पर दोनों को देवों ने पदच्युत कर दिया था। इस पर ययाति ने स्वर्ग-प्राप्ति के लिए युद्ध किया था, जिसे ईरानी इतिहास में Holy Wars of Khorasan के नाम से विख्यात किया गया है।[54] ऋग्वेद में जिस दस राजाओं के युद्ध का वर्णन है, उसका विवरण ईरानी इतिहास में The Battle of four King's Against five के नाम से उल्लिखित है।[55] यायाति स्वर्गधाम (इलावर्त्त प्रांत) के इन्द्र बनाकर पीछे पदच्युत किये गए थे, ऐसा पुराणों से प्रकट है।[56] उनके पुत्र अनु थे, जो ज्येष्ठ थे। पुराणों में लिखा है कि अनु के वंशज म्लेच्छ हो गए थे।[57] अब जरा आप अनु के वंश-वृक्ष पर विचार कीजिए-

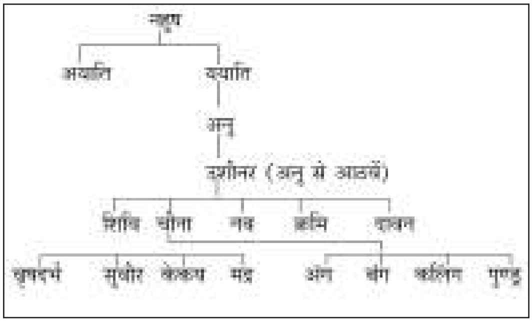

प्रसिद्ध है कि ययाति के पांचों पुत्रों की पांच शाखाएं चन्द्र-वंश में चली। यह भी स्पष्ट है कि ये पांचों पुत्र ययाति को दो अनार्य (शर्मिष्ठा और देवयानी) पत्नियों से हुए थे। अतः मातृगोत्र के सम्बन्ध से ये शुद्ध आर्य न थे। अनु का राज्य अनाव (Anau) नाम से काश्यप सागर के उस पार (Trans Caspia) था[58]। पुराणों में अनु का राज्य ऐसे स्थान में बताया गया है, जहां जलमार्ग ही से जाया जा सकता था।[59] आज वहां से प्राचीनतम वस्तु उपलब्ध हो रही है। इसी प्रकार उशीनगर का राज्य 'उश' प्रदेश में था, जो मध्य भूमि कहाता था।[60] 'शिवि प्रदेश' व 'शिशतान' में शिवि का राज्य था, जिसने कपोतों को आश्रय दिया था,[61] उशीनर के वंशज अब उजवक (उशवेग) कहाते हैं।[62] शिवि के चारों पुत्रों के चार राज्य ईरान और भारत की सीमाओं पर स्थापित हुए, जो मध्य-राज्य (Middle Kingdom) कहाते थे।[63] उत्तर मद्र ईरान का मीडिया (Media) प्रदेश है, जो काश्यप सागर-तट पर अत्रि-स्थान पर है। मद्रपति शल्य यहीं के राजा थे, जिन्हें पाश्चात्य 'सुलेमान' कहते हैं। इनकी राजधानी 'पारसगद्दी' (Throne of Soloman) थी।[64] सावित्री के पिता अश्वपति भी मद्र के राजा थे। ईरान का Media प्रदेश ही मद्र देश था।[65]

पाण्डवों के स्वर्गारोहण की कथा महाभारत में है। कहा गया है कि पांचों पाण्डव, द्रोपदी तथा एक श्वान ने स्वर्गारोहण किया। मार्ग में इन्हें कुबेर व वरुण के देश मिले। वे स्वर्ग के मार्ग में गल गए।[66] वास्तव में पाण्डवों की यह यात्रा ईरान की ही यात्रा

थी। महाभारत-संग्राम के बाद यद्यपि पाण्डवों की युद्ध में जय हो गई थी, परन्तु उनकी शक्ति इतनी क्षीण हो चुकी थी कि वे भारत का साम्राज्य संभाल नहीं सके। जो शत्रु युद्ध में खेत रहे, उनके तरुण उत्तराधिकारियों ने प्रबल वैरी का रूप धारण किया।[67] पाठक जानते हैं, सुरपुर, इन्द्रपुरी, स्वर्ग, वैकुण्ठ सभी स्थान ईरान में थे, तथा ईरान में, आदित्यों के बहिष्कार के बाद केवल चन्द्रवंशियों के ही राज्य रह गए थे। कृष्ण का साम्राज्य भी ईरान में था। इसी से उन्होंने भारत को त्यागकर ईरान की यात्रा की थी।

भारतीय राजवंशों में कृष्ण का पता नहीं चलता। पुराणों में वर्णित वृष्णि के वंश में श्रीकृष्ण नहीं हैं। केवल कंस के सम्बन्धी के रूप में वसुदेव और उनके पुत्र कृष्ण का परिचय मिलता है। ॠग्वेद में तीन मंत्र प्राप्त है, जिनमें कृष्ण और इन्द्र के विग्रह का स्पष्ट उल्लेख है। इस विग्रह की चर्चा भागवत में भी है। कृष्ण ने पारिजात हरण के लिए सुरपुर पर अभियान किया था तथा इन्द्र ने, जो जल का स्वामी था, कृष्ण और उनके साथियों को जल-संकट में डाल दिया था, जिससे कृष्ण ने गोवर्धन धारण करके स्वयं और अपने साथियों को बचाया था। निस्संदेह यह घटना सिन्ध नदी के प्रवाह से सम्बन्धित है। इन्द्र ने सिन्ध नदी को पार करके पंचनद-प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। इन सब बातों से यह तो स्पष्ट होता है कि कृष्ण का निवास सुरपुर के निकट ही कहीं ईरान में था। कृष्ण ने अर्जुन से मिल कर खाण्डववन (ईरान का नन्दनवन) दाह किया था। खाण्डव-वन-दाह में नाग-वंश का नाश किया गया था, जिसका बदला तक्षक नाग ने पाण्डवों के निष्क्रमण के बाद परीक्षित का वध करके लिया। इस पर क्रूद्ध होकर उसके पुत्र जनमेजय ने तक्षशिला में नागयज्ञ करके नागों का जीवित दाह किया। परीक्षित के मारे जाने के बारह वर्ष बाद उनके पुत्र जनमेजय ने सर्प सत्र में सीरिया के धनंजय आदि तक्षक व सुतल के वासुकी वंश का नाश किया और वे जम्बूद्वीप व शाकद्वीप दोनों देशों के चक्रवर्ती सम्राट हुए। इस युद्ध में दधीचि के वंशजों ने, जो अब पठान हैं तथा इन्द्र ने जनमेजय की सहायता की। (कृष्णःसार्जुनो वह्नि खाण्डवे समतर्पयत्–अग्नि पुराण, अ. 13) यह खाण्डव वन या नन्दन वन 'कवीर' नाम से ईरान में लवण सागर और क्षीर सागर के मध्य प्रदेश में है, जिसे Persian Salt Desert भी कहते हैं। the Lut or Kavir, the desert of Persia. The etymology of the word Kavir is uncertain---H.P. vol. I, 20), इस कवीर प्रदेश को ही 'लट' भी कहते हैं। ईरान के इतिहास से प्रमाणित है कि उस समय सीरिया में अजदाहक (Primeval Serpent) के वंशज जोहाक का राज्य था। Zohak, a syrian Prince. Zohak, at whose hands he perished so miscrably, and who conquered Persia is lengendary, the name being a corruption of the primeval serpent, Aj- Dahak as monster from whose shoulders hissing snakes grew.' नन्दन-वन को आजकल पारदिया प्रान्त कहते हैं। यहां के निवासियों की जाति दाहे और देश का नाम दाहस्थान है। नन्दन वन ही ईरान का ग्रेट डेजर्ट है। 'सर्प-सत्र' में तक्षकों को परास्त किया गया था। ये तक्षक सीरिया, शेषनाग देश (Tocharitan), हसन अद्वल (एलपत्र) पाताल, अश्वतर (काबुल) व ईलाम के निवासी थे।

स्वर्गारोहण में पाण्डवों को साध्य, वसु, रुद्र, आदित्य आदि जातियां मिली थीं।[68] ये सभी जातियां ईरान में ही रहती थीं। पाण्डवों (नकुल, सहदेव) के मामा मद्रपति शल्य भी वहीं रहते थे।

मद्रपति शल्य महारथी योद्धा थे। महाभारत - संग्राम में वह कर्ण के सारथी बने थे। परन्तु दोनों मित्र न बने। एक-दूसरे की निन्दा करते रहे। तब कर्ण ने मद्रों के सम्बन्ध में निन्दा करते हुए कहा था– अरे तुम मद्र लोग स्त्री-पुरुष का विवेक नहीं रखते, सबसे सब मिलते हो। तुम सत्तू के साथ

मछली खाते हो, गोमांस-भक्षण करते हो, मधु पीते तथा निर्लज्ज की भांति हँसते नाचते हो। स्त्रियां नंगी होकर तथा मधु पीकर नाचती हैं। मद्रों के साथ रहने से अधोगति होती है, तू उसी देश का वासी मद्र नीच-निर्बुद्धि, मुझसे शत्रु की बड़ाई करके मुझे डराना चाहता है। अरे, तुम्हारे यहां तो वर्ण व्यवस्था भी नहीं है। वहां कभी ब्राह्मण क्षत्रिय हो जाता है, कभी वैश्य शूद्र अर्थात नापित हो जाता है, और नापित फिर ब्राह्मण हो जाता है। द्विज का दास और दास का द्विज हो जाता है। गांधार, मद्रक और बाल्हीक लोगों ने धर्म को संकर बना डाला है—

पिता पुत्रश्च माता च श्वश्रू श्वसुर मातुलाः।
जामाता दुहिता भ्राता नप्ता ते ते च बान्धवाः।।
वयस्याभ्यागताश्चान्ये दासी दासं च संगतम्।
पुंभिर्विमिश्रानार्यश्च ज्ञाता जाताः स्वयेच्छया।।
येषां गृहेष्वशिष्टानां सक्तुमत्स्याशिनां तथा।
पीत्वा सीधुं सगोमांसं क्रदन्ति च हसन्ति च।।
तथा ब्रह्मद्विषो नित्यं गच्छन्तीह पराभवम्।
तथैव संगति कृत्वा नरः पतति मद्रकैः।
वासांस्युत्सृज्य नृत्यन्ति स्त्रियो याः मद्यमोहिताः।
तासां पुत्रः कथं धर्म मद्रको वक्तुमर्हसि।।
पाप देशज दुर्बुद्धे क्षुद्र क्षत्रिय पांसुल।
आपृच्छतामया राजन् वाल्हीकेछाद्मशामितम्।।
तत्र वै ब्राह्मणो भूत्वा पुनर्भवति क्षत्रियः।
वैश्यः शूद्रश्च वाल्हीकस्ततो भवति नापितः।।
नापितश्च पुनर्भूत्वा पुनर्भवति ब्राह्मणः
द्विजो भूत्वा तु तत्रैव पुनर्दासोपि जायते।।
गांधारा-मद्रकाश्चैव वाल्हीकाश्चाप्यचेतसः।
एतन्मयाश्रुतं तत्र धर्मसंकरकारकाः।।

यह भी कहा जाता है कि पाण्डव गल गए। 'गलिल' व 'गाल' नामक एक प्रदेश था। वहां के निवासी गलित कहाते हैं।[69] टाड इन्हीं को ग्वालवंशी कहता है।[70]

इस प्रकार ईरान आदित्यों-चन्द्रवंशियों का, भृगु-अत्रि-विशिष्ठ और वामदेव-नारद का, तथा कृष्ण-यम-रुद्र आदि का मूल स्थान है। खासकर आज ईरान में जितनी जातियां आबाद हैं वे प्रायः चन्द्रवंश से किसी न किसी प्रकार सम्बन्धित हैं।

'ईरान' शब्द 'आर्यात' का विकृत रूप है। मैक्समूलर का मत है कि ईरानियों के पूर्वज भारतीय थे।[71] वहां भारतीय नाम, जैसे सरस्वती (हरहरवती), सरयू (हरयू), भरत (फरत या यूफरत), काशी (कास्सी) आदि प्रचलित हैं।

पर्शिया के इतिहास में मत्स्य, उरवंशी, यम, मृग, नृसिंह आदि सभी देव परदेशी माने गए हैं। इजिकिल, जेनेसिस और अन्य ईरानी इतिहासकार भी इनके वंश-वृक्ष से अज्ञात हैं। यह वंश-वृक्ष हमारे पास पुराणों में सुरक्षित है और ये सब छठे मन्वन्तर के पुरुष है।

ईरानी सभ्यता का जन्म-स्थल 'ईलाम' है,[72] जिसकी राजधानी परशिया, संसार की प्राचीनतम राजधानी थी। ईलाम-इलावृत्त ही सुरपुर के नाम से विख्यात हुआ। तथा उस काल में ईरान, बैबिलोनिया, सीरिया, मिस्र और यवन (यूनान) के शासक सूर्यवंशी थे; जो पीछे वहां के देव मान लिए गए। 8000 ईस्वी पूर्व में सुषा में देवगण सर्वोच्च सभ्यता का विस्तार करके रहते थे। चाक्षुष मन्वन्तर से लेकर असुर सम्राट् वाणीपाल के समय (645 ईस्वी पूर्व तक) पर्शिया में देवों का शासन रहा, जिनमें वरुण, मित्र, अंगिरा, मन्यु, अत्यराति, तपोरात, नृग, नृसिंह, सूर्य, किश, अग्नि आदि प्रमुख थे।

6. उत्तर कुरु

कुर्दिस्तान का प्राचीन नाम 'उत्तर कुरु' है। यह स्थान आरमीनिया प्रदेश से नीचे है। सूर्य के श्वसुर त्वष्ठा-विश्वकर्मा यहीं के महीदेव थे, तथा यहीं सूर्य के जुड़वां पुत्र अश्विनीकुमारों का जन्म हुआ था।

उरलोक– उरलोक उरजन, करतार, Ormuzed, Suasa ur, (चाल्डिया) फारस और अरब का मध्यवर्ती देश है।

कश्यप–कश्यप प्रजापति समूचे नृवंश के पिता हैं। उन्हें प्रजापति दक्ष ने तेरह कन्याएं दीं। दिति से

दैत्य, अदिति से आदित्य, दनु से दानव आदि प्रमुख नृवंश चले। इस पौराणिक गाथा के समर्थन में पुरातत्व-विभाग का कथन है कि 'एशिया-माइनर' में पहले कभी कोई कस्पीआई जाति रहती थी, जिसके पूर्वज का नाम 'कसपीओस' था। इसी 'कस्पीआई' जाति के नाम पर 'काकेशस' पर्वत और कैस्पियन समुद्र नाम पड़े। इसी कस्पीआई जाति की राजधानी 'हिरकेनिया' थी, जो केस्पियन सागर के तट पर थी। पारसी पैगम्बर 'जरदस्त' का जन्म 'दैत्य' नदी के किनारे हुआ था, जो केस्पियन सागर में गिरती थी। वास्तव में यह पुराण-वर्णित 'दैत्य' नदी है और 'हिरण्यकशिपु' की राजधानी 'हिरण्यपुरी' ही थी।

काश्यप सागर– काश्यप सागर ईरान के काश्यपी प्रदेश (Caspia-Province) में है। कश्यप प्रजापति के नाम पर यह नाम पड़ा है। संभवतः पुराणों में जो कच्छप अवतार कहा गया है, वह यही कश्यप है। इसी कच्छप समुद्र का मंथन हुआ था।[73] यहीं लक्ष्मी प्राप्त हुई थी, अर्थात् स्वर्ण खान मिली थी। जिससे प्रह्लाद के पिता कश्यप-पुत्र 'कशिपु' हिरण्यकशिपु कहलाए।[74] यहीं एशिया-माइनर का Table-Land है, जो बहुत ऊंचाई पर है। यही भृगुस्थान था। इसे भृगु (Brygy) भी कहते हैं। पाश्चात्यों का मत है कि आर्यों का मूल स्थान (Cradle) कहीं काश्यप प्रदेश में (Aryanem Vaejo) या खुरासान के उत्तर मध्य एशिया में था, और 2500 ईस्वी पूर्व में उनका एक दल वेक्टया जीतता हुआ पंजाब में आया, और वहां के मूल निवासियों को जीतकर वहीं रह गया। उसी पैतृक समूह का एक दूसरा दल 2000 ई. पूर्व में पर्शिया गया और वहां के मूल निवासियों को विजित करके वहां का अधीश्वर बन गया। इन दोनों दलों के पीछे उसी मूल शाखा का एक तीसरा दल कपिदेश के आदि निवासियों को विजित करके वहीं बस गया।

इस वृत्त को वे आर्य भ्रमण (Aryan Migration) या आर्यागमन (Conquest) कहते हैं। इतिहासज्ञों का यह भी कथन है कि आर्यों का मूल स्थान खुरासान के उत्तर अथवा दक्षिण में या काश्यप प्रदेश के आर्यानम वाइजो में है। खुरासान के उत्तर में वरुण का सुषा देश था। खुरासान खरों (असुरों) का प्राचीन स्थान था।

ईरान में असुरों के स्थानों के नाम प्रायः 'खर' हैं। यथा–

(i) इष्टखर (पासर गद्दी का प्राचीन नाम) (हिस्ट्री आफ पर्शिया, vol. I)।
(ii) खरक द्वीप (पर्शिया की खात के ऊपर) (हिस्ट्री ऑफ पर्शिया, vol. II)।
(iii) खरन प्रदेश (हिस्ट्री आफ पर्शिया, vol. I)।
(iv) खरगिर्द (शाहरुख का मदरसा) (हिस्ट्री आफ पर्शिया, vol. I)।
(v) खरखर (असीरिया का प्रदेश) 'हिस्ट्री आफ पर्शिया' vol. I)।
(vi) खरतूम (मिस्र प्रदेश)।

आर्यानम वाइजो (Aryanem Vaejo) मगों का स्वर्ग या वैकुण्ठ था।[75] वरुण असुर व मग सातवें मन्वन्तर के पुरुष हैं। शुशिनाक, उरवंशी, असुर, दानव, कुटुर, नृगटो, सगरटो; द्रौपनी, किश, पतेसी, शुक्ल (Sukkals) इसी युग के पुरुष और जातियां हैं। सुमेरियन देव और सेमेटिक दानव हैं। सुषा (जो पाश्चात्य संसार का आदि स्थान है) वरुणपुरी, सुषा, मन्युपुरी या अमरों की अमरावती है। नृग, वास्तव में नृसिंह का नाम है। नृग या नृसिंह के सैन्य संचालन के चित्र लुलनी और बेबिलोनिया प्रदेश में मिले हैं। इलाम नृगों या नृसिंह के वंशधरों का आदि स्थान है। इस विवरण से पाश्चात्यों ने मनुर्भरतों को आर्य गिना है, जो ठीक नहीं है। वास्तव में आर्य सूर्य-चन्द्र वंशी ही हैं, और उनके पुरोहित मग, वशिष्ठ-वंशी। इस प्रकार पूर्वापर सम्बन्ध मिल-जुलकर पाश्चात्यों के ये विवरण धुंधले हो गए हैं, जिनपर हमारा प्राचीन साहित्य प्रकाश डालता है।

7. किष्किन्धा

विद्वानों की मान्यता है कि दक्षिण के ध्वस्त विजयनगर और वर्तमान अनागुण्डी के आस-पास ही कहीं सुग्रीव की किष्किन्धा थी। कृष्णा नदी की सहायक तुंगभद्रा नदी का तटवर्ती हम्पी नगर जिला है। यहीं प्राचीन किष्किन्धा का वानर राज्य था। यह स्थान अति दुर्गम है, क्योंकि पठार दो हजार फुट ऊंचा है। महाकान्तार और विन्ध्य तथा सतपूड़ा की पर्वत श्रेणियां उत्तर की ओर से इस भूभाग को दुर्गम दुर्लंघ्य बनाती है। यह स्थान वर्तमान सेण्ट्रल रेलवे के रायचूर स्टेशन से कोई पन्द्रह-बीस मील पर है। यहां का जलवायु सम-शीतोष्ण है। भूमि उपजाऊ है। ऊंचे पर्वतों पर चन्दन और सागौन बहुत होता है। यह प्रांत निजाम राज्य के अंतर्गत था। यह स्थान नासिक पंचवटी एवं नर्वदा से पांच सौ मील के अंतर पर दक्षिण कोण पर है, और निस्संदेह लंका के मार्ग में है।

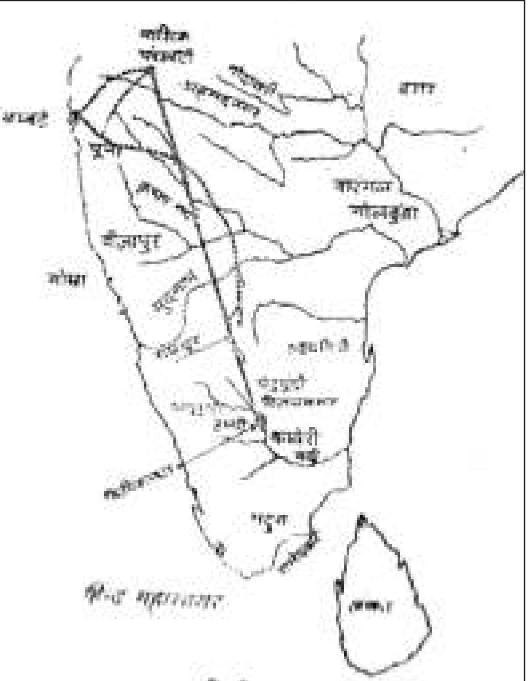

किष्किन्धा

अब हमें रामायण के भौगोलिक आधार पर यह स्थान जांचना है, क्योंकि रामायण के कुछ वाक्य संदेह में डालते हैं। प्रथम तो यह कि जटायु-दाह के बाद राम जटायु की बताई जिस दिशा को चले; उसका यद्यपि रामायण में उल्लेख नहीं है, पर जटायु ने अपनी आंखों से जिस ओर रावण को जाते देखा था, उसी दिशा का संकेत किया होगा। जटायु को जीवित ही राम ने पाया था, और उसने मरने से प्रथम राम से घटना की चर्चा की थी। उसने रावण का नाम तो बताया था, पर पता नहीं जानता था। परन्तु हम इस बात पर विश्वास नहीं कर सकते कि जटायु ने रावण को पहचाना हो। जाती बार उसने अपने नाम की घोषणा अवश्य की थी, पर वह किसी ने सुनी-समझी, यह विश्वास नहीं होता। अतः जटायु-सुग्रीव आदि ने जो रावण का उल्लेख किया है यह प्रक्षिप्त ही प्रतीत होता है। यदि रावण का ठीक नाम वे लोग जान जाते तो चारों दिशाओं में खोज ही क्यों की जाती। रावण ऐसा अज्ञातनामा पुरुष न था। खासकर जनस्थान वासियों के लिए। अस्तु, राम पंचवटी से निश्चय ही दक्षिण दिशा ही को चले, तथा गोदावरी में जटायु को जलाञ्जलि दी। जटायु के बाद उन्हें कबन्ध राक्षस ने किष्किन्धा और सुग्रीव का पता दिया था और उन्हें वहां से पश्चिम की ओर जाने का संकेत दिया था। तब वे पम्पा सरोवर के पश्चिमी तट पर पहुंचे।[76] और वहां मतंग के आश्रम में शबरी का आतिथ्य पाकर विश्राम किया। वहीं पर हनुमान ने उन्हें ऋष्यमूक पर्वत से देखा।

अब विचारणीय बात यह रह गई, कि पश्चिम की ओर चलकर पम्पा के पश्चिमी तट पर ही वे कैसे पहुंच गए? यह तो उल्टी बात है। फिर यह पांच सौ मील का मार्ग इतना शीघ्र कैसे पूरा हुआ? अब सुग्रीव के वक्तव्य पर भी विचार करना चाहिए। जब उसने दक्षिण दिशा को वानरों की टोली भेजी थी, तो उसने देशों के संकेत देते हुए विन्ध्य, नर्मदा, गोदावरी, दण्डकारण्य, अगस्त आश्रम आदि को भली भांति देखने का संकेत किया था।

सहस्र शिरसं विन्ध्यं नाना द्रुमलतायुतम्।
नर्मदां च नदी रम्यां महोरगनिवेषिताम्।।
ततो गोदावरीं रम्यां कृष्णांवेणी महानदीम्।
भेखलानुत्कलांश्चैव दशार्ण-नगराण्यपि।।
आब्रवन्तीमवन्तीं च सर्वमेवानुपश्यत।
विदर्भानृष्टिकांश्चैव रम्यान्महिषकानपि।।
तथा मत्स्य कलिंगांश्च कौशिकांश्च समन्ततः।।
अन्वीक्ष्य दण्डकारण्यं सपर्वतनदीगुहाम्।।

भला ये सब स्थान हम्पी से दक्षिण में कहाँ हैं? उक्त स्थानों में तो राम देख-भाल करते आ ही रहे थे। इतना ही नहीं, जब यह दल रास्ता भूल गया, तो एक तपस्विनी उन्हें सागर-तट पर ले गई, जो विन्ध्य की तली तक भरा हुआ था।[77] परन्तु विन्ध्य के तल में सागर कहां है? जटायु के भाई संपाति का भी यहीं मिलना हुआ था।

अब दो बातें है। यदि रामायण में वर्णित इस भूगोल-वृत्त पर पूरा भरोसा किया जाय; तब तो हमें मानना पड़ेगा कि किष्किन्धा कहीं मध्यभारत में थी, जहां से विन्ध्य और नर्वदा दक्षिण में पड़ते हैं। एक बात और है, पम्पा नदी, मन्दाकिनी और चित्रकूट की मध्यवर्ती भूमि में ही राक्षस तपस्वियों को कष्ट देते थे।[78] पम्पा के उस पार वानर रहते थे। परन्तु पम्पा कहां है? इसे अभी ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता है। संपाति ने यह भी कहा था कि मैं तो यहीं से रावण और जानकी को देख रहा हूं।[79] तब तो लंका भी कहीं मध्य भारत में ही होनी चाहिए। एक विद्वान शरदचन्द्र राय ने उरांव नामक मध्य प्रदेश की एक जंगली जाति पर पुस्तक लिखी है, वे 'उरांव' लोगों को ही वानर कहते हैं। उनका कहना है कि 'उरांव' शब्द 'वनराऊं' शब्द का अपभ्रंश है। यह जाति अमरकंटक से कुछ दूर, विलासपुर के पूर्व में अर्पा नदी के उस पार, छोटा नागपुर की रियासतों में रहती है और इसकी संख्या नौ लाख है। अब यदि 'अर्पा नदी' को पम्पा नदी मान लिया जाय, और 'उरांव' को लेकर 'वनराउ' तथा 'वानर' के अपभ्रंश की क्लिष्ट कल्पना को स्वीकार कर लिया जाय, तो विलासपुर जिले ही में 'शवरी नारायण' स्थान है, उसे शवरी का स्थान मान लेना चाहिए। अमरकंटक से शवरी नारायण केवल सात मील है। वहां से दो मील पर खरोंद है, जिसे लोग खर का स्थान कहते हैं। रह गई 'सागरोऽयं महोदधि' की बात, सो 'सागर' तालाबों का भी नाम रखने की परिपाटी है। मध्य भारत का एक नगर तालाबों की बहुतायत से सागर ही कहाता है। विलासपुर जिले में एक मातिन स्थान है, जिसे मतंग ऋषि का स्थान कहा जाता है। परन्तु मतंग ऋषि का आश्रम पम्पा पुष्करिणी के पास था; ऋष्यमूक भी वहीं था। परन्तु सीता का हरण तो गोदावरी के तट से हुआ था। वह तो अमरकंटक से सैकड़ों मील दूर दक्षिण में है। फिर रावण सीता को वहां से दक्षिण ही की ओर तो ले गया था।

यहां एक ओर बात की प्रसंगवश चर्चा करेंगे। छोटानागपुर की जंगली जाति के 'गौड़' लोग अपने को रावणवंशी बताते हैं। ऐसी हालत में उरांव-वानर और रावण वंशी गौड़ अड़ौसी-पड़ौसी हुए। इस ओर रहने वाली एक जंगली जाति कोरकू है। उस जाति के लोग प्राचीन काल से एक गीत गाते हैं, जिसका अभिप्राय यह है—

'लंका से रावण आया है, और अखाड़े में खड़ा है। आओ मां, आओ बहन, रावण को देख लो। हमारे पांवों में न पैरी है, न सुतरे, कैसे रावण को देख लें। गले में न हार है, न हाथों में चूड़ियां, कैसे रावण को देख लें।[80] इस गीत से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि रावण का उनसे कभी का निकट संपर्क है। अस्तु लंका की बात पीछे होगी, अभी ऋष्यमूक की ही बात चले।

भुतत्त्ववेत्ताओं की धारणा है कि किसी समय एक महाद्वीप था, जिसका नाम लीयूरिया था। यह महाद्वीप अफ्रीका और अमेरिका को मिलाता था, परन्तु अब समुद्र के गर्भ में है। भारत का वर्तमान दक्षिण प्रांत, आस्ट्रेलिया व निकटवर्ती द्वीप-समूह

लंका-मेडगास्टर आदि उसी के अवशेष हैं। इस महाद्वीप के निवासियों के मुंह बंदर के समान आगे को निकले से रहते थे।81 वर्तमान हब्शी जाति उसी वंश परम्परा में है, बहुत कुछ संभव है कि वानर उसी लीयूरियन जाति के ही पुरुष हों। लियूरियन-सभ्यता बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। उधर वाल्मीकि के कथनानुसार वानरों की सभ्यता भी साधारण न थी।[82] उनके बड़े-बड़े राज्य थे। राज्यों की व्यवस्था उत्तम थी। बालि का योग्य मंत्री-मण्डल था, जो राज्य-प्रबन्ध करता था। उनमें बड़े-बड़े शिल्पी थे, तभी वे अद्‌भुत पुल को बना सके। बालि, सुग्रीव, अंगद, हनुमान, नल-नील, गय आदि अमित विक्रम, राजनीति और युद्ध-नीति विशारद, भीमकाय और महाबली पुरुष थे।

भुतत्त्ववेता कहते हैं कि अत्यंत प्राचीन काल में हिमालय और विंध्याचल के बीच दो भूमध्य सागर थे, जिन्हें पुरातत्त्वविद् 'टेबीज-सी' कहते हैं। हिमालय भी आज की भांति दुर्गम और निर्जन न था। हिमालय खण्ड उत्थान काल ही में अरब सागर और बंगाल की खाड़ी में बहकर मिल गए और दक्षिण भारत उत्तर भारत के स्थल मार्ग से जुड़ गया, बिहार और बंगाल के भू-भाग भी निकल आए। ऋग्वेद के कथनानुसार अत्यंत प्राचीन काल में गंगा-यमुना दोनों नदियां पूर्व समुद्र में गिरती थीं। इस समय प्रयाग उनका संगम-स्थल नहीं था। परंतु राम-काल में संगम भी था और उससे पूर्व में बिहार और संभवतः पश्चिम बंगाल में भी बस्तियां थीं। तो यह बहुत संभव प्रतीत होता है कि वानरों के कुछ राज्य राम-काल में सुदूर दक्षिण में उन स्थानों पर स्थिर हो गए हों, जो समुद्र-गर्भ से पीछे निकला था और वहां अभी अधिकतर घोर अरण्य ही था, जैसा कि राम-भ्रमण से पता लगता है। ऐसी हालत में वानर-राज्य का स्थान और किष्किन्धा का हम्पी प्रांत में ही होना संभव है, जैसा कि अनेक विद्वानों का मत है। रहा वाल्मीकि का भौगोलिक विवरण। हम उस पर आधारित नहीं रह सकते। सर्वत्र ही परस्पर विरोधिनी बातें हम रामायण में देखते हैं। पुनरुक्तियां-अत्युक्तियां भी कम नहीं हैं। यही एक उदाहरण लीजिए कि सुग्रीव के वचन से यह भी प्रकट है कि रावण ने ही सीता हरण किया है यह वह निश्चित रूप से जानता है, पर उसका स्थान नहीं जानता।[83] राम बारह वर्ष जन-स्थान में रहे, फिर भी वे रावण के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते, यह कैसी अद्‌भुत बात है? रावण विख्यात पुरुष था, जन-स्थान में उसी का राज्य था। खर, दूषण सहित चौदह सहस्त्र राक्षस-सैन्य का सम्मुख युद्ध में राम ने हनन किया। जन-स्थान में जो ऋषि आदि उपनिवेशवासी जन थे, वे क्या रावण के सम्बन्ध में कुछ जानते ही न थे? परन्तु जहां एक तरफ ऐसा प्रतीत होता है कि जब तक हनुमान ने सूचना आकर नहीं दी, तब तक यह ज्ञात ही न था कि सीता को कौन कहां ले गया, वहां बीच-बीच में ऐसी बातें आती हैं, कि जैसे रावण ही की खोज की जा रही है। अतः इधर-से-उधर श्लोक होने से भी विन्ध्य की बात आ सकती है। यदि ऊपर के छै-सात श्लोक वहां से हटा दिए जायें, तो फिर तो हम्पी ही का उल्लेख है, जहां चन्दन के वृक्षों की बहुतायत है। अतः हम्पी ही किष्किन्धा है।

Humpi दक्षिण में स्थित है। M.S.M. रेलवे की Hubli-Sholapur ब्रांच से Gadag Jn. पर उतरना चाहिए। वहां से Gadag-Bellary लाइन पर (भूतपूर्व निजाम स्टेट रेलवे) चलकर Hospet स्टेशन पर उतरना चाहिए। यहां से Humpi के लिए, जो इस स्थान से केवल 12 मील दूर है, बस सर्विस जाती है। वहां 14 मंजिल ऊंचा एक विरूपाक्ष का मंदिर है। दूसरा एक विजय विट्ठल मंदिर है, उसमें 144 छोटे-बड़े स्तम्भ हैं। उसमें यह खूबी है कि यदि लकड़ी से लेकर मारो तो उसमें सा रे ग म प ध नी सा आवाज निकलती है। वहां पत्थर से बना हुआ एक रथ भी है। पम्पा सरोवर वहीं है।

गरुड़– अफगानिस्तान से ऊपर तुर्किस्तान है, और उसके सामने का मैदान 'गिरेडीशिया' कहाता

है। इसी प्रांत के निवासी गरुड़ जाति के थे। 'नाग' और 'गरुड़' दोनों पड़ोसी थे, और दोनों की शत्रुता प्रसिद्ध है, तथा दोनों विष्णु-सूर्य की आश्रित जातियां थीं। इसी से पुराणों में सांप और गरुड़ को विष्णु का वाहन बताया है। जब विष्णु (सूर्य) क्षीर सागर में रहते थे, तब 'शेष नाग' पर शयन करते थे। जब वैकुण्ठ धाम में होते थे, तब 'गरुड़' पर सवार होते थे, यह पुराणों में लिखा है। इसका अभिप्राय यह है कि उनकी दो राजधानियां थीं। एक क्षीर सागर (नागलोक उसी के आधीन इलाका था) और गरुड़-लोक वैकुण्ठ धाम के इलाके से सम्बन्ध रखता था।

गान्धार–भारत की पश्चिमी सीमा पर अफरीदी, काबुली और बलूचियों के देश हैं। यही गान्धार देश है, जिसे अब कंधार कहते हैं। इसी से थोड़े अंतर पर विख्यात गजनी नगर है। काबुल के पठान चन्द्रवंशी हैं। यह वंश झूंसी (प्रतिष्ठान) से जाकर फ्रन्टियर पर बसा, जहां उसने प्रजासत्तात्मक शासन स्थापित किया, जो एक प्रकार का गणराज्य था। इन्हीं में से एक गण ने 'उपगण' या 'अपगण' राज्य स्थापित किया, जो आज काबुल का अफगान राज्य कहाता है। अफरीदी भी गणराज्य पोषित थे। पुराणों में लिखा है कि गंधर्व बड़े बलवान व डीलडौल वाले होते हैं।

8. चन्द्र और चन्द्र वंश

अत्रिपुत्र चन्द्र का जन्म अत्रिपत्तन में काश्यप सागर तट पर हुआ। इसलिए इन्हें अम्बुधिनाथ भी कहा है।[84] शाकद्वीप में चान्द्र वर्ष ही का प्रचार है। वहां का राज्य चिह्न चन्द्र है। पर्शिया में कृच्छ चान्द्रायण व्रत होता है, जिसे 'सोम' कहते हैं। यही व्रत मुसलमानों में रोजा कहाता है, जो रमजान मास में एक मास चलता तथा चन्द्र दर्शन के बाद खोला जाता है। ईरान में 'सोमारा' नगर तथा 'सोमस' नदी है। ग्रीस के पार्श्व में Somas द्वीप है। मग जाति सोम की पूजा करती है।[85] सोमपुत्र बुध के वंशज The Budii ईरान में हैं। सीदियन्स (साध्य) भी अपना वंश सम्बन्ध इला से बताते हैं।[86] बुधी, 'मीडाज' को ईरान में ही एक वंश से सम्बन्धित मानते हैं। निस्संदेह 'ईरानी मीडाज' ही पौराणिक बुधवंशी है। बुध पुत्र पुरुरवा को भी पुराणों में अम्बुधिपति तथा मद्रनाथ कहा गया है।[87] एक प्रकार से समूचे ईरान की वर्तमान जातियां चन्द्रवंश से सम्बन्धित हैं।

9. दक्षिणारण्य

दक्षिण भारत के निवासियों से उत्तर भारत के निवासियों की संस्कृति में बहुत अंतर है। कहने को वे भी हिन्दू धर्मनिष्ठ हैं, परन्तु रहन-सहन, बोलचाल, आचार, व्यवहार, शारीरिक बनावट सभी में उत्तर भारत के निवासियों से उनमें अंतर है। यहां हम इस बात पर विचार करेंगे कि क्या दक्षिण के हिन्दू उत्तर के हिन्दुओं की ही प्राचीन वंश-परम्परा में हैं या किसी दूसरी जाति के पुरुष हैं। गम्भीर गवेषणा करने से दक्षिण भारत में हम तीन प्रकार की जातियों को पाते हैं– (1) बहिष्कृत आर्य व्रात्य और शुद्ध आर्य, (2) समागत विदेशी अनार्य, (3) दक्षिणारण्य के मूल अनार्य।

बहिष्कृत आर्य व्रात्य–प्राचीन आर्यों में यह परम्परा एक दर्जे तक कट्टर रूप में रही कि दुष्ट, दुर्जन और वैदिकक्रियाहीन पुरुष आर्यजाति से निकाल दिए जायें। यदि कोई उपयुक्त काल में यज्ञोपवीत धारण कर आचार्य कुल में जाकर वेदाध्ययन न करे, गृहस्थ होकर गृह सूत्रों में वर्णित गृह विधान न करे, वेद न पढ़े, प्रतिलोम विवाह करे, गुरुजनों की आज्ञा का विरोध करे, तो उसे समाज शुद्धि कायम रखने के लिए तुरन्त आर्य जाति से बहिष्कृत करके व्रात्य घोषित कर दिया जाय और ऐसे-बहिष्कृतों को आर्यावर्त से निकाल कर दक्षिणारण्य में भेज दिया जाय। प्राचीन आर्यों ने समाज शुद्धि के तीन मार्ग अपनाएं– (1) समाज में कोई ऐसा पुरुष न रहे जिसने विधिवत् गुरुकुल में रहकर विद्या–सदाचार और सभ्यता न सीखी हो, (2) सदाचार सभ्यता सीखकर भी जो दुष्कृत्य करे, (3) वैदिक क्रियाविहीन हो जाय। ऐसे पुरुषों को आर्यावर्त से निष्कासित करके दक्षिणारण्य भेज दिया

जाता था। इस प्रकार बहिष्कृत होकर आर्यों के बहुत से परिवार दक्षिणारण्य में आ बसे, तथा वहां के मूल अनार्यों से रोटी-बेटी सम्बन्ध स्थापित करके दस्यु, दास, राक्षस, असुर, महिष, वानर, नाग आदि जातियों में मिल गए, या परिवर्तित हो गए और पुरोहितों के न पहुंचने तथा क्रियाहीन होने से पतित हो गए तथा पौण्ड्र, औण्ड्र, द्रविड़, काम्बोज, पारद, खस, पह्लव, चीन, किरात, झल्ल, मल्ल, दरद और शकों में मिल गए। सगर ने अपने पिता के शत्रुओं का समूल नाश करके शक, यवन, काम्बोज, चोल, केरल आदि जातियों को वशिष्ठ के कहने पर वेदभ्रष्ट करके दक्षिणारण्य में भेज दिया था।[88] इसी प्रकार ययाति ने अपनी आज्ञा न मानने पर अपने पुत्र तुर्वसु को सपरिवार जाति भ्रष्ट करके दक्षिणारण्य में निष्कासित किया था।[89]

विश्वामित्र ने भी अपने पचास परिजनों को दक्षिणारण्य में निष्कासित किया था। प्राचीन आर्य लोभी और बेईमान 'पणिक'[90] वणिक को वार्षिक को दक्षिणारण्य में बहिष्कृत कर देते थे। ऐसी बहुत सी जातियां बहिष्कृत हो- होकर दक्षिण प्रांत में बस गईं, बहुत सी भारत के पश्चिमी, उत्तरी, पूर्वी सीमा प्रांतों में आ बसीं, बहुत सी सशक्त होकर आर्यों से लड़ी, बहुत सी भारत से बाहर (आंध्र) आस्ट्रेलिया में जाकर 'आंध्र' हो गईं, या मिश्र में जाकर झल्ल (जुलु) हो गईं। बहुत जातियां नट, कंजर, वेडिया, बंजारा बनकर वन में बस गईं।

फिनिशिया पश्चिमी एशिया में मेडिटेरियन समुद्र के किनारे पर सीरिया से संलग्न है। यह प्रदेश उक्त 'पणिकों' के द्वारा आबाद हुआ। दक्षिण भारत में बसकर इनकी जाति पण्य या पाण्ड्य कहाई, पाण्ड्य प्रदेश इन्हीं के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[91] ऐसी ही एक शाखा 'चोरों' की थी, जो दक्षिण में 'चोल' कहाई। पाण्ड्य और चोल नाम के दो प्रदेश अब मद्रास अहाते में हैं। ये पणिक बड़े व्यापारी तथा नाविक थे, जहाज बनाना जानते थे। इसी से ये मेडिटेरिन समुद्र तटों पर आबाद हो सके। भारत में जैसे इनके प्रदेश 'पाण्ड्य' और 'चोल' प्रसिद्ध हुए, उसी प्रकार पाणिकों से फिनीशिया और चोलों से चेल्डिया देश बसे इनका पूज्य देवता 'सूरि आस' सूर्य है।[92] चाल्डियन धर्मग्रन्थ अथर्ववेद से बहुत समता रखता है। इसके अनेक शब्द वैदिक शब्दों की समता के हैं। जैसे–

1. सिनितालि–सिनबुब्बुलि = अमावस्या। अप्सु-अजु = पानी। यह्व– यहवे = महान्। ऋतु–इतु = मौसम। तैमात–तिआमत = देवता। = रुगुला-उरुगुल उ देवता। यह्व शब्द ऋग्वेद में 9।75।1 तथा 3।1।12 और 8।13।24 में महान् के अर्थों में आया है। जेन्द में यही शब्द यजु हो गया है। मूसा इसी को यहोवा कहता है। ग्रिथिफ इसका अर्थ Lord करते हैं। जिस प्रकार ये बहिष्कृत आर्य दक्षिणारण्य में आकर बस गए, उसी प्रकार कुछ आर्यजनों ने दक्षिणारण्य में आकर अपने उपनिवेश स्थापित किए। इनमें अगस्त्य, पुलस्त्य, शरभंग आदि प्रमुख हैं। चित्रकूट से चलकर राम किसी अत्रि ऋषि के आश्रम में पहुंचते हैं, जिनकी पत्नी अनुसूइया थी। यह अत्रि निस्संदेह चन्द्र के पिता नहीं थे, उसी गोत्र के कोई दूसरे पुरुष थे। क्योंकि चन्द्र-पिता तो असुर याजक थे।[93] राम ने इन ऋषि और इनकी पत्नी को उनकी अत्यंत वृद्धावस्था में देखा था।[94] इनकी पत्नी ने सीता को पतिव्रत धर्म का उपदेश दिया था, तथा इन्होंने राम को राक्षसों से सावधान किया था। दण्डकारण्य में प्रवेश करने से प्रथम वे शरभंग के आश्रम में पहुंचे थे। ये भी संभवतः वृद्ध पुरुष थे। राम के सम्मुख ही उनकी मृत्यु हुई। इसके बाद वे सुतीक्ष्ण के उपनिवेश में पहुंचे, जहां मंदाकिनी नदी थी। ऋषि शरभंग और सुतीक्ष्ण दोनों ही से देवेंद्र की जान पहिचान थी। सुतीक्ष्ण तो भारी सम्पत्तिशाली थे। उन्होंने राम को बहुत सी भूमि देनी चाही थी, जिसे उन्होंने स्वीकार नहीं किया था।[95] यहां से वे, माण्डकर्ण मुनि के आश्रम में गए, जो बड़े रंगीले व्यक्ति थे तथा संगीत-सुधा के शौकीन थे। वे जल में अपना महल बना सुन्दरी स्त्रियों का सेवन करते

थे।[96] इसके बाद राम अगस्त्य के उपनिवेश में आए, जो बहुत बड़ा था। अगस्त्य बड़े प्रतापी थे। उन्होंने बहुत से राक्षसों का दमन किया, तथा जल दस्युओं को मार समुद्र मार्ग निरापद किया था। अगस्त्य के भाई का भी पृथक जनपद था। ये दोनों भाई यथेष्ट सशस्त्र सेना रखते, तथा यथा अवसर युद्ध भी करते थे। जनस्थान में इन्होंने खर-दूषण से युद्ध में राम की मदद की थी। राम को इन्होंने एक रत्नजड़ित धनुष तथा दो दिव्य तूणीर एवं एक तलवार भेंट की थी।[97] उन्हीं के कहने से पंचवटी में उन्होंने अपना आश्रम बनाया था। गरुड़वंशी जटायु की एक छोटी सी रियासत यहीं थी।

इस प्रकार बहिष्कृत-आर्यों तथा आर्यों के बहुत से परिवार दक्षिणारण्य में बस गए थे, और उनके छोटे बड़े राज्य, जनपद, तथा उपनिवेश वहां स्थापित होते गए थे। परन्तु इनके अतिरिक्त कुछ विदेशी जातियां भी समुद्र पार से आकर दक्षिणांचल में बस गई थीं। बहुत से आर्य वणिक व्यापार करने समुद्र पार जाते थे। बहुत से बहिष्कृत समुद्र पार जाकर दूर देशों में बस गए थे। उनके वंशधर फिर लौट-लौटकर दक्षिणारण्य में बसते जाते थे। इन बाहर से आये हुओं में प्रथम स्थान आंध्र (आस्ट्रेलिया) से आए जनों का था।

प्राचीन काल में एशिया और आस्ट्रेलिया दक्षिण पूर्व में जुड़े हुए थे, वे जुड़े हुए भाग अब समुद्र में डूब गए हैं। मैनिग ने अपने 'प्राचीन और मध्यन्तरीय भारत' में अनेक विद्वानों का मत उद्धृत कर प्रमाणित किया है कि द्रविड़ भाषाएं आस्ट्रेलिया से साम्य रखती हैं। नारिस, जनहट्ट और डॉ. रोस्ट का भी यही विचार है।

ऋषि पुलस्त्य ने आंध्रालय में अपना उपनिवेश स्थापित किया; तथा वहां के व्रात्य राजा तृणबिन्दु की कन्या से विवाह किया था।[98] इसी के वंश में रावण उत्पन्न हुआ था। रावण के पूर्व से ही उन द्वीप समूहों के लोग दक्षिणारण्य में आते जाते रहते थे। आर्यों द्वारा निर्वासित जन वर्तमान मद्रास अहाते के आसपास रहते थे। वे आर्यों से द्वेष भाव रखते थे। वहीं जल-मग्न शिला-खण्डों पर पुल बांध बाहरी द्वीपवासी भारत में आते-जाते थे, कुछ बस भी गए थे।[99] जिनसे इन बहिष्कृत आर्यों का मेल-जोल बेटी-व्यवहार हो चला था। ये आर्य और अनार्य नाम से दो दलों में विभक्त थे, जो आज भी 'अय्यर' और 'नैय्यर' नाम से प्रसिद्ध हैं। आज भी मद्रास प्रांत वाले 'महाशय' के स्थान पर 'अय्या' (आर्य) शब्द का प्रयोग करते हैं। ये अय्यर-नैय्यर एक हो आर्यों का विरोध करने लगे। कुछ काल बाद नाग लोग भी इनमें आ मिले। एक जाति अफ्रीका से निकल मेसोपोटामिया होती हुई आकर यहां आ बसी तथा इनमें मिल गई।[100] एक दल मिश्र से आया। इस समय जहां स्वेज नहर ने अफ्रीका को एशिया से पृथक किया हुआ है, उसी स्थान पर पहिले भी कोई पतली जलधार थी, जिसे पार करके विदेशी भारत आते-जाते थे। यहां के अनेक दल दक्षिणारण्य में बस गए, तथा वे हिन्दू जाति में मिल गए।

(क) नदिन्या गोस्तनात्पूर्व जातैर्म्लेच्छैर्विनिर्मितः।
द्राविड़ाव्यो महादेशः स्ववासायेति निश्चितम्।

(महाभारत)

(ख) सरस्वत्यासया कण्वो मिश्र देशमुपायमौ।
म्लेच्छान् संस्कृत्य चाभाष्यतदा दश सहस्रकान्।
सपत्नीकाश्चतान् म्लेच्छान् शूद्रवर्णाय चाकरोत्।
द्विसहस्रस्तदातेषां मध्ये वैश्या बभूविरे।
तेषां चकार राजानं राजपुत्रं पुरंदरम्

(भविष्य पुराण)

जब रावण ने अपनी बहन सूर्पनखा और भाई खर को दक्षिणारण्य में बसा अपना उपनिवेश स्थापित किया तो वह एक प्रकार का उसका सैनिक सन्निवेश ही हो गया। जिससे आर्य उपनिवेश वालों से विग्रह झगड़े मार-काट चलती ही रहती थी। अंततः राम को एक बड़े युद्ध में 14 सहस्त्र राक्षसों का वध करना पड़ा, जो नर-भक्षी थे।[101] दक्षिण भारत के लोगों ने आज यद्यपि आर्य सभ्यता अपना ली है—

तथापि उनके अनेक रिवाज प्राचीन अनार्यों, राक्षसों तथा दैत्यों के हैं। दक्षिण हैदराबाद के अंचल में कुछ विश्वनामी ब्राह्मण रहते हैं। वे किसी भी शुभ अवसर पर अपनी बिरादरी वालों को बकरे का मांस खिलाते तथा मदिरा पिलाते हैं।102 ट्रावनकोर राज्य में स्त्री-स्वातन्त्र्य खूब है। यह मालाबार प्रांत में है। वहां दाय भाग में स्त्रियों का हक मुख्य है। विवाह में वर को वधू पसन्द करती है। मालाबार के हिन्दुओं में हिन्दू शास्त्र सम्मत विवाह-पद्धति प्रचलित नहीं है। नमुद्री ब्राह्मणों में सबसे बड़ा लड़का ही अपने नमुद्री समाज में विवाह कर सकता है, दूसरे लड़के नहीं। दूसरे लड़के नैय्यर जाति की लड़कियों से विवाह करते हैं, परन्तु उन स्त्रियों के हाथ का छुआ पानी भी नहीं पीते हैं। वे स्त्रियां बाप के घर रहती हैं। पति रात को स्त्री के घर तथा दिन में पिता के घर रहता है। उनकी संतान माता ही की होती है। मामा ही उनका प्रमुख कुटुम्बी होता है। तथा मामा का वारिस भान्जा होता है।

दक्षिण के कन्हाड़े ब्राह्मणों में नर-बलि की प्रथा थी। वे अपने दामाद की भी बलि दे देते थे। प्रायः दशहरा के अवसर पर ये लोग नर-बलि देते थे, जिसका वर्णन अनेक अंग्रेज इतिहासज्ञों ने किया है।

In former times they occasionally poisoned their son-in-law, visitors and strangers as sacrifices to their Goddess in the hope of securing offspring Vansha-Vridhi (वंश वृद्धि)(Ratangiri Gazetteer).

श्री मिडफर्ड का कथन है कि आगे लिखी घटना ईस्ट इंडिया कम्पनी के राज्य काल में पूना में घटित हुई थी, जो डॉ. कॉलियर ने आंखों देखी थी– एक कन्हाड़े ब्राह्मण ने अपने दरवाजे के सामने एक सुन्दर तरुण मुसाफिर को कुएं पर बैठे देखकर सोचा कि इस दशहरे पर इसकी बलि देनी चाहिए। वह उसे घर ले आया उसका आदर सत्कार किया। कुछ दिन बाद मुसाफिर ने घर जाने की हठ की। पर दशहरा अभी दूर था– उसे रोकने के विचार से उसने अपनी पुत्री का विवाह उस पुरुष से कर दिया और दशहरे पर उसी की बलि की तैयारी करने लगा। परन्तु जब बलि का समय आया तो उसकी लड़की ने जहर का प्याला बदलकर पति के स्थान पर भाई को पिला दिया। पीछे मामले का भंडाफोड़ होने पर मामला पेशवा के सम्मुख लाया गया। पेशवा ने अपराधी को दण्ड दिया तथा इस जाति के सब लोगों को पूना से निकाल दिया।

10. दाशराज्ञ

ऋग्वेद के सातवें मंडल में तथा ब्राह्मण ग्रंथों में 'दाशराज्ञी युद्ध' नामक भीषण संग्राम का उल्लेख है। इस युद्ध में सुदास, तुत्सु, वशिष्ठ और भारत एक ओर तथा नहुष वंशी यदु, तुर्वसु, पुरु, अनु, द्रुह्य तथा पांच अनार्य राजा दूसरी ओर थे। चार व पांच राजाओं का संग्राम नाम से इस युद्ध का संकेत बैबिलोनियन इतिहास और जैनिसिस में भी है।[103] इस युद्ध में सुदास ने अमित पराक्रम दिखाया था। उसने नहुषवंशियों को हराया। नदी पार कर सिम्युओं को जय किया। इक्कीस जाति के वैकर्णों को पराजित किया। परुष्णी (रावी) नदी के दो भाग करने पर नाहुषों को घेरा। भेद का खजाना लूटा और एक लाख मनुष्य वध किए। युध्यामधि को मारा। इन्द्र से सहायता ली। सिग्ध और चक्षु से संधि की। पराशर और वशिष्ठ को धन देकर अपने पक्ष में किया। अनु-द्रुह्य के छै हजार योद्धा मारे (ऋग्वेद, मंडल 7)।

संदर्भ

1. विष्णु पुराण में इन्हें ब्रह्मा का मानस (माना हुआ) पुत्र कहा है।
2. 'अत्रयोऽय भरद्वाज प्रस्थलाः सदसेरकाः। एते देशा उदीच्यास्तु'। ('मत्स्य पुराण', अ. 113। 42-43)।
3. ('मत्स्य पुराण', अ. 118 श्लोक 61-76)। Atropatene or Azerbaijan and the Atrek river on the bank of the Caspian sea. (History of Persia. Vol. 1. page. 319, 321.)।
4. Aryanem-Vaejo or the Lost Home or Terrestrial Paradise, ('History of Persia vol. 1.page 101)।
5. देखिये, 'विष्णु पुराण' (समुद्र-मंथन) तथा 'मत्स्य पुराण'। Sumer Province of Persia, at the head of the Persian Gulf, which formerly extended up to mosul. (H.P., vol. 1, 40, 42, 50.) Sattagydia, Eastern Province of Persia.
6. तथापि दिवसाकारं प्रकाशं तदहर्निशम् (मत्स्य, अ. 118, श्लो. 6)।

7. ञhe Iranian Paradise- This Mysterious Mountain rises from the earth above the stars into the sphere of endless light, to the Paradise of Ahura Mazda, "The Abode of Song." It is the mother of Mountains (The Demavand) with its summit bathed in everlasting glory, where there is no night, no sickeess... The summit is touched with the flame, (H. P. vol. 1. 117.). Tapuria or Mazanderan where Tapuritae lived under Demavand. (H. P. Vol. 1. 284).

8. तदाशुभं मनोहारि यत्र कामधरा धरा। सुरमुख्योगित्वात् शाखिनां सफलाः फलाः।। ('मत्स्य पुराण', अ. 117, श्लोक 71)।

9. देखिए, कैस्पियन प्रांत का विवरण, H. P. Vol. 1. 30-31.

10. A little further west, just within the limits of Iran, lie the rich valleys of the Atrek and Gurgan, In its lower reaches the Atrek forms the Russo-Persian boundry until it discharges into the Caspian Sea. (H. P. Vol. 1. 328, 329).

11. देखिए, 'विष्णु पुराण', 'टाड राजस्थान', तथा H. P. Vol. II.

12. देखिए, Book of Ezekiel तथा 'टालेमी के विवरण'।

13. देखिए, 'Strabo', के विवरण। इसी कारण मुसलमान चांदी के गहनों-अंगूठी के प्रेमी हैं।

14. देवासुर-संग्राम में शुक्र का परामर्श न मानकर जब दैत्येंद्र बलि ने विष्णु को भूमि दे दी, तो उससे नाराज होकर शुक्र दैत्य-स्थान छोड़कर अरब में आ बसे, और दस वर्ष तक वहीं रहे। इस बीच वृहस्पति दैत्यों के गुरु रहे। जब शुक्राचार्य लौटे तो दैत्यों ने उनका तिरस्कार किया, तिस पर उन्होंने दैत्यों को शाप दिया। (देखिए- 'मत्स्य पुराण', यही प्रकरण)।

15. इसे सूर्य की मूर्ति भी माना गया है।

16. देखिए–Mohammad and the Black Stone, (History of Persia, Vol. II).

17. 'Mana was rude unshapen rock of stone of a reddish black colour, placed on a golden pedestal.'

18. व्रात्यातु जायते विप्रात्पापात्मा भूर्जकण्टकः।
आवन्त्यवाटधानो च पुष्पधः शेख एव च।। (मनुस्मृति)।

19. 'But before telling anything of these learned men, something need to be said of that great man, Yawanacharya. He took his birth in a brahman family in Arabia and was educated in the University of Alexandria.' ('Asiatic Research' vol. X).

20. देखिये, 'हिस्ट्री आफ अरेबिया', ए. क्रिश्टन कृत।

21. 'As we journeyed from the east we found a plain and settled in the land of Shinar' ('Book of Genesis').

22. 'The land of Shinar or Sumer is on the head of the Persian Gulf.' ('Book of Genesis').

23. Aruba or Juma or Friday, Day of Aruba Friday.

29. असुर देश का नाम ई. पू. 2667 में हुमरावी के काल में भी असुर था।

30. इसे ही बाइबिल में 'निमिरोद' कहा है। रुद्' शब्द संभवतः 'पुर' के अर्थ में है।

31. कुर्दिस्तान अब आर्मीनिया के नीचे का प्रदेश है।
विशेष विवरण देखिए– 'काश्यप सागर', तथा 'आर्यवीर्यान्' शीर्षक में (H.P. vol. I)।

32. The worshippers of Assur fled up before the Elamite invasion, the valley of Tigris, and founded the Assyrian Nation. The inhabitants of the country at the head of the Persian Gulf and of its islands emigrated to Syria. under the name of Phaenicians (H.P. vol. 1,78).
The ancient capital Assur (the modern Kala-sherghat) was superseded, as the seat of Empire, first by Kalkhi, on the site of modern Nimrod, (H.P. Vol. 1,85)

33. देखिए, (H.P. vol. 1,101) आदि; विष्णुपुराण, समुद्र-मंथन-प्रकरण।

34. देखिये, अत्रि, फुटनोट सहित।

35. 'विष्णु पुराण' तथा हिस्ट्री आफ पर्शिया, ज्दृ. 1.28।

36. 'मत्स्य पुराण', विष्णु पुराण।

37. हिस्ट्री आफ पर्शिया Vol. 1. 319।

38. हिस्ट्री आफ पर्शिया Vol. 1.103।

39. हिस्ट्री आफ पर्शिया Vol. 1.103।

40. हिस्ट्री आफ पर्शिया Vol. 1.101, 'विष्णु पुराण'।
अत्रि, फुटनोट सहित।

41. 'विष्णु पुराण'।

42. 'मत्स्य पुराण' 9, 'टाड राजस्थान'। 10, वही।

43. 'हिस्ट्री आफ पर्शिया' Vol. 1.266,267।

44. अत्रि पतन, 'भविष्य पुराण' तथा हिस्ट्री आफ पर्शिया Vol. 1.319,321,366.

45. 'मत्स्य पुराण' पृ. 318।

46. हिस्ट्री आफ पर्शिया Vol. 1.55, 284।

47. 'मत्स्य पुराण', अ. 118। श्लोक 6।

48. देखिए, 'मत्स्य पुराण', अ. 24, श्लोक 72। 'भागवत पु.' अ. 131। ऐतरेय ब्राह्मण 8।4।1।, 'विष्णु पुराण'। हिस्ट्री आफ पर्शिया, Vol. 1.55, 322, 326 तथा टाँड राजस्थान।

49. हिस्ट्री आफ पर्शिया Vol. 11.55.

50. 'विष्णु पुराण', 'भागवत पुराण', 'मत्स्य पुराण'।

51. कनिंघम Vol. 11,55.

52. हिस्ट्री आफ पर्शिया Vol. 1.103*

53. टॉड राजस्थान।

54. हिस्ट्री आफ पर्शिया, Vol. 1।

55. Genesis, ch. XIV.

56. 'महाभारत' शांति पर्व।

57. 'महाभारत'श्रीमद्भागवत, अनोऽस्तु म्लेच्छ जातयः।

58. 'Anau, site in Trans-Caspia हिस्ट्री ऑफ पर्शिया (vol. I, 61. 65.)।

59. 'मत्स्य पुराण'।

60. 'ऐतरेय ब्राह्मण'। टॉड राजस्थान।

61. 'कपोत' कबूतर नहीं, ईरान की एक जाति थी।

62. हिस्ट्री आफ पर्शिया, vol. II, 218.

63. 'From Ganges to Caspian in the middle kingdom.' 'टॉड राजस्थान'।

64. हिस्ट्री आफ पर्शिया, देखिए, Passargadae प्रकरण।

65. देखिए, 'कर्निघम का इतिहास', दूसरी जिल्द।

66. 'महाभारत', महाप्रस्थानिक पर्व, श्लोक 2-3। स्वर्गारोहण पर्व अ. 5, श्लोक 23।

67. उनकी दशा ठीक वैसी ही हो गई थी, जैसी द्वितीय महायुद्ध के बाद ब्रिटेन की हो गई थी, जिससे उन्हें भारत के साम्राज्य को भंग करना पड़ा।

68. महाभारत स्वर्गारोहण पर्व।

69. H.P. vol. I, 300*

70. टाड राजस्थान। H.P. vol. I महाभारत, मत्स्य आदि।

71. It can be now proved even by geographical evidence that the Zoroastrian had been settled in India before they emigrated to 'Persia.'
The Zoroastrians were a colony from Northern India. (Science of Languages.).

72. Elam, the home of the earliest civilization of the Persia, (H.P. vol. 1.).

73. The name by which the Caspian Sea is Known in Europe is derived from the Caspii, a tribe that dwelt on its western shores. (History of Persia, vol. 1.28).

74. Highways of the world. Godl mines of Asia Minor of Sivas (History of Persia, Vol. 1.)

75. मग अग्नि और निक्षुभा के पुत्र हैं। (देखिए-'भविष्य पुराण,' 'विष्णु पुराण')।

76. तो पुष्करिण्याः पम्पायास्तीरमासाद्य पश्चिमम्।
अपश्यतांततस्तत्र शवर्यारम्यमाश्रमम् ।। (वाल्मीकि)
नदी गोदावरीं चैव सर्वमेवानुपश्यत।
तथैवान्ध्रांश्च पुण्ड्रांश्च चोलान्पांण्ड्यांश्च केरलान्।
अयोमुखश्च गन्तव्यः पर्वतोधातुमण्डितः।।
ततस्तामापगां दिव्यां प्रसन्नसलिलाशयाम्।
तत्र द्रक्ष्यथ कावेरीं विहतामप्सरोगणैः।
तस्यासीनं नगस्याग्रे मलयस्य महौजसः।।
द्रक्ष्यथादित्यसंकाशमगस्त्यमृषिसत्तमम्।
ततस्तेनाभ्यनुज्ञातः प्रसन्नेन महात्मना।।
ताम्रपर्णी ग्राहजुष्टां तरिष्यथ महानदीम्।
सा चन्दन-वनैश्चित्रैः प्रच्छन्नद्वीपवारिणी।।
कान्तेव युवती कान्तं समुद्रमवगाहते।
ततो हेममयं दिव्यं मुक्तामणिविभूषितम्।।
युक्तं कपाटं पाण्याना गता द्रश्यथ वानराः
ततः समुद्रमासाद्य संप्रधार्यार्थ-निश्चयम्।।
अगस्त्येनान्तरे तत्र सागरे विनिवेशितः।
चित्रसानुमयः श्रीमान्महेन्द्रः पर्वतोत्तमः।। वाल्मीकि)

77. 'एष विन्ध्यो गिरिः श्रीमान्नानाद्रु मलतायुतः।
एष प्रस्त्रवणः शैलः सागरोऽयं महोदधिः।। (वाल्मीकि)

78. पम्पा नदी-निवासानामनुमन्दाकिनीमपि।
चित्रकूटालयानां न क्रियते कदनं महत् ।। (वाल्मीकि)

79. 'इतःस्थोऽहं प्रपश्यामि रावणं जानकीं तथा।' (वाल्मीकि)

80. 'लंका टेनका हेइकेन रावना आखड़ी बाल्लान टेंगनारे।
बोभाड़ो आई वाई हेटे रावना डोडीरे।
पैरी बांडो सुतरा बांडी चोपराटेनमा डोयोगे ज। लंका टेनका।'

81. 'लियूर' एक प्रकार का बन्दर होता है।

82. वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धा काण्ड।

83. न जाने निलयं तस्य सर्वथा पापरक्षसः। (वाल्मीकि)

84. द्वावम्बुधिनाथे समरे तौ पाशाहिमपयोधिनी। ('मत्स्य पुराण' पृष्ठ 659)।

85. Barsom twigs and the Turanians. The use of the Barsom or bundle of twigs. (H.P. Vol. I, 115).

86. It is also corroborated by Herodotus, who gives the names of the tribes that were welded into a nation as the Busae, the Paretaceni, the Struchates the Arizanti, the Budii, and the Magi. It is Generally belived that the first four of these were Aryans and that the Budii and Magi were Turanians (तुर्वश वंश). (H.P.Vol. 1, 103).

87. 'मत्स्य पुराण'।

88. शकाः यवन काम्बोजाः पारदाः पह्लववास्तथा।
कौलिसर्पाः समहिषादार्वाश्चोलाः सकेरलाः।
सर्वे ते क्षत्रियास्तात धर्मस्तेषां निराकृतः।
वशिष्ठवचनाद्राजन् सपरेण महात्मना (महाभारत)।

89. यत्वं मे हृदयाज्जातो वयस्त्वं न प्रयच्छसि।
तस्मात् प्रजा समुच्छेदं तुर्वसो तव यास्यति।
संकीर्णाचारधर्मेषु प्रतिलोमचरेषु च।
पिशिताशुशिजात्येषु मूढ़राजा भविष्यति।
गुरुदार प्रसक्तेषु तिर्य्यग्योनिगतेषु च।
पशु धर्मिषु पापेषु म्लेच्छेषु एवं भविष्यसि। (महाभारत)
तुर्वसो यवनाः जाताः (पुराण)।

90. वैशस्तु व्यवहर्ता विट् वार्तिकः पणिको वणिक्। (राज निघण्टु)।

91. अक्रतून् ग्रथिनः मृध्रवाचः अश्रद्धान पणीन् अर्थात गांठ काटने वाले पाकेटमार पणि (ऋग्वेद 7।6।3)।
Punic pertaining to or like the ancient Carthaginians; faithless, treacherous, deceitful. (L. Punicus-Poeni, the Carthaginians) सकवर्ग ने रोम के इतिहास में लिखा है-The Roaman words 'Poeni' and 'Punicus' are corruptions of phoenix and poenician.'

92. 'More noteworthy is Surias, since it is explained as meaning the Sun, and E. Meyor has yielded to the temptaion to accept equation with the Vedic Suryas,
-Dr. Bhandarker commemoration.
(The Early History of Indo-Iranians by A. Berrie dale keith.).

93. महाभारत आदि पर्व, 59।35।36 और 'वायु पुराण' 97।72।

94. 'वाल्मीकि रामायण', अयोध्या काण्ड, 170।

95. 'वाल्मीकि रामायण'।

96. 'वाल्मीकि रामायण'।

97. 'वाल्मीकि रामायण।'

98. पुराकृतयुगे राम प्रजापति-सुतः प्रभुः।
पुलस्त्यो नाम ब्रम्हर्षि साक्षादिव पितामहः।
स तु धर्म-प्रसंगेन मेरोः पार्श्वे महागिरेः।
तृणविन्द्वाश्रमं गत्वा न्यवसन्मुनि-पुंगवः। (वाल्मीकि)

99. देखिए, कम्पेरेटिव ग्रामर आफ ड्रवेडियन लेंग्वेजेज, पृष्ठ 118।

100. देखिए, मार्सडन का 'भारत का इतिहास'।

101. भक्ष्यन्ते राक्षसै र्भीमैर्नरमांसोपजीविभिः।
ते भक्ष्यमाणा मुनयोःदण्डकारण्यवासिनः।
एहि पश्य शरीराणि मुनीनों भवितात्मनाम्।
हतानां राक्षसैर्घोरैर्बहूना बहुधा वने।
पम्पा नदी निवासानामनुमन्दाकिनीमपि।
चित्रकूटालयानां च क्रियते कदनं महत्।

102. देखिए, गुजराती, ता. 26 नवम्बर 1916।

103. Chedorlomer, king of Elam. He extended the empire of Elam of the Mediteranean Sea, and it is most interesting of read of his compaign in the 14th chapter of Genesis, An account is given of a compaign known as the Battle of Four kings against five. (H.P. vol. 1, 79).

■

पांचवां प्रकरण

1. देव

मसीह से चार पांच हजार वर्ष पूर्व वर्तमान मैसोपोटामिया की आग्नेय दिशा में सुमेरियन[1] जाति के लोग आकर बसे। इन लोगों ने पहले युक्रेतिस और तैग्रिस नदियों के मुहानों पर अपनी बस्तियां बसाई, जो धीरे-धीरे उत्तर की ओर बढ़ीं। इन बस्तियों वाले आपस में लड़ते रहते थे। कुछ काल बाद सेमेटिक जाति के लोगों ने इन्हें जीत लिया, पर संस्कृति इन्हीं की अपना ली। भाषा अपनी रखी। इन्होंने जिस उत्तरीय इलाके को जय किया, वह 'अक्काड़' या 'अगाद' कहाया, तथा सुमेरियनों का दक्षिणी प्रांत सुमेर कहाया। दोनों प्रातों का संयुक्त नाम बैबिलोनिया हुआ। ईसा से कोई अठारह सौ वर्ष पूर्व केशी जाति ने बैबिलोनियनों को जीता। परन्तु इन्होंने भी सेमेटिक लोगों की तरह बैबिलोनियन सभ्यता ग्रहण कर ली। ये 'केशी' एलाम प्रदेश के रहने वाले थे। केशी बड़े भारी अश्वारोही थे, जो बैबिलोनिया के लिए नई बात थी। एलाम प्रांत बैबिलोनिया की उत्तर सीमा से सटा हुआ था। वहां आदित्यों का प्रमुख निवास था। बैबिलोनियनों से एलामवासियों का मित्रभाव था। ऋग्वेद में बैबिलोनियन नगर 'उर' 'उम्मा' के निवासियों के प्रति आदर-भाव प्रकट किया गया है।[2] एलम के पश्चिम के मितन्तु या मितन्नि[3] व दक्षिण के 'उरु' 'उमा' बैबिलोनियन रियासतें ही थीं, जिनसे एलम के आदित्यों के मित्र सम्बन्ध थे। परन्तु एलाम वाले अपने उत्तर प्रांतीय रियासतों वाले पर्शियनों से घोर शत्रुता रखते थे।[4] अवेस्ता में इन्द्र को दैत्य कहा गया है। अवेस्ता में ऐसी अनेक प्रार्थनाएं हैं कि कुकृत्य करने वाले इन देवों को अहरमज्द की उपासना से भगाना चाहिए। इन्द्र पर्शियनों को बिल्कुल प्रिय न था। इसके बहुत प्रमाण हैं। इसके विरुद्ध वह बैबिलोनियन लोगों का न केवल मित्र ही था, अपितु वह बैबिलोनियन संस्कृति का समर्थक भी था। उसी ने वैदिक देवताओं की श्रेणी में बैबिलोनियन देवताओं को सम्मिलित किया तथा उनकी ऋचाएं रचवाई। बैबिलोनियन देवता अंशन Anshan का उल्लेख ऋग्वेद में अंश नाम से हुआ।[5] बैबिलोनियन एतन Etana देवता को ऋग्वेद में एतश कहा है।[6] बैबिलोनिया के मुख्य देवता इश्तर (Ishtar) और तम्मूज (Tammuz) तथा दमुत्सि (Damutsi) थे। उन्हें ऋग्वेद में उषा और दमूनः के रूप में व्यक्त किया गया है। ऋग्वेद में वर्णित उषादेवी का वर्णन इश्तर की दन्त-कथाओं से बहुत समानता रखता है।[7] तम्बूज और दमूनः के वर्णन भी ऋग्वेद में हैं।[8] सुमेरुवासी देवों ने जलयानों का यथेष्ठ व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

पहले इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि आदि प्रमुख आदित्य असुर कहाते थे। असुर का अर्थ है– प्राणवान, बलवान, सामर्थ्यवान। असु का अर्थ होता है प्राण। उसी से असुर शब्द बना है। वैदिक साहित्य में असुर, इन्द्र, वरुण, मित्र, अग्नि आदि देवों के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है। परन्तु, 'आनायुधासो असुरा अदेवाः', इससे देवों के अतिरिक्त अन्य असुर

भी हैं— ऐसी ध्वनि निकलती है। आगे ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों में अनेक स्थानों पर देवासुराः प्रयोग देखा जाता है। बौद्ध साहित्य में भी देवासुर संग्रामों जैसे प्रयोग हैं। इससे स्पष्ट है कि ईसा के पूर्व लगभग दसवीं शताब्दी में ही देवों से असुरों को भिन्न समझा जाने लगा था। इसका कारण हम यह समझते हैं कि जब असीरियन लोगों ने बैबिलोनियनों पर निरन्तर चढ़ाइयां कर उन पर अपना प्रभाव छा दिया, तो उनके मुख्य देवता असुर होने के कारण एलाम में और उसके पूर्व सप्त सिन्धु में असुरों के सम्बन्ध में घृणा के भाव फैल गए, तथा देव संज्ञा उन्होंने अपना ली। वेद में इन्द्र, मित्र, वायु, मरुत, आश्विन, विश्वदेवस, वृहस्पति, ब्रह्मणस्पति, ऋभु, वरुण, पूषन, रुद्र, उशस, सूर्य, सोम, विष्णु, मातरिश्वम्, तृत, अर्यमन, त्वष्टा आदि देवताओं की स्तुति है। ये सब देवता सोमपान के लिए निमंत्रित किए जाते हैं। अग्नि, इन्द्र के बाद सबसे प्रसिद्ध देवता हैं। मरुत प्रथम देवता न थे, पीछे इन्द्र से मित्रता कर देवों में सम्मिलित हुए। आश्विन दो है। इन्द्र वेद का सबसे बड़ा देवता है। विश्वेदेवस तेरह हैं। वृहस्पति मंत्रों के देवता हैं। ऋभु तीन हैं। वरुण अवैदिक काल के सर्वोपरि देवता हैं। पूषन बारह आदित्यों में से एक है। रुद्र पशुपति है। उषस स्त्री देवता है। सोम, स्वनय (भव के पुत्र), विष्णु, भग (धन के देवता) हैं। असुरवंश का वर्णन मार्कण्डेय पुराण में वर्णित है।

परन्तु इन्द्र ने बैबिलोनियन लोगों की देखादेखी आदित्यों की संज्ञा भी देव रख दी, तथा स्वयं देवेंद्र बन गया। बैबिलोनिया के अनेक सम्राट अपने को देव कहते थे। उनके जीवनकाल में ही उनकी गणना देवताओं में हो गई थी। वे धूमधाम से उत्सव मनाकर सोमपान करते थे।[9] इन्द्र ने इन्हीं के अनुकरण पर सोमपान की प्रथा भी देवलोक में प्रचलित की। वास्तव में इन्द्र की पूजा और सोमपान की विधि का मूल बैबिलोनियन संस्कृति ही है। यह बहुत कुछ संभव है कि ऋग्वेद की कुछ ऋचाएँ बैबिलोनिया ही में रची गई हों, क्योंकि हिरण्याक्ष के वराह द्वारा वध किये जाने पर वराह का मित्र नृसिंह ही यहां का देव बन गया था। पीछे उसने हिरण्यकशिपु को मारकर दैत्यलोक भी अधिकृत कर लिया। यह नृसिंह सूर्यवंशी नृग था। ईलाम से, देवों के आक्रमण के कारण हटकर असुरों की इब्राहीम वाली शाखा बैबिलोनिया में बस गई थी, जिसे हर-त्रिपुरारि ने जीता।[10] उसके पश्चात् उर ने उन्हें मिश्र में भगा दिया। दूसरी शाखा सीरिया में जा बसी- जो फोनोशियन के नाम से विख्यात हुई। फोनोशियन बड़े नाविक, वणिक और शिल्पी प्रसिद्ध हुए। सीरिया के असुरों को कृष्ण ने जीतकर उस प्रदेश का नाम श्याम (साम) रखा। शेष असुर बैबिलोनिया में देवों की प्रजा की भांति रहने लगे। पीछे उन्होंने निमरुद् में एक राज्य स्थापित किया। इतिहास उनकी जाति 'असि' बताता है, जो असुर का लघु रूप है। निमरुद-निमिरी-असीरिया-कुर्दिस्तान पौराणिक उत्तर कुरु हैं। सूर्य के स्वसुर विश्वकर्मा विश्वरूप यहीं के राजा थे।

इसी प्रदेश में शिव के शिवस्थान में स्वर्णखान निकली थी जिसका शिव ने यक्षपति कुबेर को खजांची बनाया था। जो असुर प्रजा की भांति असुर ही में रह गए, उन्हें Bahrien Islenders कहते हैं।[11] ई. पू. 2700 में असुर स्वतंत्र राजा हो गए। ई. पू.1300 में असुरों ने बैबिलोनिया देवों से छीना, पर फिर हारकर उनकी प्रजा बन गए। ई. पू. 1100 में असीरिया फिर स्वतंत्र हुआ। ई. पूर. 722 में असुर नरेश सरगन और उसके उत्तराधिकारियों ने मितानि, 1 हितेति, ईलाम, बेबिलोनिया व मिश्र देशों को जय किया। वाणिपाल ने ई. पू. 648 में बेबिलोनिया व ई. पू. 645 में सुषा[12] के 'इन्दाबोगस' को जीतकर शाकद्वीप में देवों के राज्य अर्थात इन्द्रासन का अंत कर दिया।

इस प्रकार असीरिया के असुर नरेश बाराधिल और उनके वंशधरों ने आदित्यों- देवों के आधिपत्य से बैबिलोनियन, एलाम तथा शाकद्वीप (ईरान) को मुक्त कर दिया और इस प्रकार सदा के लिए देवों का इन्द्रासन और स्वर्ग का राज्य समाप्त हो गया। वरुणपुरी सुषा जो इन्द्रपुरी या स्वर्ग कहाती थी,

नामशेष रह गई। ई. पू. 2400 से ई. पू. 345 तक सुषा प्रदेश सुरों का सुरपुर बना रहा।

डियोरस, प्लाइमी, टालोमी, टॉड, कर्निंघम व चीनी इतिहास वेत्ताओं ने शाकद्वीपी (ईरानी) दो जातियों का उल्लेख किया है। एक सू दूसरी असी। पर वे यह निर्णय नहीं कर पाए कि ये सू और असी थे कौन। वास्तव में सू सुषा के सुर थे, और असी सुरों के विमात्र भाई असीरियावासी असुर थे, जिनकी पूर्व संज्ञा आदित्य और दैत्य थी। सुरों ने विष्णु को प्रधान देव माना। परन्तु असुरों ने शिव को। उन्होंने सेवियाज्म (Sabeanism) धर्म ग्रहण किया। कुछ तो इस कारण और कुछ राजनैतिक कारणों से सुरों और असुरों में, जो परस्पर भाई बन्धु थे, ई. पू. 1300 में रोटी-बेटी सम्बन्ध बन्द हो गया।

2. दैत्य-दानव

कश्यप की दिति से हुई संताने 'दैत्य' कहाई। यह कश्यप की ज्येष्ठ पत्नी दिति की संतान होने से सर्वोपरि और श्रेष्ठ थी। काश्यप सागर के तट के आसपास इनके राज्यों का विस्तार हुआ, कश्यप की दूसरी पत्नी अदिति पुत्र आदित्यों से इनके राज्य मामलों व झमेलों में बहुत विग्रह हुए। दैत्यों की सभ्यता को ही पुरातत्वविद् हीलियोलिथिक सभ्यता कहते हैं। इसी की एक शाखा अमेरिका में मय सभ्यता के रूप में विकसित हुई। दूसरी मिश्र में मैसोपोटामिया नाम से, तीसरी बैबिलोन में असुर नाम से। पुराणों के अनुसार दैत्य वंश का वंश-वृक्ष इस प्रकार है–

मरीचि
|
कश्यप
|
हिरण्यकशिपु (हिरण्याक्ष, वज्रांग व अंधक भाई)
|
प्रह्लाद (अनुह्लाद, ह्लाद व संह्लाद भाई)
|
विरोचन (कुम्भ व निकुम्भ भाई)
|
बलि
|
वाण

हिरण्याक्ष के उत्कूर, शकुनि, भूत संतापन, महानाभि, महाबाहू, कालनाभ पुत्र हुए। वज्रांग का पुत्र तारक था। कश्यप की तीसरी स्त्री दनु से दानव वंश चला, जिसके प्रमुख पुरुष शंवर, शंकर, एकचक्र, महाबाहु, तारक, वृषपर्वा, पुलोमा, विप्रचित्ति आदि हुए। वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा से यताति का विवाह हुआ, ययाति चन्द्रवंशी था। इसके वंश का मुख्य पुरुष पुरु हुआ। पुलोमा और कालिमा नामक दो कन्याएं भी दनु के हुई, जिनके वंश कालिकेय और पौलोम नाम से चले। दिति की एक पुत्री सिंहिका विप्रचिति को व्याही थी, जिनके वंश में शल्ल, वातापि, नमुचि, इल्वल, नरक, कालनाभ तथा चक्रयोधि आदि व्यक्ति हुए। प्रसिद्ध दैत्य निवात व कवच तपस्वी थे जो संह्लाद के वंश में हुए।[13] हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष बड़े प्रतापी थे। इन्होंने अनेक देवों को पद्च्युत किया। संभवतः हिरण्यकशिपु और बलि उत्तर पश्चिम फारस और अफगानिस्तान के शासक थे। प्रह्लाद को सुरत्व की प्राप्ति हुई।[14] हिरण्यकशिपु नृसिंह द्वारा मारा गया। प्रह्लाद ने विष्णु से सुलह की थी। इस पर पितापुत्र में विरोध हुआ।[15] दैत्यों में प्रह्लाद और उसके पुत्र विरोचन की किसी महत्ता का कहीं कोई उल्लेख नहीं है, परन्तु विरोचन-पुत्र बलि बड़ा पुरुषार्थी और दानी प्रसिद्ध हुआ। उसने दैत्य वंश का एक नया समर्थ राज्य खड़ा कर लिया था। उसकी राजनीति से दैत्यों तथा दानवों का बहुत बल बढ़ा। बलि-पुत्र वाण प्रबल युद्ध-कर्ता था, तथा उसकी उपाधि महातेज थी। स्वयं राजा बलि राजनीतिज्ञता, पुरुषार्थ, न्यायप्रियता, धर्म, दान आदि गुणों में अप्रतिम था। हिरण्यकशिपु के वध के बाद बलि के समय तक शायद देव काफी संगठित हो चुके थे। उन्होंने नागों से भी संधि कर ली थी। नाग अच्छे नाविक थे। उनकी सहायता से देवों ने समुद्र पार आना-जाना आरम्भ किया, जिसमें दैत्यों ने भी उत्साह प्रकट किया। इसे ही समुद्र-मन्थन कहा गया है।

3. नाग

तुर्किस्तान का नाम नाग लोक था। तुर्क ही नागवंशीय हैं। तुर्कों की उपजातियां 'सेस', 'वासक' आदि 'शेष' और 'वासुकी' नाग के नाम पर हैं।[16] उत्तरी तुर्किस्तान को काम्बोज कहा गया है। यह प्राचीन नागों का स्थान था। एलपात्र, अश्वतर, शेष, कर्कोटक, धन्वन्तर व सुरसा के पुत्र नाग थे।[17] अश्वतर का राज्य सिन्ध के उस पार था।[18] काबुल, युसुफजाई, हसनअब्दाल, टोचरिस्तान (Tocharistan) आदि नागों ही के देश हैं। पहले सीरिया पर भी नागों का ही आधिपत्य था।[19] शेषनाग का ईलाम में भी आधिपत्य था।[20] इसी से विष्णु को शेषशायी कहते हैं। विष्णु ने शेष नाग को अधीन किया था।

4. नृसिंह

नृसिंह नृग इक्ष्वाकु के छोटे भाई सूर्यवंशी थे। इन्हीं ने हिरण्यकशिपु को मारा। बेबिलोनिया जय किया। नृसिंह-सेना के संचालन के चित्र 'डी-मार्गन मिशन' को बेबिलोनिया में मिले हैं। उत्तरी तुर्किस्तान का नाम गिरगिस (Ghirghis or Girgis) है।[21] गिरगिस गोत्री पठान अपना मूल निकास यहीं से बताते हैं। पुराणों से प्रमाणित है कि 'नृग' सूर्य के पौत्र और इक्ष्वाकु के भाई थे। Kais सूर्य का नाम है। प्रसिद्ध है कि नृग को इन्द्र बनाया गया था। पीछे वे शापवश गिरगिट बनाकर अन्धकूप में डाल दिए गए। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में सारे शाकद्वीप के अधीश्वर (priest king) महिदेव थे, जो शुक्ल (शुक्रवंशी) थे। नृगवंशियों ने इनकी भूमि छीनकर मद्र देश मगों को दे दिया। इससे शुक्लों और असुरों ने नागवंशियों को उरपुर से निकालकर गिरगिस (उत्तरी तुर्किस्तान) में खदेड़ दिया, जहां से कृष्ण के आदेश से अर्जुन ने उनका उद्धार किया।

ईलाम के सूसिया प्रदेश में, जो पहले सुरपुर (Suru) कहाता था, नृगवंशी रहते थे। जिन्हें नृगिटो (Negrito) कहा गया है। यह नृगिटो जाति फारस की खाड़ी से भारतवर्ष तक फैली थी।[22] नृगवंशियों के अधिनायक 'नरमसिन' (Naram-sin) थे। नरमसिन की मूर्ति सिंह की है। परसा प्रांत में 'इस्टखर'

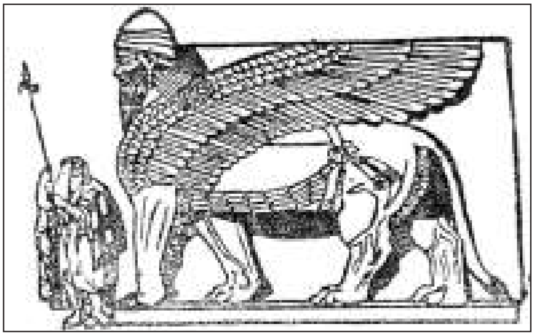

नरमसिन की मूर्त्ति

व 'नरमसिन' दोनों ही स्थान परस्पर निकट हैं। हिरण्यकशिपु 'खरों' (दैत्यों) के मूल पुरुष थे। इस्टखर ही उनकी राजधानी थी। इनके एक पुत्र प्रह्लाद थे, जिनसे विष्णु ने संधि की थी। प्रह्लाद की माता इस्टखारा कहलाती है। इस्टखारी उन्हीं के वंशज हैं, तथा 'नरमसिन', नृसिंहपुर का अपभ्रष्ट नाम है। और नरमसिर (Naram-Shir) नृसिंहपुर का नाम है।[23] यह स्थान काश्यप सागर (Caspian Sea) के निकट है। यहीं स्वर्ण की पहली खान निकली थी, जिसे पाकर ही उसका नाम 'हिरण्यकशिपु' पड़ा था, तथा इसी स्वर्ण-खान को नृग-नृसिंह ने हिरण्यकशिपु को मारकर छीना था। पुराण भी साक्षी हैं कि हिरण्यकशिपु का वध शाकद्वीप में इसी नगर के पास सुमना पहाड़ी पर हुआ था। यह पर्वत कश्यपसागर के निकट है।[24] नृसिंह के सैन्य संचालन के चित्र बैबिलोनिया व लुलुवी प्रान्तों में मिले हैं।[25] इन चित्रों के नाम हैं– Stele of Naramsin leading Negritos to victory. इनमें एक प्रख्यात चित्र Famous stele of Naramsin भी है, जो लुलुवी प्रान्त में De Morgan mission के अन्वेषकों को मिला है। प्रथम चित्र में नृसिंह सूर्य का झंडा लिए सैन्य संचालन कर रहे हैं।

यम सूर्य के पुत्र थे, तथा मनु के सगे भाई थे।

मनु के पुत्र नृसिंह व नृग थे। अतः नृसिंह यम के भतीजे और उनके राज्य के संरक्षक भी थे। यम को ईरानी यमशिद या जमशिद कहते हैं। परसा प्रदेश में परसी राजधानी में यम का सिंहासन है, जिसमें सिंह और गिरगिट के चित्र बने हैं तथा एक कविता लिखी है जिसका अभिप्राय है कि सिंह और गिरगिट प्रतापी राज्य-संरक्षक थे।

They say the lion and the Lizard keep, The courts where Jamshy'd gloried and drank deep (Omar Khayyam translated by Fitz Geralds). (H.P. Vol. 1. 192)।

ईरानी इतिहास में लिखा है कि जमशिद को सीरिया नरेश जोहाक ने, जो नागवंशी था, मार डाला था। क्योंकि जमशिद ने ईश्वरत्व का दावा किया था। इसके बाद नृग व नृसिंह ने फिर ईरान को विजित किया और हिरण्यकशिपु को मारकर नृग, सुरपुर (Surg) स्वर्ग के अधीश्वर बने; तथा इन्द्र कहाए। इस देश के राजाओं की उपाधि 'इन्दावोगश' (इन्द्रदेव) थी। वाणासुर ने जो आरमेनिया का प्रतापी नरेश था, तथा जिसकी राजधानी 'वन' थी, इन नृसिंह-वंशियों नृगिटों (Negritos) को स्वर्ग प्रदेश से भगा दिया था, जिससे वे भागकर उत्तरी तुर्किस्तान में, जिसका नाम गिरगिस था, शरणापन्न हुए थे। इस प्रदेश को 'कारावोगस' (अन्धकूप) भी कहते हैं। उत्तरी तुर्किस्तान में गिरगिस (अंधकूप) वह प्रांत है, जो कश्यप सागर के छोटे भाग के निकट कारावोगस के नाम से प्रख्यात है। इसकी आकृति कूपवत् है। इसका नाम कारावोगस इसलिए पड़ा कि वोगस अर्थात् 'देवों का कारावास' (विहिष्कृत स्थान)। कालान्तर में जब श्रीकृष्ण ने वाणासुर को पराजित किया, तब उन्होंने अर्जुन की सहायता से नृगिटों को फिर से सुरपुर में लाकर बसाया। यही कथा विकृत रूप में हमारे पुराणों में वर्णित है कि नृग को गिरगिट बनकर श्रापवश अन्धकूप में रहना पड़ा था। इसका ऐतिहासिक तथ्य हमें ईरान के प्राचीन इतिहास में प्राप्त होता है। पुराणों में 'नृग' महादानी प्रसिद्ध है। नृग ने दान की हुई गौ को पुनः दान कर दिया था, इसी से उसे शापग्रस्त होकर गिरगिट बन अंधकूप में रहना पड़ा। नृग के दानों के वर्णन ईरानियन इतिहास में भी हैं। ईरान का मद्र देश पारदों के पुरोहित मगों की माफी (मगग) भूमि थी। उस काल में सारे शाक द्वीप में महिदेव ही अधीश्वर थे, जो शुक्र के वंशज थे, इनसे मद्र देश की भूमि छीनकर नृगों ने मगों को, जो वशिष्ठ वंशज थे, देदी। जिससे शुक्र वंशजों (शुक्लों) और असुरों ने मिलकर नृगों को सुरपुर से निकालकर गिरगिस (उत्तरी तुर्किस्तान) में खदेड़ दिया था। भूमि गौ को भी कहते हैं, अतः उक्त झगड़े का कारण स्पष्ट है।

5. नरबलि, नरमांस-भक्षण, नरमुण्ड

ऋग्वेद में शुनःशेप की कथा है।[26] यह आर्यों में नरबलि प्रचलन का अत्यंत स्पष्ट प्राचीनतम विवरण है। निरुत्तकार 'शुनःशेप' का अर्थ 'विज्ञान वेत्ता' करता है, तथा सायण इसका अर्थ कुत्ते की लिंगेन्द्रिय करता है। श्री मूर इसकी व्याख्या करते हुए इसके समर्थन में रामायण में वर्णित अजीगर्त की कथा तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के अंतर्गत आयी अजीगर्त की कथा को स्वीकार करते हुए इसे स्पष्ट नरबलि की घटना बताते हैं। पर इसे वह अनार्यों को रीति कहते हैं, तथा डॉ. रोसिन के मत का विरोध करते हैं– जिन्हें इस विषय में संदेह था।[27] शुनः शेप की यह कथा ऋग्वेद के अतिरिक्त ऐतरेय ब्राह्मण तथा अन्य कई पुराणों में भी हेर-फेर से वर्णित है। उधर शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि नरबलि कभी नहीं होती थी। मनुष्य का पुतला बलिदान में चढ़ाया जाता था। परन्तु संभव है, बाद में ऐसा किया जाने लगा हो। क्योंकि अजीगर्त के इस पुत्र की बलि का भी बहुत भारी विरोध हुआ था। फिर वेद में प्राचीन आर्यों में बलि की परिपाटी पर केवल यही एक उदाहरण उपलब्ध होता है। परन्तु कृष्ण यजुर्वेद के तैत्तिरीय ब्राह्मण में नरवध का संकेत है। उत्तरकालीन कथा-ग्रन्थों, नाटकों आदि में भी नरबलि की बहुत चर्चा है। कथासरित्सागर में तो ऐसी बहुत कथाएं

हैं। राक्षस नर-मांस भक्षण भी करते थे। यह तो प्रसिद्ध ही है कि भीमपुत्र घटोत्कच एक बार स्वयं अपने पिता को ही अपनी माता के भोजन के लिए पकड़ ले गया था। ऐसे अन्य स्वेच्छा से आत्मबलि के उदाहरण महाभारत में बहुत हैं। भीम तो अनेक बार दूसरे व्यक्तियों के बदले राक्षस का भोजन बनकर गया, तथा राक्षस को मारकर लौटा, ऐसे वर्णन हैं। सूर्यवंशी कल्माषपाद नामक प्रसिद्ध राजा राक्षसधर्मी हो गया था। वह नर मांस खाने लगा था। वशिष्ठ इसके कुलगुरु थे। यह उन्हीं के पुत्रों को मारकर खा गया था।[28] शाक्त, अघोरी, कापालिक, कालमुख आदि सम्प्रदायी देवी को नरबलि देते थे। कुछ काल पूर्व तक जयपुर में आमेर की शिला देवी को नरबलि दी जाती थी। अब भी भारत की तथा अफ्रीका की कुछ जंगली जातियां नरबलि, नरवध करती है और नरमांस भक्षण करती हैं। तांत्रिक अभिचारों में नरबलि तथा नरमांस भक्षण का प्रयोजन बताया गया है।

आज भी कुछ ऐसी जातियां हैं, जो नरमुण्डों (मनुष्यों) का शिकार करती हैं, तथा नरबलि देती हैं। मलाया की कुछ जातियों में तथा बोर्नियां की दायक जाति, आसाम के पहाड़ी आदिवासी, नागे, कूकिया, झारखण्ड की जंगली जातियां और अफ्रीका की कुछ जातियां नरमुण्डों का शिकार करती हैं। मलाया के सब निवासी मनुष्य की खोपड़ी की पूजा करते थे। यह प्रथा धार्मिक भावनाओं पर आधारित थी, और अपनी समृद्धि तथा सुख के लिए देवी-देवताओं पर मनुष्यों की बलि चढ़ाई जाती थी। बोर्नियो में दायक नामक एक जाति है जो मलाया के लोगों से मिलती-जुलती है। इनके शस्त्र भाला तथा मुड़ी हुई तलवार है। उनके तीर कमान भी साधारण नहीं होते। उनका धनुष एक विचित्र प्रकार का होता है। ये लोग देवता का कोप शमन करने को नरबलि देते हैं। नरमुण्डों के शिकार की प्रथा इनमें प्राचीन काल से है। इनका कोई भी शुभ काम तब तक पूरा नहीं होता, जब तक दो चार मनुष्यों के सिर न काट लिए जायें। बालक के जन्म पर पिता, माता को मनुष्यों की कुछ खोपड़ियां भेंट करता है, नहीं तो बालक अशुभ माना जाता है। यहां का युवक जब तक अपने हाथ से शिकार किए लोगों की खोपड़ियों से अपनी झोंपड़ी नहीं सजा लेता, तब तक उसे नागरिकता के अधिकार नहीं मिलते। जो सबसे अधिक नर मुण्ड काटता है, वही इनका मुखिया कहाता है। ये लोग जानवरों की खाल पहिन तथा उनके चेहरे लगा कर मनुष्यों का शिकार करते हैं और निर्दयता से मनुष्य का वध करते हैं। पहिले वे उसे पकड़ कर यातनाएं देते हैं, फिर उसका रक्त निकालकर उसी पर छिड़कते हैं, फिर पुजारी तथा पुजारिन के सामने उसका मांस काट कर खाते हैं।

बर्मा के उत्तरी-पूर्वी भागों में एक जाति 'बा' निवास करती है। इसमें मुण्डों के शिकार की प्रथा है। इन लोगों के गांवों के बाहर लम्बे-लम्बे बांसों में नर मुण्ड लटके रहते हैं। वहां की सड़क हुसंग और रमांग, हसांन तथा हुरंग के बीच 200 से अधिक नर मुण्ड लटके हुए थे।[29]

आस्ट्रेलिया की कुछ आदिम जातियों में माताएं अपने बच्चों को खा जाती हैं। पुरातत्ववेत्ताओं का कथन है कि पैलीआलिथिक युग के आदमी नरभक्षक हुआ करते थे। फ्रांस के दक्षिण में तथा और भी कई स्थानों पर, जहां पैलिआलिथिक युग के मनुष्य रहते थे, काफी खोज की गई है, जिनसे पता चला है कि ऐसी प्रथा थी कि मनुष्य को मार कर सीधे-सीधे उसके समूचे शरीर का चमड़ा निकाल लिया जाता था, जो खास धार्मिक समारोहों में काम आता था। Herodotus का कहना है कि सिथियन लोग पशुओं के साथ बूढ़े मनुष्य का भी बलिदान करते थे, तथा दोनों का मांस साथ-साथ पकाकर खाते थे। ऐसी ही बात स्टेवो ने भी लिखी है। अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, एशिया, न्यूजीलैण्ड और दक्षिणी एवं उत्तरी अमेरिका के अनेक भागों में नरघाती जातियां अब भी बसती हैं। गायना के

किनारे कांगो तक और नाइग्रेनरिया में खासकर कालाबार में नरभक्षकों के दल रहते हैं। हयाती के हब्शी भी भयंकर नरभक्षी हैं। तत्काल मारे हुए मनुष्य का गर्म रुधिर से भरा मांस खण्ड इनका सर्वप्रिय खाद्य है। पपुआ और मलानेसिया में भी नर-भक्षकों के केंद्र हैं।[30]

संदर्भ

1. देखिए, हिस्ट्री ऑफ सुमेर एण्ड अक्काड़, हिस्ट्री ऑफ बैबिलोन। (एल. डब्ल्यू. किंग द्वारा लिखित)।
2. चित्रसेना इषुवला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः - 'ऋग्वेद'। 6।75।9।
   ये अश्रमास उरवो बहिष्ठास्तेभिर्न इन्द्राभि वक्षि वाजम् -'ऋग्वेद'। 6।21।12।
   'विश्वै रूमेभिरा गहि'–'ऋग्वेद'। 5।51।1।
   'प्रथमास ऊमाः' –'ऋग्वेद'। 10।6।7।
   'अनु यं विश्व मदन्त्यूमाः' 'ऋग्वेद'। 10।120।1।
3. मितन्नु (या मितन्नि मित्र-स्थान का बिगड़ा रूप है। मित्र सूर्य का नाम था।
4. सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः –'ऋग्वेद'। 1।105।8।
5. त्वमंशो विदथे देव भाजयुः। –'ऋग्वेद'। 2।1।4। (यहां सायण ने 'अंश' का 'अर्थ' एतन्नामको देवोऽसि किया है। संभवतः इसी देवता के नाम पर 'इन्सान' शब्द बना है।
6. 'स एतशो रजांसि देवः सविता महित्वना' –'ऋग्वेद' 5।81।3।
7. 'पुनः पुनर्जायमाना पुणणी' –'ऋग्वेद' 01।92।10।
   'उषा याति स्वसरस्य पत्नी' –'ऋग्वेद' 3।61।4।
   'यां त्वा जज्ञुर्वृषभस्या रमवेम' –'ऋग्वेद' 7।79।4।
8. 'अपश्चिदेष विभ्वोदमूनाः प्र सध्रीचीरसृजद्विश्वश्चन्द्राः' –ऋ.3।31।16।
   'नित्यश्चाकन्यात्स्वपतिर्दमूना यस्मा उ देवः सविता जजान'–ऋ 10।31।4।
9. देखिए, Myths of Babylonia and Assyria. by D. A. Mackenzie.
10. यह आक्रमण पर्शिया के प्राचीन इतिहास में Hyrko's invasion (हर का आक्रमण) के नाम से विख्यात है।
11. बसरा निवासी बद्दू (Beduns) जो विद्युन्माली के वंशज हैं, जिसे हर-रुद्र ने हराया था, इसी शाखा के असुर हैं। बाबुल-मण्डव-अदन (आदम की पुष्पवाटिका) भी इन्हीं विद्युनों का प्राचीन स्थान है।
12. 'शूष' 'शुष्म' ये दो शब्द ऋग्वेद में बलवाची है। परन्तु प्र. मन्वहे शवसानाय शूषमङ्गुर्ष (ऋ.1।62।1) में शूष शब्द इन्द्र का विशेषण प्रतीत होता है। शुष्म का अर्थ शूषन् का समार्थ्य होना चाहिए, पर शूषन् (Shushan) एलाम की राजधानी थी। इसलिए शूष का अर्थ शुषा का रहने वाला भी हो सकता है। अतः इन्द्र की राजधानी सुषा-शूषा ही थी। आर्ष देश का नाम आर्षिया (एशिया) प्रसिद्ध हुआ।
13. 'विष्णु पुराण', 'हरिवंश पुराण', 'योग वाशिष्ठ', 'महाभारत' - 'आदिपर्व।
14. 'पद्म पुराण'-सृष्टि खण्ड 72, 'ऐतरेय ब्राह्मण', 'मत्स्य पुराण'।
15. 'श्रीमद्भागवत', 'शतपथ ब्राह्मण'।
16. देखिए, नन्दलाल दे कृत 'रसातल'।
17. देखिए, 'विष्णु पुराण'।
18. देखिए 'मार्कण्डेय पुराण'।
19. Ishak, Aj-Dahak family of Syria. (H.P. vol.I)*
20. Shushinak family of Elam 2400 B. C. (H.P. vol. I)।
21. The Ghirghist Pathans are descendants of Ghirghist, the third son of Kais. The word Ghirghist or Girgis means Northern Turkistan, whence they originally came. (Tribes and Castes of U.P., Vol. III. Pathans)*
22. There was a very ancient occupation of the Susian plain by the Negritos and so far as is known, they were the original inhabitants, who probaly stretched along the northern shores of the persian Gulf to India. (H.P. vol. 1, 54, 55)*
23. पर्शिया के नक्शे में 'नरमसिर' और 'इस्टखर' स्थान देखिए।
24. पर्शिया के नक्शे में Samnan (Darale) near Demavand or Iranian Paradise देखिए।
25. In the most ancient bas-reliefs, figures of Negritos appear with frequency. More specially is this the case in the famous stele of Naramsin... where the monarch, who is of Semitic type, is portrayed as leading Negritos to victory. (H. P. vol 1. 54, 55.)*
26. 'ऋग्वेद' मं. 1 सूत्र 14 से 30 तक।
27. .... hence Dr. Rosin was led to infer that vadic hymns bore no relation to the legend of the Ramayan and offered no indication of a human victim deprecating death" (Text book of Sanskrit Literature). So revoling indeed is the description given of Ajigart's behaviours in the Brahman that we should rather recognise in him a specimen of the un-Aryan population of India.
28. देखिए, महाभारत में इस राजा का प्रसंग, आदि पर्व, उ-18।
29. देखिए, 'नवभारत टाइम्स', 17 अक्टूबर, 54 का साप्ताहिक अंक।
30. देखिए, मासिक 'विश्वमित्र', कलकत्ता।

■

छठा प्रकरण

1. पौराणिक-वंशावलियां

पौराणिक वंशावलियां बहुत अस्त-व्यस्त हैं। पुराणों में कोई स्थिर संवत् नहीं है। परन्तु प्राचीन राजवंश सूर्य और चन्द्रवंश का वर्णन प्रायः सभी पुराणों में है, तथा इन राजवंशों की वंशावलियां जानने को हमें पुराणों का आश्रय लेने को छोड़ दूसरा उपाय नहीं है। परन्तु पृथक-पृथक पुराणों में पीढ़ियों की संख्या और नामों में अंतर है। वाल्मीकि रामायण की संख्या भी अन्य पुराणों से नहीं मिलती। इसका कारण यह है कि पुराणों में राज्यों के उत्तराधिकारियों की सूची मात्र है। पिता के बाद पुत्रों की वंशावलियां नहीं हैं। गड़बड़ी का एक कारण यह भी है कि अनेक व्यक्तियों के कई नाम हैं, और कहीं कोई नाम गिनाया गया है, कहीं कोई। इसलिए सभी पुराणों तथा वाल्मीकि रामायण का ऊहापोह के साथ तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद कहीं ये वंशावलियां स्थिर होती हैं। वंशावलियां विष्णु पुराण में सर्वाधिक परिपूर्ण है। उसके विवरण भी प्रामाणिक हैं। पूर्णता की दृष्टि से विष्णुपुराण के बाद हरिवंश का नाम है। उसके बाद वायु और मत्स्य पुराण। कुछ अत्यंत प्राचीन बातों के संकेत मत्स्य और वायु पुराण में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

मुख्य पौराणिक राजवंश तीन हैं– (1) मनुर्भरत वंश (2) सूर्यवंश (3) चन्द्रवंश। पौराणिक राजवंशों पर दो प्रामाणिक गवेषणा ग्रन्थ भी हैं। एक पार्जीटर कृत 'एन्शिएन्ट इण्डियन हिस्टोरीकल ट्रेडीशन' दूसरा डॉ. सीतानाथ प्रधान का 'क्रोनोलाजी आफ एन्शिएन्ट इण्डिया'। पार्जीटर ने मनु वैवस्वत से राम तक, और प्रधान ने राम से युधिष्ठिर पर्यंत अत्यंत खोज और छानबीन करके वंशावलियां दी हैं। पार्जीटर ने अत्यंत साधारण वर्णन दिए हैं, तथा प्रत्येक कथन के आधार पदनोटों में दिए हैं। प्रधान ने जो परिश्रम से ऊहापोह की है, उससे पार्जीटर द्वारा वर्णित वंशावलियां अशुद्ध ठहर जाती हैं। राम से युधिष्ठिर तक, प्रधान की वर्णित वंशावलियां अधिक प्रामाणिक हैं। उन्होंने 13 वंशालियां प्राचीन पुराणों से निकाल कर प्रमाणित किया है कि राम से युधिष्ठिर तक 12 से 15 पीढ़ियां हुई हैं। परन्तु राम से पूर्व का वृत्त पार्जीटर ने ही अधिक प्रकाशित किया है।

एक तीसरे विद्वान डॉ. राय चौधरी ने उत्तरकालीन-महाभारत के बाद परीक्षित से गुप्त काल तक की वंशालवलियों पर उत्तम प्रकाश डाला है। परन्तु हमें तो यहां अपने उपन्यास में स्वायंभुव मनु से राम तक के विवरण अपेक्षित हुए हैं। अतः स्वायंभुव राजवंश और वैवस्त मनुवंश की दो शाखा 'सूर्यवंश' 'चन्द्रवंश' राम तक ही अपेक्षित हैं।

इसलिए यद्यपि हमने प्रधान को भी दृष्टि में रखा है, परन्तु मुख्य दृष्टि हमारी पार्जीटर की गवेषणा पर ही रही है। फिर भी हमने उनका अन्धानुसरण नहीं कर, पाश्चात्य इतिहासज्ञों तथा मूल संदर्भों के विवादास्पद स्थलों की ऊहापोह करके अपना मत निर्णीत किया है।

पुराणों में भारतीय इतिहास की बहुत सामग्री है। भारतीय जीवन का आदर्श, संस्कृति, सभ्यता तथा विद्या वैभव की बहुत कुछ झांकी पुराणों में हमें प्राप्त होती है-

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तरं तथा।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्च लक्षणम्।।

इस कथन के अनुसार पुराण में पांच विषयों का निरूपण है। परन्तु मुख्यतः उसमें सृष्टि और उसके उपोद्घात ही को व्यक्त किया है। जगत निर्माता ब्रह्मा का विवरण ब्रह्मपुराण में है। कमल का पद्मपुराण में। विष्णु का विष्णुपुराण में। शेष का वायु पुराण में। नारद का नारद पुराण में।

अब पुराणों की वंशावली पर दृष्टि डालिए। इस वंशावली को आप दो भागों में विभक्त कीजिए। एक महाभारत पूर्व की, दूसरी महाभारत के बाद की। महाभारत पूर्व की बहुत गड़बड़ है। महाभारत के बाद की अपेक्षाकृत सही है। पहले विभाग के नामों की संख्या पुराणों में भिन्न-भिन्न है। विष्णु पुराण मनु से लेकर वृहद्वल (महाभारत-कालीन) तक 92 पीढ़ी, शिवपुराण 82 पीढ़ी, भविष्य पुराण 91 पीढ़ी और भागवत 88 पीढ़ी मानता है। महाभारत ने भी मनु से महाभारत काल तक की दो वंशावली दी हैं। एक में 30 पीढ़ियां है दूसरे में 43। इन वंशावलियों में पिता पुत्र के नाम का ठिकाना नहीं है, उत्तराधिकारी का संकेत है। फिर मान्यताओं में भी अंतर है। महाभारत में नहुष और ययाति को चन्द्रवंश में गिनाया गया है। पर वाल्मीकि में[1] इन्हें सूर्यवंशी अम्बरीष का पुत्र कहा है। आपको ज्ञात है कि मनु से सूर्यवंश चला और मनु की पुत्री इला से चन्द्रवंश। सूर्यवंश का मूल पुरुष इक्ष्वाकु और चन्द्रवंश का पुरुरवा हुआ। दोनों वंश साथ-साथ चले, पर आगे चलकर बहुत घटबढ़ हो गई। युधिष्ठिर चन्द्रवंश की 50वीं पीढ़ी में हुए। परन्तु इनका समकालीन सूर्यवंशी राजा वृहद्वल सूर्यवंश की 92वीं पीढ़ी में है। परशुराम ने सहस्रार्जुन हैहय को मारा, जो चन्द्रवंश की 19वीं पीढ़ी में था। उनका समकालीन सूर्यवंशी राजा अश्मक सूर्यवंश की 52 वीं पीढ़ी में था। सुदास सूर्यवंश की 51वीं पीढ़ी में था। पर जिन ययाति के पुत्रों से उसका युद्ध हुआ, वे चन्द्रवंश की 6ठी पीढ़ी में हैं। इसी प्रकार ययाति-पुत्र द्रुह्य को मारने वाला सूर्यवंशी सर्वकाम 50 वीं पीढ़ी में है। विश्वामित्र चन्द्रवंश की 15वीं पीढ़ी में थे। पर उन्होंने जिस कल्माषपाद के द्वारा वशिष्ठ के पुत्रों को मरवाया, वह सूर्यवंशी 51वीं पीढ़ी में थे, जबकि सूर्यवंश और चन्द्रवंश साथ-साथ प्रारम्भ हुए। राम सूर्यवंश में मनु से 63वीं पीढ़ी में है और युधिष्ठिर चन्द्रवंश की 50वीं पीढ़ी पर। ऐसी दशा में युधिष्ठिर, राम से 13 पीढ़ी अर्थात् कोई 325 वर्ष पूर्व प्रमाणित हुए। तब यह भी मानना पड़ेगा कि महाभारत संग्राम से 325 वर्ष बाद राम-रावण संग्राम हुआ।

वास्तव में बात यह है कि ये वंशावलियां कहीं-कहीं नामावालियां हैं। कहीं मुख्य-मुख्य कोई नाम गिनाए हैं, कहीं दूसरे। बीच में कुछ नाम छोड़े गए हैं, परन्तु मुख्य नाम सब ग्रन्थों में एक ही हैं। प्रसिद्ध नामों ही का प्रायः उल्लेख किया गया है।

अपरे ये च पूर्वे वै भारता इति विश्रुताः।
भरतस्यान्ववाये हि देवकल्प महौजसः।।
बभूवुर्ब्रह्म कल्पाश्च बहवो राजसत्तमाः।
येषामपरिमेयानि नामधेयानि सर्वशः।।
तेषांतु ते यथा मुख्यं कीर्तयिष्यामि भारत।
महाभागान्देवकल्पान्सत्यार्जवपरायणान्।।

(महाभारत, आदि पर्व 3।34, 45)

इसलिए सब पुराणों तथा अन्य ग्रन्थों की तुलना करने पर राजवंश निश्चित होते हैं। विष्णु पुराण और हरिवंश के कथन अधिक पूर्ण हैं। महाभारत, वायु, मत्स्य और अग्नि पुराण, वाल्मीकि तथा भागवत का समर्थन है।

पुराण तीन ही राजवंशों को प्रधानता देते हैं। (1) मनुर्भरतों का स्वायंभुव वंश, (2) सूर्यवंश, (3) चन्द्रवंश। दैत्यों दानवों के वंश गौण रूप से वर्णित हैं। मुख्य नामावलियां ब्राह्मण ग्रन्थों में भी हैं।

'अथ कियतैवपिरेऽन्येमहाधनुर्धराश्चक्रवर्तिनः केचित्सुद्युम्नभूरि, द्युम्नेन्द्रद्युम्न कुवलयाश्च यौवनाश्ववध्युश्वाश्वपतिः शशविन्दु हरिश्चंद्राःऽम्बरीष ननक्तुसर्याति ययात्यनरण्याक्ष सेनादयः, अथ मरुत भरत प्रभृतयो राजानः।' (मैत्रायण्युपनिषद्, प्रपाठक 1, खण्ड-4)

.....सर्वे हैव महाराजा आसुरादित्य इव हरम श्रियां प्रतिष्ठितास्तास्पन्ति सर्वाभ्यो दिग्म्यो बलिमावहन्ते। (ऐतरेय ब्राह्मण 7।34)

स्वायंभुव मनु के दो पुत्र प्रियव्रत और उत्तानपाद तथा तीन कन्याएं (प्रसूति, आकूति और देवहूति) थीं। प्रियव्रत शाखा में पैंतीस पीढ़ियां चली।[2] प्रियव्रत के वंश में नाभि को भारत मिला। ऋषभ जैनधर्म के आदि प्रवर्तक हुए। भरत के नाम पर देश का नाम भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ। स्वारोचिष-उत्तम-तामस और रैवत मनु हुए तथा इनके नाम पर चार मन्वन्तर इसी प्रियव्रत शाखा में हुए।[3] इस वंश की समाप्ति पैंतीसवीं पीढ़ी में हुई, जब इस काल में राजा की स्थापना नहीं हुई। ये सब वंश प्रमुख प्रजापति कहाते थे। इस वंश की पैंतीसवीं पीढ़ी तक भी वेदोदय नहीं हुआ था। दूसरे भाई उत्तानपाद के वंश में चाक्षुष मनु हुए। इनके काल में सत्ता इसी शाखा के हाथ में आई। चाक्षुष मनु छठे मनु और मनुवंश के छत्तीसवें प्रजापति थे। उत्तानपाद के वंश में दस प्रजापति और राजा हुए।[4] इसी वंश में जानन्तपति आदि छै विख्यात विजेता हुए, जिन्होंने ईरान और मिश्र को जय किया। इन्हीं में प्रथम राजा वेन हुआ, जिसने राजवंश की मर्यादा स्थिर की। इसी काल में प्रलय हुआ, वैकुण्ठ निर्माण हुआ, वेदोदय हुआ।[5] इस वंश के राज्य काल में बड़ी-बड़ी सांस्कृतिक और राजनैतिक घटनाएं हुईं। कृषि का आरम्भ हुआ।

पृथु के नाम पर भूमि का नाम पृथ्वी हुआ। इसी ने बीज बोया, कृषि आरम्भ की। (मत्स्य पु. 10, 3। वायु पु. 62। 160। 172 महाभारत द्रोणपर्व 69।27)।

'अथाव्रतीत् पृथुरश्मिः क्षेत्र कामोऽहमत्मीति। तस्मै क्षेत्रं प्रायच्छत्। स एवं पृथुर्वैन्यः'– (जैमनीय ब्रा. 1।186)

नगर-जनपद बसने लगे। युद्ध व्यवस्थित हुए। इस प्रकार मनुर्भरतों की पैंतालीस पीढ़ियों का शासन काल ही सतयुग है। जो लगभग तेरह सौ वर्षों का है।

मनु की तीसरी कन्या देवहूति, कर्दम की पत्नी तथा कपिल की माता थी। इसके बाद वैवस्वतमनु का वंश चला।

जो प्रथम आर्य राजा, प्रथम कर-ग्रहण कर्त्ता, प्रथम दंड-विधान निर्माता, प्रथम नगर निर्माता था। (शतपथ. ब्रा.13।4।313। अर्थशास्त्र, कौटिल्य। वाल्मीकि रामायण, बा. कांड 5।2।)

मरीचि पुत्र कश्यप के दक्ष पुत्री अदिति में 12 पुत्र हुए जो 'आदित्य' कहाए, जिनमें छोटे 'सूर्य' थे। वैवस्वत मनु इन्हीं सूर्य के पुत्र थे। इनका कुल सूर्यवंश कहाया, जिसकी प्रतिष्ठा भारत में अयोध्या नगरी में हुई। इस वंश की 39वीं पीढ़ी में राम हुए।

दक्ष, ब्रह्मा (वरुण) के मानस (स्वीकृत) पुत्र थे (वायु पु. 67।43, मत्स्य पुराण 69।9।), परन्तु औरस पुत्र प्रचेता के थे, (महाभारत आदि पर्व 70।4, तथा शान्ति पर्व, 10।23।51।) 'तेभ्यः प्राचेतसो जज्ञे दक्षो दक्षादिभिः प्रजाः।' दक्ष की पुत्रियों की परम्परा में राजवंश चले। इनकी पत्नी, वीरण प्रजापति की कन्या अक्सिनी थी (वायु पु. 65।128।129)। दक्ष-अक्सनी की कन्या अदिति थी, जिसका व्याह मारीचि कश्यप से हुआ। इन्हीं अदिति का पुत्र विवस्वान-सूर्य-विष्णु था। सूर्य-पुत्र मनु वैवस्वत था (महाभारत आदि प. 70,5।70,8।90,7। वायु पु. 67। 43; वा. रा. बालकाण्ड 5।2।)। मनु स्वयं वेदर्षि थे। उन्होंने अपने दो सूक्त अपने पुत्र नाभानेदिष्ट को दिए, जो उसी के नाम से प्रसिद्ध हुए। ये सूक्त ऋग्वेद के 61-62 हैं। देखिए तैत्तिरीय-संहिता, 3.1-9। मै. सं. 1-5-8। ऐत. ब्रा. 5-14।

वैवस्वत मनु, इक्ष्वाकु, विकुक्षि (शाशाद), पुरंजय (कुकुत्स्थ), अनेनस (5) पृथु, विष्टराश्व,

आर्द्र, युवनाश्व प्रथम, श्रीवत्स (10) वृहदश्व, कुवलयाश्व, दृढ़ाश्व, प्रमोद, हर्यश्व (15) निकुम्भ, संहताश्व, अकृश्वशाश्व, प्रसेनजित्, युवनाश्व (दूसरे 20), मान्धातृ, पुरुकुत्स, त्रसदस्यु, सम्भत, रुरुक, (25) वृक, ऋत, नाभाग, अम्बरीष, सिन्धुद्वीप (30) शतरथ, विश्वशर्मन, विश्वसह (प्रथम), दिलीप, खष्टांग, दीर्घबाहु (35) रघु, अज, दशरथ, राम (39)।

सूर्यवंश की अनेक शाखाएं चलीं। अनरण्य से हरिश्चन्द्र की शाखा चली। यह वंश पुराण और पार्जिटर के मत से सूर्य वंश की 24वीं या 25वीं पीढ़ी में, सम्भूत या रुरुक के पीछे चलता है।

मान्धाता और विन्दुमती का पुत्र पुरुकुत्स उसका उत्तराधिकारी हुआ था। यह मन्त्रद्रष्टा था। यह और इसके पुत्र त्रसदस्यु, अपना गोत्र बदल कर अंगिरा गोत्र में सम्मिलित हो गए थे। अंगिरा त्रसदस्युश्च पुरुकुत्सस्तथैव च- मत्स्य पु. 196।37। इसने अश्वमेध किया (शतपथ ब्रा. 14।5।4।5)। पार्जीटर इन्हें वैदिक ऋषि नहीं मानते (A.I.H.I. पृष्ठ 133)। पुरुकुत्स का पुत्र त्रसदस्यु था, जो मंत्रद्रष्टा था (ऋग्वेद 4।42 और 9)। 110 इसी के सूक्त है)। ताण्ड्य ब्रा. 25।16।3 के अनुसार इसके हजार पुत्र थे। इसी त्रसदस्यु का पुत्र सम्भूत है, जो इस शाखा का प्रवर्तक है। त्रसदस्यु के जन्मकाल में उसका पिता पुरुकुत्स कैद में था। त्रसदस्यु भारी राजा था, उसे अर्धदेव कहा गया है। (ऋ.मं.4।42।18।9)। अनरण्य (द्वितीय) इस वंश का प्रथम राजा था, जिसे रावण ने वृद्धावस्था में मारा (विष्णु पु. 4।3।14)। इसका पुत्र त्रसदस्यु, हर्यश्व (द्वितीय), वसुमान, त्रिधन्वा, और त्रय्यारुण हैं। त्रय्यारुण मंत्रद्रष्टा है। (ऋ. 5।27 और 9।110 इसी के सूक्त हैं)। वृहद्देवता (5-14) में इसका उल्लेख है। प्रसिद्ध आथर्वण अभिचाराचार्य वृष इसका पुरोहित था (वृहद्देवता)। यह राजा वन चला गया (वायु 88।84, हरिवंश-12-110 से 123 व 3-53)। सत्यव्रत त्रिशंकु महाबल इसी त्रय्यारुण का पुत्र था। इसने विदर्भराज की भार्या का हरण किया था। इस दुराचार के कारण इसके पिता ने इसे चाण्डालों में रहने की आज्ञा दी। (वायु पु. 88।82।84) गाधिपुत्र विश्वामित्र इसी के आश्रय में दस वर्ष वन में राज्यभ्रष्ट होकर रहे)। (वायु पु. 88.86) तथा बारह वर्ष की अनावृष्टि के बाद इसी राजा का यज्ञ कराया (वायु पु. 82-85) जिसका देवताओं और वशिष्ठ ने विरोध किया। केकयवंश की सत्यरता नाम की कुमारी सत्यव्रत त्रिशंकु की स्त्री थी। उसी के गर्भ से हरिश्चन्द्र का जन्म हुआ। त्रिशंकु पुत्र हरिश्चन्द्र को ऐतरेय ब्राह्मण (7।13) और शांखायन श्रौतसूत्र (15.17) में 'वैधस' लिखा है। सायण ने वैधस का अर्थ वेधसपुत्र किया है। 'वेधा' प्रजापति को कहते हैं। यह श्रौत सूत्र भाष्यकार आनतीर्य का मत है। हरिश्चन्द्र की सौ पत्नियां थीं। (ऐतरेय ब्राह्मण 7।13 और शंखायन श्रौति)। हरिश्चन्द्र के यज्ञ में पर्वत-नारद उपस्थिते थे। (ऐतरेय ब्रा. 8।22)। इसी ब्राह्मण के कथनानुसार हरिश्चन्द्र ने राजसूय यज्ञ करके महाराज का पद पाया। हरिश्चन्द्र के इसी यज्ञ के बाद आडीवक देवासुर संग्राम हुआ, जिसमें क्षत्रियों का नाश हुआ। (हरिवंश, तीसरा भविष्य पर्व, 2।18)। हरिश्चन्द्र सप्तद्वीपेश्वर थे (महा. सभापर्व 12।15)। राजर्षि उशीनर की कन्या सत्यवती ने इन्हें स्वयंवर में वरा था (महा. वनपर्व 67।28।29)। उशीर राज्य शिविपुर में था, इसी से उसे शैव्या कहा है। शिवि औशीनर का नगर वर्तमान शेरकोट, झंग के निकट है। (श्राद्धेतिहासोपनिषद् की हस्तलिखित पाण्डुलिप, प्रथम सम्पुट मैसूर प्राच्यकोशागार)।

पुराणों तथा ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार हरिश्चन्द्र के शुनःशेप वाले यज्ञ में विश्वामित्र और जमदग्नि उपस्थित रहते हैं। यही विश्वामित्र तथा जमदग्नि राम तथा पांचाल राजा सुदास के समकालीन भी हैं। ऋग्वेद के तृतीय मंडल तथा अन्य मण्डलों से भी विश्वामित्र तथा जन्मदग्नि की मित्रता, शुनःशेप से उनका सम्बन्ध तथा सुदास के यहां उनका होना प्रकट होता है। ऋग्वेद के तृतीय मंडल में विश्वामित्र के पिता गाधि के भी मंत्र हैं। सुदास का पुरोहित होना ऋग्वेद के तीसरे मण्डल से प्रमाणित है। राम और सुदास समकालीन

हैं तो इन सब परिस्थितियों में हरिश्चन्द्र राम के पूर्व पुरुष प्रमाणित नहीं हो सकते। यदि हरिश्चन्द्र को राम का पूर्व पुरुष मान लिया जाय, तो विश्वामित्र का जीवन काल बीस पीढ़ी तक लम्बा हो जाता है। साथ ही इस शाखा की 12 पीढ़ियां एक ही शाखा में जुड़ जाने से राम की सुदास से समकालीनता नष्ट हो जायेगी, जो अकाट्य प्रमाणित है। इसलिए हरिश्चन्द्र की यह शाखा राम के पूर्व पुरुषों की नहीं, भाई-विरादरी वालों की थी।

त्रिशंकु पुत्र राजा हरिश्चन्द्र भारी विजेता और यज्ञकर्ता थे। परन्तु शुनःशेप के नरबलि-अनुष्ठान ने इनके यश को दूषित कर दिया। उसी प्रसंग में विश्वामित्र से उनका विवाद उठ खड़ा हुआ, पर विश्वामित्र इनके पिता के मित्र थे। आर्य इतिहास में यही एक शुनःशेप की कथा नरबलि का उदाहरण है। पुत्रबलि की प्रतिज्ञा करके शुनःशेप की बलि देने को उद्दत होने पर लोग इन्हें प्रतिज्ञापालक कहने लगे। कालान्तर में इनके पिता का चरित्र और इनका चरित्र मिल-जुल कर एक नया ही हरिश्चन्द्रोपाख्यान बन गया। जिसका वर्णन किसी मान्य पुराण में तो नहीं है, परन्तु देवी भागवत तथा स्कन्द पुराण में है। फिर उसका एक मोहक रूप संस्कृत के चण्डकौशिक नाटक में संगठित हुआ है। जिसके आधार पर हिन्दी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सत्य हरिश्चन्द्र नाटक लिखा। यह कथा प्रसिद्ध ही है।

सगर शाखा के सम्बन्ध में भी ऐसी ही बात है। सगर चक्रवर्ती हुआ। इसके जातकर्म आदि संस्कार और्वमुनि ने कराए (ब्रह्माण्ड पु. 3।47।78)। उन्हीं के आश्रम में इन्होंने शिक्षा पाई। जामदग्न्य राम (परशुराम) से आग्नेयास्त्र लिया (ब्रह्माण्ड पु. 3।47।87)। सगर, भार्गव परशुराम के महारौद्रास्त्र को भी काम में लेता था। (ब्रह्माण्ड 3।48।27)। उसने किशोरावस्था ही में अयोध्या का राज्य हस्तगत किया। उसकी सेना का ऐश्वर्य अपार था। उसने मध्य देश विजय किया, तब दक्षिणाभिमुख हुआ। हैहय क्षत्रियों के साथ उसने प्रचण्ड युद्ध किया, जिसमें अनेक छत्रपतियों के उसने सिर काटे। उनकी राजधानी महिष्मती को भी जलाकर छार कर दिया, तथा भागते हुए राजाओं का आग्येयास्त्र से संहार किया। फिर वह उत्तरापथ की ओर बढ़ा। उसने यवन, काम्बोज, किरात, पह्लव और पार्दों का नाश किया। इसके पूर्वज बाहु को पराजित करने में इन जातियों ने तालजंघों और हैहयों की सहायता की थी। इसी से सगर ने उनसे वैर साधा। वशिष्ठ के मध्यस्थ होने पर इन लोगों से संधि हुई। पर सगर ने इन सब को संस्कारहीन करके व्रात्य बना दिया, तथा दण्डकारण्य में निर्वासित कर दिया। अब वह विदर्भ की ओर बढ़ा। विदर्भ को पराजित कर विदर्भराज की पुत्री से विवाह किया। फिर वह पारिवहों से होता हुआ शूरसेनों की मथुरा में आया। जहां वह सत्कृत हुआ। इस प्रकार उसने सब राजाओं को करद बनाया। (ब्रह्म पु. 3।48।41 और 3।49।6)। फिर उसने मातृचरण वन्दना की। सगर की दो पत्नियां थीं, एक वैदर्भी केशिनी, दूसरी अरिष्टनेमि की पुत्री और सुपर्ण की बहिन। (वायु पु. 88।156, वाल्मीकि बाल. 35।14, वायु पु. 88।159 विष्णु पु. 4।4।1)। सगर ने फिर अश्वमेध किया। तब कपिल से उसका संघर्ष हुआ जिसमें उसके 60 हजार परिजन सेनानायक नष्ट हुए, केवल चार पुत्र जीवित बचे, (वायु 88।149) जिनसे उसका वंश चला। उसने दीर्घकाल तक राज्य किया (वाल्मीकि बा. का. 38।27)। सगर के काल में भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेशों में बसने वाले यवन भी आर्य थे। वे संस्कृत बोलते थे। सगर ने इन्हें ग्रीस (यूनान) में निर्वासित किया (देखिए, पोकोक का ग्रीस इन इन्डिया, ब्रह्माण्ड iii 48,9, 10। म. भा. ii 106, 8, 831 में सगर के अन्य विवरण भी हैं)।

काशीराज प्रतर्दन ने हैहय वीतिहोत्र को पराजित किया था। वीतिहोत्र के प्रपौत्र सुप्रतीक को सगर ने पराजित किया था। इसलिए सगर, प्रतर्दन के पौत्र अलर्क के समकालीन होने चाहिए। परन्तु रामाभिषेक के समारोह में प्रतर्दन अयोध्या में आए हैं। दूसरी बात यह है कि अलर्क को अगस्त्य की स्त्री लोपामुद्रा

ने आशीर्वाद दिया था। उधर अगस्त्य ने रावण को जीतने में राम की शस्त्रास्त्र से बहुत सहायता की थी। इन सब कारणों से अलर्क, प्रतर्दन, सगर और राम समकालीन ठहरते हैं। सगर ने हैहयों को हराकर वैदर्भ राजकुमारी से विवाह किया था। वे और्वअग्नि के आश्रम में भी रह चुके हैं। ये और्वअग्नि ऋचीक के पिता और्व के वंशधर थे। अतः वाहु और सगर, राम के पूर्ववर्ती नहीं हो सकते, कम से कम वे राम से 33 पीढ़ी पहिले नहीं हो सकते। उपरोक्त वीतिहोत्र भी सुदास के पिता दिवोदास के मित्र थे।

दक्षिण कौशल राजवंश वर्तमान रायपुर, विलासपुर और सम्भलपुर जिलों में था। उसकी राजधानी श्रीपुर वर्तमान रायपुर जिले में थी। ऋतुपर्ण इसी शाखा के राजा थे, अयोध्या के नहीं। यहीं नैषध के राजा नल रहे थे। नल की पुत्री इन्द्रसेना उत्तर पांचाल नरेश के पुत्र मुद्गल को ब्याही थी। नल विदर्भ के राजा भीमरथ के दामाद थे। नल के दामाद मुद्गल वेदर्षि थे। मुद्गल के पुत्र दिवोदास तथा कन्या अहल्या थी। दिवोदास ऋग्वेद में वर्णित प्रसिद्ध विजेता राजा हैं, और यह अहल्या शरद्वन्त गौतम को ब्याही थी, जिसे पति ने त्याग दिया था। राम ने उसका पति से संयोग कराया। दिवोदास की दशरथ ने शम्बर को जीतने में सहायता की थी। इन्हीं के चचेरे भाई पिंजवन पुत्र सुदास थे जिनका ऋग्वेद में वर्णन है। इस प्रकार ऋतुपर्ण नल के समकालीन होने के कारण दिवोदास से चार पीढ़ी ऊंचे हैं। इसलिए कल्माषपाद राम के समकालीन बैठते हैं, विश्वामित्र और वशिष्ठ के भी समकालीन हैं।

परन्तु पुराणों में सगर, हरिश्चन्द्र तथा दक्षिण कौशल राजवंश को मुख्य सूर्यवंश में मिला दिया गया है। पुराणों का अनुसरण करके पार्जिटर ने हरिश्चन्द्र को वैवस्वत मनु का 33वां वंशधर, सगर को 40वां, सगरवंशी भगीरथ को 44वां, कल्माषपाद को 52वां, तथा राम को 63वां वंशधर पुरुष माना है। इस प्रकार ये राम के सीधे पूर्व पुरुष हो गए हैं, तथा इनके समयों व राम के समय में काफी अन्तर पड़ गया है। उधर इनके अनुसार सामने से उत्तर पांचाल नरेश सुदास मनु से केवल 43वीं पीढ़ी में पड़ते हैं। परन्तु पुराणों ही के कथनानुसार सुदास के पितामह सृंजय की दो पुत्रियां राम के समकालीन सात्वत यादव के पुत्र भजमान को ब्याही थीं तथा राम के मित्र अलर्क के पितामह प्रतर्दन ने वीतिहोत्र हैहय को जीता था तथा सगर ने वीतिहोत्र के पौत्र प्रपौत्र को। विश्वामित्र हरिश्चन्द्र के पिता त्रिशंकु को यज्ञ कराते हैं, फिर स्वयं हरिश्चन्द्र के यज्ञ से शुनःशेप को बचाते हैं तथा ऋग्वेद में सुदास का यश गाते हैं और फिर राम को शस्त्र विद्या सिखाते हैं। इन सब कारणों से इन तीनों सूर्यवंशी कुटुम्बों को उत्तर कौशल की वंशावली में मिलाने से पौराणिक कथनों के तारतम्य बिगड़ते हैं। यह भूल गुप्तकाल में पुराणों का वर्तमान सम्पादन करने में हुई है। वाल्मीकि रामायण में भी राम के विवाह में जो शाखोच्चार हुआ है,[6] उसमें हरिश्चन्द्र व दक्षिण कौशलवंश तो नहीं है, पर सगर है तथा लववंशी ध्रुवसन्धि, सुदर्शन और अग्निवर्ण भी राम के पूर्वज गिनाए गए हैं। चन्द्रवंशी नहुष और ययाति भी गिना दिए गए हैं। निस्संदेह यह वंशवृक्ष व्यासों द्वारा सुरक्षित न था, इक्ष्वाकुओं में परम्परा से वन्दीजनों, भाटों में प्रचलित होगा, वहीं से ईस्वी पूर्व सातवीं शताब्दी में वाल्मीकि ने ले लिया है।

परन्तु सगर, हरिश्चन्द्र और दक्षिण कौशल शाखाएं सर्वमान्य घटनाओं से पृथक प्रमाणित हैं। प्रधान का भी यही मत है। पार्जिटर, विष्णुपुराण और हरिवंश से भी इसका समर्थन प्राप्त है।

विदेह के तीन सूर्यवंश– मैथिलशाखा, सांकाश्यशाखा और ऋतुजित् शाखाओं में, ऋतुजित शाखा के सीरध्वज-जनक, दशरथ के समधी और राम के श्वसुर हैं।[7] इसी प्रकार वैशाली को सूर्यवंश के भी पार्जीटर ने पुराणों की छान-बीन करके पुष्ट किया है।[8]

अब चन्द्रवंश पर विचार करना चाहिए। यह वंश मनुपुत्री इला के पुत्र पुरूरवस से चलता है। इसकी स्थापना पुरूरवस के पिता बुध ने अपने पिता

चन्द्र के नाम से की थी। इस वंश का प्रमुख पुरुष ययाति का छोटा पुत्र पुरु है। इसलिए इसे चन्द्रवंश, एलवंश तथा पौरववंश भी कहते हैं। पुराणों में यह वंश 'पौरव-चन्द्रवंश' प्रसिद्ध है। इस वंश में राम का सामयिक राजा विदुरथ (37) है। इस समय तक इस वंश में पुरूरबस, नहुष, ययाति; पुरु, मतिनार व सुधन्वन, धुन्ध, दुष्यंत, भरत, हस्तिन, अजमीढ़ आदि प्रतापी राजा हुए हैं।

दक्ष दौहित्र सूर्य विवस्वान् के जीवन काल में अत्रि ऋषि जीवित थे। उनका पौत्र बुध वेदर्षि (ऋग्वेद 10।101।) मनु पुत्री इला का पति था। उसका पुत्र पुरूरवस भी वेदर्षि (ऋ.10।95) था। पांचवां तारकामय संग्राम बुध के ही जन्मकाल में हुआ (मत्स्य पु. 47।43।, तथा वायु पुराण 90, 5।45।), आसीत् त्रैलोक्य विख्यातः संग्रामस्तारकामयः (हरिवंश 42-10)। इस संग्राम में प्रह्लाद पुत्र विरोचन का वध हुआ (मत्स्य पु. अ. 47; तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण 1।5।9।1)। बुध अर्थशास्त्र और हस्तिशास्त्र के प्रवर्तक थे (मत्स्य पु. 34।2)। पुरूरवस बुध-इला का पुत्र था। वह मूलस्थान इलावर्त और प्रतिष्ठान दोनों का राजा था। एवं प्रभावो राजासीदैलस्तु द्विजसत्तमाः। देशे पुण्यतमे चैव महिर्षिभिरलंकृते। राज्यं स कारयामास प्रयागे पृथिवी-पतिः। उत्तरे यामुने तीरे प्रतिष्ठाने महायशाः (वायु पु. अ. 91।49।50।)। यह सप्तद्वीप पति था (मत्स्य पु. 24-11) यह राजर्षि था, मंत्रद्रष्टा था, यज्ञाग्नियों का आविष्कर्ता, दानशील और अप्रतिम रूपवान था (मत्स्य पु. 118।61।)। उसने हिरण्यपुरवासी केसी दैत्य को पराजित कर उर्वशी का उद्धार किया था, इससे इन्द्र ने प्रसन्न होकर उर्वशी उसी को दे दी थी (मत्स्य पु. 24-22-25)। उर्वशी के साथ पुरूरवस अथवा पुरूरवा 60 वर्ष की आयु तक रहा (विष्णु पु. 4-6-48) (मत्स्य पु. 24-31) (वायु 91-5। 91-14) (हरिवंश 26-28)। इस राजा को ऋषियों ने मार डाला, क्योंकि उसने उनके सोने के बर्तन छीन लिए थे (वायु. 2।14।23।) (अर्थशास्त्र 1।6) (महाभारत आदि 70-18-20)। पुरूरवा के छै पुत्र हुए (वायु. 90।45 तथा 91-51)। मत्स्य (24।33) आठ पुत्र बताता है। आयु सबसे बड़ा था। पुरूरवा के मरने पर आयु ही को ऋषियों ने प्रतिष्ठान का राजा बनाया। आयु की स्त्री राहु की कन्या थी। (वायु 68।22) आयु के नहुष आदि पांच पुत्र हुए। (वायु. 68-24 तथा ब्रह्माण्ड 3।6।23।24।) 'यस्त्वायुनामा सराहोर्दुहितरमुपयेमे' (विष्णु 4-8-1।)। नहुष अति प्रसिद्ध हुआ। यह मन्त्रद्रष्टा था (ऋ. 9।101।7।9)। इससे पहले 4-6 मंत्रों का भी ऋषि है। नहुष की पुत्री रुचि च्यवन सुकन्या के पुत्र आप्तवान् की पत्नी थी (वायु 65।97।98)। नहुष को इन्द्रपद मिला था (महा. उद्योग. 11-1)। पीछे उसे पदच्युत कर दिया गया (महा. उ.17।15।)। महाभारत में नहुष-च्यवन संवाद है (अनु. अ 85-86)। सम्भवतः तब च्यवन युवा था और नहुष राजा था।

ययाति नहुष का पुत्र था। इसकी दो पत्नियां थीं। एक काव्य उशना शुक्राचार्य की कन्या देवयानी, दूसरी दानवराज वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा (महा. आदि 90।8)। ययाति की एक स्त्री दानवी थी, फिर भी ययाति ने देवासुर संग्राम में देवों का पक्ष लिया (महा. द्रोण. 63।7 और आदि पर्व 76।12)। ययाति का रथ जन्मेजय द्वितीय तक पौरवों के पास था। वह वृहद्रथ ने जरासन्ध को दिया। वहां से देवकी पुत्र कृष्ण को मिला (वायु पु. 93-18-27)। इससे अनुमान होता है कि कृष्णकाल ययाति से अधिक दूर नहीं है। भारत में ययाति की राजधानी प्रतिष्ठान थी। पुरु को उसने राज्य देते हुए कहा था– गंगा और यमुना के मध्य का सम्पूर्ण देश तेरा है। (महा. आदि. 82।5)। ययाति के पांच पुत्र हुए जिनमें से पुरु को उसने प्रमुख राज्य दिया, शेष चार उत्तर पश्चिम और पूर्व में राजा बने (म. आदि 82)। पुरु के नाम पर ही यह वंश पौरव कहाया। पुरुपुत्र जनमेजय (प्रथम) ने तीन अश्वमेध किए (महा. आदि 91।11)। इसका पुत्र अविद्ध प्राचिन्वान समुद्र तक प्राची में गया (महा. आ. 90।12)। मतिनार ऋचेयु का पुत्र था। इसने सरस्वती तट पर बारह वर्ष का दीर्घ सत्र किया। इसका वंश बहुत प्रसिद्ध हुआ। इसी

के वंश में भरत चक्रवर्ती, दुष्यंत, कण्व और मेधातिथि जैसे वेदर्षि हुए। इसी राजा की पुत्री गौरी चक्रवर्ती मान्धाता की माता और युवनाश्व की पत्नी थी। मतिनार के द्वितीय पुत्र अप्रतिरथ के वंश में कण्व का पुत्र मेधातिथि तथा अन्य काण्वायन ब्राह्मण हुए। मेधातिथि के सूक्त ऋग्वेद में हैं। प्रथम पुत्र तंसु के वंश में दुष्यंत और भरत हुए। इस हिसाब से कण्व दुष्यंत के कौटुम्बिक काका होते हैं (महाभारत, वायु 99।129।131 तथा विष्णु 4।19।3-7)। मतिनार का वंश वृक्ष यह है-

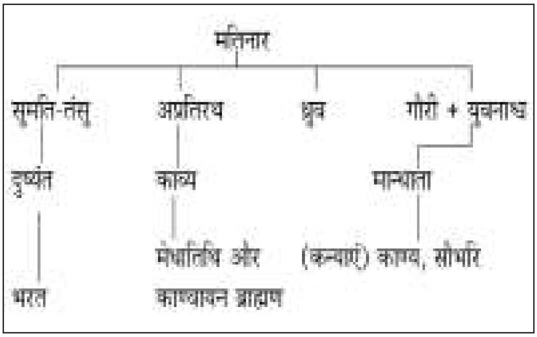

कण्व को क्षात्रोपेत ब्राह्मण कहा गया है। महाभारत (आदि पर्व 89।138) में मतिनार के चार पुत्र गिनाए हैं, परन्तु वायु और मत्स्य पुराण (99।138)

में तीन ही पुत्र कथित हैं। दुष्यंत या दुःषन्त की दो पत्नियां थीं- एक शकुन्तला, दूसरी लक्ष्मणा, महाभारत (आदि पर्व, शकुन्तलोपाख्यान, अ. 62) के अनुसार मालिनी नदी के किनारे चैत्ररथ वन में कण्व का आश्रम था। महाराज दुष्यंत चतुरन्तपृथिवी का गोप्ता था। मलेच्छ राज्य पर्यंत उसके राज्य की सीमाएं थीं (महाभारत आदि 62।3।5)। भरत बाल्यकाल ही में चक्रांकितकार था (महा. आदि 68। 4,7 और द्रोण. 38।1.7)। वह छै वर्ष की आयु में ही बहुत बलवान था। इसी से उसका नाम सर्वदमन हुआ। शकुंतला सगर्भा नहीं, पुत्र प्रसव के बाद पुत्र भरत सहित दुष्यंत की सभा में गई थी, और दुष्यंत के आनाकानी करने पर उसने कहा था— भस्त्रा माता पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः (यह श्लोकार्ध म. आदि. 69-29, वायु 99।135 तथा मत्स्य 49। 18 में है)। कौटिल्य ने पुत्र विभाग प्रकरण में किन्ही पुरातन आचार्य का मत प्रस्तुत करते हुए कहा है— 'मता भस्त्रा-यस्य रेतस्तस्यापत्यम् इत्यपरे। (अर्थशास्त्र 64)। ऐसा प्रतीत होता है कि यह किसी प्राचीनतम अर्थशास्त्र का वचन है, जो महाभारत से भी प्राचीन प्रतीत होता है। भरत सार्वभौम सम्राट था (म. आदि 69।18)। उसने गंगा यमुना और सरस्वती तट पर अनेक अश्वमेध यज्ञ किए (मत्स्य. 49। 11)। यह समितिंजय था (महाभारत द्रो. 68।8)। दीर्घतमा मामतेय ने भरत के यज्ञ कराए थे (ऐ. ब्रा. 8।22)। भरत ने शुद्ध सोने के हजार कमल कण्व को दिए (म. द्रो. 68-11)। एक यज्ञ मष्णार देश में हुआ (ऐ. ब्रा. 8।23), एक सांची गुण देश में (ऐतरेय ब्रा. 8।23)। भरत जैसा कार्य, द्रुह्य आदि पांच भाइयों के कुल में किसी ने नहीं किया (ऐ. ब्रा.शतपथ 13।5।4।12)। भरत की तीन पत्नियां थीं (महा. आदि पर्व)। इसके कुल में सुहोत्र सकल पृथ्वीपति हुआ। (म. आदि. 89।23, द्रोण 56।5)। उसके पास बहुत स्वर्ण था। कुरुजांगल में यज्ञ करके उसने बहुत स्वर्ण बांटा। (म. द्रो. प. 56।7)। सुहोत्र मंत्र द्रष्टा था (ऋ. 6।31।32)। हस्ति ने हस्तिनापुर बसाया। पुरुमीढ़ और अजमीढ़ मंत्र द्रष्टा थे। (ऋ. 4।43।44)।

इस काल की तीन महान घटनाएं हैं। हैहय पराभव, दिवोदास-सुदास विजय, तथा राम-रावण युद्ध। हैहय वंश का पतन परशुराम जामदग्न्य ने किया। जिसका अंत प्रतर्दन तथा सगर द्वारा भरद्वाज एवं अग्निऔर्व भार्गव की सहायता से हुआ। दिवोदास ने दशरथ की सहायता से तिमिध्वज शम्बर को मारा, तथा सुदास ने दाशराज्ञ युद्ध में अनार्य राजा भेद और वर्चिन को परास्त किया। पीछे पौरवों ने सुदास का पराभव किया। राम ने रावण को मारकर अंतिम अनार्य बल नष्ट किया। इस प्रकार परशुराम-प्रतर्दन-सगर-भरद्वाज और अग्निऔर्व के प्रयत्नों से दुर्धर्ष हैहय वंश का पतन हुआ तथा दशरथ दिवोदास सुदास की सत्ता से शम्बर वर्चिन व भेद आदि अनार्य नरपतियों का नाश हुआ।

राम ने रावण को मार अंतिम देव– आर्यों की प्रबल विरोधी शक्ति का नाश किया। वशिष्ठ ने म्लेच्छों की सहायता से कान्यकुब्जपति विश्वामित्र को परास्त किया। फिर विश्वामित्र ने वशिष्ठ से भयंकर बदला लेकर उसके मलेच्छ दल को तथा परिवार को नष्ट कर दिया। पीछे हैहय तालजंघ ने म्लेच्छों के सहयोग से अनेक उत्तरी भूपालों को जीता। किन्तु प्रतर्दन ने उसे समाप्त कर दिया। इस प्रकार वशिष्ठ और हैहयों द्वारा परिवर्द्धित म्लेच्छ शक्ति की वृद्धि विश्वामित्र, और्व तथा भरद्वाज के प्रयत्नों से रुकी, तथा त्रिशंकु, प्रतर्दन और सगर द्वारा नष्ट हुई। इस काल की सांस्कृतिक स्थिति ऋग्वेद तथा पुराणों में है। इन प्रमाणों का संकेत यहां हम देते हैं।

सूर्यवंश का विवरण इन पुराणों में है– ब्रह्म 7,226। आदि ब्रह्म 7, पद्म, सृष्टि खण्ड 5। विष्णु भाग 4,2। भागवत भाग 9-1, 13 (करुष, अम्बरीष, शशाद पुरुकुत्स–। निमित) देवी भागवत भाग 7, अ. 8, 9। (शशाद)- मार्कण्डेय-20- (कुवलयाश्व)- आग्नेय प्रथम 67। पद्म स्वर्ग. 25 (मान्धाता), भागवत 9।5,6, देवी भागवत 7, 9, ब्रह्माण्ड, लिंग पु.। (अम्बरीष) ब्रह्म 138। (शर्याति)- हरिश्चन्द्र का राजत्याग (स्कन्द- पुराण, ब्रह्म पु. 104) तथा ऐतरेय ब्रा. 7।3। भागवत 9वां अध्याय। (रावण)। वाल्मीकि 176। यदु वंश, विष्णु चौथा भोग 11, भागवत 9वां भाग 23, 24, (विदर्भ) लिंग 68। यदुवंश- पद्म सृष्टि 13, विष्णु चतुर्थ भाग 12। (दुष्यंत-भरत)– महाभारत आदि पर्व, भागवत नौवां भाग (भरत)।

(हैहय)– देवी भागवत छठा भाग 21। 23। (सहस्रार्जुन) विष्णु, चतुर्थ भाग 11 (सहस्रार्जुन-परशुराम) नवां भाग 15, महाभारत। चन्द्र वंश- आदि ब्रह्म 11, देवी भागवत, पहिला भाग 11, विष्णु चौथा भाग 6, नवां भाग, 14। 24। (अजमीढ़)- देवी, भागवत पहिला भाग 12। (इला सुद्युम्न) (ययाति)-- ब्रह्म 12, 146, विष्णु चौथा भाग, 10। महाभारत आदि प., लिंग 60। भागवत 9 वां भाग, 10, स्कन्द-कूर्म-ब्रह्माण्ड।

नहुषी, पद्म भूमि, 105। विष्णु चौथा भाग 10। महाभारत, देवी भागवत भाग सातवां 1, 7 स्कन्द, ब्रह्माण्ड। (मिथिला)-च्यवन पद्मभूमि विष्णु; चौथा भाग। देवी भागवत, सातवां भाग 1। 7। (वाण)– भागवत 210। (बलिबन्धन)– ब्रह्म 73 हरिवंश।

सगर- ब्रह्म 27 पद्म सृष्टि। (भगीरथ)- 15 विष्णु भा. चौथा; भागवत 9वां भाग; आग्नेय पहला भाग 68। (अहल्या)- ब्रह्म 87। आग्नेय पहिला भाग 80, रामायण। शुक्र ब्रह्म 95। (मातृवध), जयंती विवाह, ब्रह्माण्ड। (भार्गव) देवी– भागवत चौथा भाग 11-12। पुरुरवस- महाभारत, ब्रह्म, 101; 151 पद्म सृष्टि 8।12, विष्णु भाग 4।7 महाभारत। (अगस्त्य लोपामुद्रा.)–

महाभारत, ब्रह्म, 110। (वराह)- 69।70। (वातापिवध)– स्कन्ध। दुर्दम हैहय, अलर्क-प्रतर्दन-वीतिहव्य– (रामायण महाभारत)।

लोपामुद्रा का अलर्क को आशीर्वाद- हरिवंश। (प्रतर्दन-दिवोदास)- ब्रह्म 112। आपस्तम्ब, ब्रह्म 130। (पांचाल)- महाभारत, हरिवंश, आग्नेय 163। (मुद्‌गल)- ब्रह्म 136। (अजीगर्त)- 150-152 (वराह नृसिंह-वामन) -ब्रह्म 213। (हिरण्यकशिपु)- मत्स्य 259, कूर्म 264, वराह 267, वामन (परशुराम) 268। (नृसिंह)- लिंग 96, स्कन्द, भागवत सातवां 9। (ध्रुव-विष्णु) 11, भागवत 4था भाग 8।

(वेनपृथु)- पद्म सृष्टि, 8, पद्मभूमि 68।29।36। विष्णु 13, ब्रह्म 141। वराह, पद्म सृष्टि, 73। भागवत तीसरा खण्ड 13, स्कन्द 10 खण्ड 15, 20। स्कन्द 4। (प्रह्लाद)- विष्णु 17-21- (वंश)- शिवज्ञान संहिता 59, देवी भागवत 4, 9। (तुर्वशु)- विष्णु चौ. भाग 15। (द्रुह्यु)- विष्णु 4, 17- (अनु)- विष्णु, 4, 18। (जह्नु)- विष्णु 4।20 (युधाजित्) - देवी भागवत। (वैशाली का मनु वंश)- मार्कण्डेय 112।

2. पृथु

पृथु पृथ्वी का पहिला राजा था। इसका पूरा नाम पृथुरश्मि था, पर प्राचीन प्रथा के अनुसार इसके पिता वेन के नाम पर इसे पृथु वैन्य कहा गया। ये

तीन भाई थे- रायोवाज, पृथुरश्मि- और वृहद्‌गिरि। तीनों पुत्रों को वेन द्वारा उनकी कामना पूछी गई। पृथुरश्मि ने कहा—'क्षेत्र काम हूं।' अतः उसके लिए क्षेत्र दिया गया।[9] यह पुरुष सतयुग के उत्तर चरण में मनुर्भरतों के वंश की उत्तानपाद शाखा में चाक्षुष मनु के बाद पांचवां प्रजापति था। यह वेन का पुत्र और अंग का पौत्र था। अंग की स्त्री सुनीथा (वेन की माता) ईरान नरेश मृत्यु की पुत्री थी[10]। वेन, मातामह के दोष से अतिचारी हो गया।[11] प्रजापति होते ही वेन ने धर्मापेत शासन की स्थापना की। उसने प्रजातंत्रीय अधिकारों की अवहेलना करके अनियंत्रित स्वेच्छाचार का शासन प्रचलित किया। और स्वयं के पूजन की आज्ञा प्रचलित की।

अहमिन्द्रश्च पूज्यश्च सर्वयज्ञेद्विजातिभिः।
मयि यज्ञो विधातव्यो मयि होतव्यमित्यपि।।
स्त्रष्टा धर्मस्य कश्चान्यः श्रोतव्यं कस्य वैमया।
वीर्यश्रुत तपः सत्यैर्मया वा कः समो भुवि।
प्रभवः सर्वलोकानां धर्माणां च विशेषतः।
इच्छ्न् दहेयं पृथिवीं प्लावयेयं जलेन वा।।
सृजेयं वा ग्रसेयं वा नात्र कार्या विचारणा। (वायु पुराण)
एते चान्ये च ये देवाः शापानुग्रहकारिणः।
नृपस्यैते शरीरस्याः सर्वेदेवमयो नृपः।।
एतत् ज्ञात्वा मयाऽज्ञप्तं यथावत् क्रियतां तथा।
ममाज्ञापालनं धर्मो भवतां च तथा द्विजः।। (विष्णु पु.)

ऐसा प्रतीत होता है कि प्रजा ने वेन को राजा बनाया। राजा होने पर उसने अपने को सर्वोपरि स्वेच्छाचारी घोषित कर दिया, परन्तु जनता ने इसका विरोध किया और एक संघर्ष के बाद उसे पदच्युत करके उसके पुत्र पृथु को राजा बनाया। यही पृथु आदिराज माना गया।[12] पृथु ने प्रजापति की प्राचीन परम्परा को मनुर्भरतों के वंश में बन्द कर दिया। राज्यशासन पद्धति (राजतंत्र) की स्थापना की। प्रजापति युग की कबिलाई पद्धति में उत्पन्न अव्यवस्था दूर कर राजसत्ता की दृढ़ नीति स्थापित की। प्रजापति, कुल या गोत्र का नेता या मुखिया होता था। भिन्न-भिन्न कुल गोत्रों के अनेक प्रजापति थे। परन्तु राजा की शक्ति राजनैतिक थी। वह किसी कुल या गोत्र का प्रतिनिधि नहीं, राष्ट्र का नेता था। उसका काम प्रजा का रक्षण और सम्वर्धन था। महाभारत में राजा का कार्य 'भौम ब्रह्म का भरण' बताया है। प्रजापति पद्धति के काल में जाति और वर्गों की रूढ़ियों ने शासन को जकड़ रखा था। उसकी स्थिति वर्तमान सरहदी कबीलों के समान थी। ये कबीले सम्भवतः उसी प्राचीन परम्परा पर चल रहे हैं। पृथु ने राजा होकर 'वसुधाधिप' की उपाधि पाई। उसका राज्याभिषेक बड़ी तड़क-भड़क से ऋषियों ने किया।[13] उसने प्रजारंजन किया, इसलिए राजा कहाया।[14] उससे 'भौम ब्रह्म' पालन की प्रतिज्ञा कराई गई।[15] पृथु से पहले विसर्गों की बड़ी अव्यवस्था थी। पृथु ने इस दुर्व्यवस्था का अंत करके संगठित राज्य की स्थापना की।

देशानां क्षेत्रपालानां मर्यादा नैव दृष्यते।
यत्रचित् भूमौ गिरौ वापि नदी तीरेषु वै तदा।।
कुंजेषु सर्वतीर्थेषु सागरस्य तटेषु च।
निवासं चक्रिरे प्रजास्तासां क्रच्छेण महताहारः स्यात् ।। (पद्म पु.)
प्रविभागो न राष्ट्राणां पुराणां चाभवत्तदा।
प्रविभागो पुराणां वा ग्रामाणां वापि विद्यते।।
न सस्यानि न गोरक्षा न कृषिर्नवणिक्पथः।
समत्वं यत्र यत्रासीत् भूपस्तस्मिन् तदेवहि।।
तत्र प्रजास्तावै... निवसन्तिस्म सर्वदा।
न्यवसन्तत यथा कामं वृक्षेषु च गृहासु च।।
तासामाहार संजातः फलं पुष्पं तथा मधु। (महाभारत शान्तिपर्व)
आहारं फलमूलंतु प्रजानामभवत्किल।
अकृष्टपच्या पृथ्वी सिद्धन्त्यन्नानि चिन्तया। (वायु पु.)

उसने पुर बसाए, पर्वत श्रेणियों के द्वारा तथा और पत्थर लगवा कर भू-क्षेत्र की सीमाएं निर्धारित कीं, सड़कें निकलवाई तथा लोक में सम्पनन्ता स्थापित की। पृथ्वी पर घी, दूध की नदियां बह निकलीं। उसने राजा होकर राष्ट्रहित किया, इससे वह 'राष्ट्र-रूप' हो गया।

'सर्वाः कामदुहो गावः पुटके पुटके मधुः।'

(ब्रह्माण्ड पुराण)

'वैन्यं महाभागं प्रजाः समभिदुद्रुवुः।'

'त्वं नो वृत्तिं विधिस्त्वेति।।' (पद्म पुराण)

'पृथुर्वैन्यः अभ्यषिच्यत। स राष्ट्रं ना भवत्। स एतानि पार्थान्यपश्यत। तान्यजुहोत्, तैर्वैराष्ट्रम भवत्। यत् पार्थानि जुहोति। राष्ट्रमेव भवति।' (तैत्तरीय ब्राह्मण)

अब तक केवल शूल खड्ग आदि धारदार और नोकदार शस्त्र ही लोगों के पास थे। पृथु ने धनुष का आविष्कार किया, जो दूर के शत्रु को बींधने वाला पहिला अस्त्र था।[16] उसने पृथ्वी को सम किया, जोतने बोने की विधि चलाई। कृषि-युग आरम्भ किया। उसने कहा, 'मेरे स्थिर होने पर अन्य सब प्राणी स्थिर होंगे'।

मन्वन्तरेष्वतीतेषु विषमासी द्वसुन्धरा।

विषमप्वं गता भूमिः पन्था नासीच्च कुत्रचित् (पद्म पुराण) 'स्थिरत्वं यान्ति ते सर्वे स्थिरीभूता यदाअहम् (पद्म पुराण) समां च कुरु सर्वत्र माम्

यथात्र विस्यंदमानं च क्षीरं सर्वत्र भावयेत्। (पद्म)

'धात्री विधातु च धारिणी च प्रतिष्ठा योनिरेव च।' (पद्म पुराण)

पृथु ने धरती को समतल कर राज-पथ बनाए, कृषि उद्योग और व्यवसाय आरम्भ किए, पृथ्वी दूहा गया। और आधुनिक अर्थशास्त्र का बीज वपन हुआ। इसी से उसकी स्तुति में ऋचा बनाई गई।[17]

3. प्रलय

जल-प्रलय से संबंधित प्रसंग पुराणों में हैं। इस जल प्रलय में ईरान की सारी सृष्टि नष्ट हो गई। इस जल विप्लव (Deluge) के कारण यह मृत्युलोक बन गया। वहां के ज्वालामुखी धधक उठे। समुद्रों ने थल को जलमग्न कर दिया। बाद में सूर्य भ्राता वरुण और उनके भतीजे सूर्य-पुत्र यम ने वहां फिर से बस्ती बसाई। यम का क्षेत्र मृत्यु-लोक और वरुण का वैकुण्ठ पास-पास थे। वैकुण्ठ अधिक उन्नत तथा मनोरम था। प्रलय के पश्चात् तीन साम्राज्य इजिप्ट (मिश्र), चीन व असीरिया स्थापित हुए।[18]

संदर्भ

1. वाल्मीकि, बालकाण्ड, सर्ग 70, श्लोक 36।
2. प्रियव्रत, अग्नीन्ध्र, नाभि, ऋषभ, भरत, सुमति, इन्द्रद्युम्न, परमेष्ठि, (10) प्रतिहार, प्रतिहर्त्ता, भुव, उद्ग्रीम्य, प्रस्तार (15) पृथु, नक्त, गय, नर, विराट (20), महावीर्य्य, धीमान्, महान्, मनुस्थ, त्वष्टा (25) विरज; रज (27) विषग्ज्योति, प्रमुख प्रजापति हुए।
3. चारों मन्वन्तरों के प्रवर्तक चार मनुओं के नाम भी इसी वंश में जोड़े जायेंगे। मनु स्वायंभुव सहित इस कुल में पांच मनु हुए।
4. चाक्षुष मनु (36), उरु, अंग, वेन, पृथु, अन्तर्धान, हविर्धान, प्राचीन, वर्हिष, शुल्क (44), प्रचेतस (44), दक्ष (45)।
5. वैग्य प्रथम वेदर्षि था। (महाभारत शान्ति पर्व, 28, 137, 142, 58, 121, 122)।
6. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड-अ.70।
7. देखिए शतपथ ब्रा; वायु. 89, 1, 2, 6। ब्रह्माण्ड 3, 4, 1, 6। भागवत ix 13, 21।
8. वैशाली वर्णन (वायुपुराण 86,15,17।), (विष्णु पु. iv 1, 18।) (रामायण i 47, 12), (भागवत ix 2, 33।), (ब्रह्माण्ड iii 6, 1, 12।), वायु. पु. 89।1।2।6।), (ब्रह्माण्ड iii 6।4।1।6), (भागवत ix 13, 21)
9. अथाब्रवीत् पृथुरश्मिः क्षेत्रकामोऽहमस्मीति। तस्मै क्षेत्रं प्रायच्छत्। स एव पृथुवैन्यः। (जैमिनीय ब्राह्मण 1।186)।
10. विष्णुपुराण-स्वायंभुव की कथा पढ़िए। अथवा महाभारत 58। 96।136 शान्तिपर्व।
11. पद्मपुराण-वेनकथा।
12. 'आदि राजो महाराजः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान' (वायु पु. अ. 62, श्लोक 133)।
13. वायु पुराण।
14. पित्राऽपरिञ्जतास्तस्य प्रजास्तेनातुरञ्जिताः।
ततोराजेतिनामास्य अनुरागदजायत।। (वायु. अ. 62, श्लोक 134)।
15. प्रतिज्ञा चाधिरोहस्व मनसा कर्मणा गिरा।
पालयिष्याम्यहं भौम ब्रह्म इत्येवचासकृत्।। (महाभारत-शान्तिपर्व)
16. अग्युः' प्रहराणां खड्गो भाद्रवती सुतः।
पृथुस्तूपपादयामास धनुराद्यमरिन्दमः।। (महा. शान्ति)
17. इमा ब्रह्मेंद्र तुभ्यं शंसि दा नृभ्यो नृणां शूर शव।
तेभिर्भव सक्रतुर्येषु चाकन्नुत त्रायस्व गृणात उत स्तीन।
(ऋक, मं. 10। अनु 11। सू. 148 मंत्र 4)
18. The Egyptian, Chinese and Assyrian monarchies are generally stated to have been established about 150 years after the great event of the flood.
Egyptioans under 'Misrain' 2188 B. C., Assyrian in 2059 B. C., and Chinese in 2207 B. C. - (Todd Rajasthan).

■

अविवेक के सम्मुख विवेक नहीं चलता। जहाँ अविवेक है वहाँ विवेक सावधान रहता है।।

– सोमनाथ (आचार्य चतुरसेन)

सातवां प्रकरण

1. बेबीलोनियां

बेबीलोनिया का देवता 'मतु' या 'मर्तु' है,[1] जो संभवतः मरुत्त का बिगड़ा रूप है। जो पणिक या चोल द्वारा वहां पहुंचा है। संभव है कि इसी काल में यह जाति वहां तक पहुंची हो। ई. पू. चौथी या पांचवीं सहस्राब्दि में मेसोपोटामिया की आग्नेय दिशा में आकर बसने वाली यह जाति इतिहास में 'सुमेरियन' कहाती है। इनका आर्यों से बहुत साम्य था। इन लोगों ने पहले युक्रेतस और तैग्रिस नदियों के मुहानों के पास बस्तियां बसाईं, जो धीरे-धीरे उत्तर की ओर बढ़ने लगीं।[2] इन्हें सेमेटिक लोगों ने जय करके इनकी सभ्यता अपना ली। इन्होंने पहिले उत्तर का प्रदेश जीता, जिसे अक्काद (Akkad) या अगाद (Agaed) कहते हैं। दक्षिण का प्रदेश जो सुरेमियों के ताबे रहा– 'सुमेर' कहाता था। दोनों का संयुक्त नाम बेबीलोनिया प्रसिद्ध हुआ। ई. पू. अठारहवीं शताब्दी में बेबीलोनिया पर कस्सी (Kassi) या 'केसी[3]' लोगों की चढ़ाई होने लगी। ई. पू. 1760 में गंदश (Gandash) नामक 'केसी' केशी राजा ने सार्वभौम राज्य स्थापित किया, जिसका केंद्र एल (इलावर्त Elam) प्रदेश था, जो बेबीलोनिया और फारस के बीच था। केसी प्रसिद्ध घुड़सवार थे, इसी से वे जीते थे। बेबीलोनियन घोड़ों से परिचित न थे। बेबीलोनिया जय करके इन्होंने बेबीलोनियन संस्कृति अपना ली। केसी और देवों की भाषा तथा संस्कृति में बहुत समानता थी, क्योंकि दोनों पड़ोसी थे। ऋग्वेद में इन्द्र के घोड़े का नाम 'केशी' लिखा है।[4] एल या 'एलम' के पश्चिम में मितन्नु या मितन्नि तथा दक्षिण के उर (Ur) और उम्मा (Umma) आदि बेबीलोनियनों से देवों की मित्रता थी।[5] मितन्नु या मित नाम ऋग्वेद में चार स्थानों पर आया है। सायण ने उसका अर्थ किया है– मितजानुक या संकुचित जानुक। पर वास्तव में यह एलम के वायव्य कोण में रहनेवाले मितन्नि लोग हैं, जो संभवतः आदित्यवंशी देव थे।[6]

बेबीलोनियन लोगों की एक देवी तिअमात् (Tiamat) है। यह एक राक्षसी है। 'तिअमात्--तैमात' का उल्लेख अथर्व में है।[7] तिअमात् राक्षसी का पति अप्सु था। ऋग्वेद में 'अप्सुजित' नाम अनेक स्थानों में है।[8] 'यह्व' ऋग्वेद का एक देवता है। इसका सम्बन्ध सुमेरियन 'एअ' या 'य' (Ea) शब्द से होगा। 'य' (Ea) प्राचीनतम सुमेरियन देवता है। इसका नाम ऋग्वेद में अग्नि के साथ अनेक स्थानों में आया है।[9] उर्वशी शब्द उरु-अस में 'ई' प्रत्यय लगाने से बनता है। सुमेरियन भाषा में अस का अर्थ मनुष्य होता है। इसलिए उर्वशी का अर्थ उर नगर की स्त्री होता है। ऐसी एक स्त्री का पुरूरवस के साथ सम्पर्क हुआ। पुरुरवस ने उसे केसी दैत्यों से छीना। फिर देवों ने केसियों को परास्त किया तब उसे पुरुरवस को दे दिया, पर पुरुरवस का सहवास उसे प्रिय न रहा-वह उसे छोड़कर चली गई। उस काल में स्त्रियां पुरुषों से अनुबंधित न रहती थीं, स्वाधीन होती थीं। पुरुरवस और उर्वशी का इस संबंध में संवाद ऋग्वेद में है।[10] इस संवाद से उर की स्त्रियों और एलाम के पुरुषों के विचारों पर प्रकाश पड़ता है। बेबीलोनियन देवता 'अंशन' (Anshan) का उल्लेख ऋग्वेद में 'अंश' नाम से है।[11] सायण ने 'अंश' का अर्थ-

-एतन्नामको देवोऽसि किया है। बेबीलोनियन 'एतन' (Atana) का सम्बन्ध ऋग्वेद के 'एतश' से है।[12] परन्तु बेबीलोनिया के मुख्य देवता इश्तर (Ishtar) और तंबूज (Tammuz) या दमुत्सि (Damuzi) थे। जिनका उल्लेख ऋग्वेद में 'उषः' व 'दमून' नाम से है।

'पुनः पुनर्जायमाना पुराणी' (ऋ. 1।12।10)

'उषायाति स्वसरस्य पत्नी' (ऋ. 3।61।4)

'यांत्वा जज्ञुर्वषभस्यारवेण' (ऋ.7।79।4)

'अपश्चिदेव बिम्बोदमूनाः -
प्रसध्रीचीरसृजद्विश्वश्चन्द्राः' (ऋ. 3।31।16)

'नित्यश्चा कन्यात्स्वपतिर्दमूना यस्य उ देवः सविता जजान' (ऋग्वेद 10।31।4)

वैदिक उषा की कथा से इश्तर की कथा का पूरा मिलान होता है। ऋग्वेद में इन्द्र को 'मेष' संज्ञा दी गई है। सायण ने 'मेष' का अर्थ किया है—'शत्रुभिः स्पर्धमानं'। पर वास्तव में यह सुमेरियन देवता 'मेष' (Mes) है। इसी प्रकार 'अल्लतु' का वैदिक रूपान्तर 'अराति' है।

2. भृगुवंश और दैत्यगुरु शुक्राचार्य

दैत्यगुरु शुक्राचार्य थे, जिनका नाम काव्य-उशना भी था।[13] शुक्र का मूल स्थान एशिया माइनर में Gordium (गुरुद्वारम्) है।[14]

इस वंश के मूल पुरुष 'भृगु' वरुण-ब्रह्मा के पुत्र अथवा परिजन थे। पुराणों में इन्हें उनका 'मानस-पुत्र' अर्थात् माना हुआ पुत्र कहा गया है। एशिया माइनर के टेबुललैण्ड (Tableland), जो बहुत ऊंचाई पर है, को 'भृगु' (Brygy) कहते हैं। यही भृगु-स्थान था।[15] यदि एशिया के मानचित्र पर ध्यान दिया जाय तो आप देखेंगे कि देवप्रदेश = स्वर्गलोक भारत के उत्तर-पूर्व में हिमालय में था, और दैत्य-प्रदेश उत्तर-पश्चिम में। यह उत्तर-पश्चिम का भाग ही इलावर्त कहलाता था। आधुनिक दृष्टि से गिलगित के समीप का देश तथा एशिया के रूस का दक्षिण-पश्चिम भाग और ईरान का पूर्वी भाग इलावर्त के अंग थे। इन देशों में दक्ष पुत्रियाँ और कश्यप-पत्नियाँ दिति और दनु की सन्तानें बस रही थीं। देवलोक में कश्यप अदिति के पुत्र आदित्य या देव थे। इसी इलावर्त के बंटवारे के लिए देव व दैत्य-दानवों में बारह दारुण देवासुर संग्राम हुए। भृगुवंशी काव्य और त्रिशरा दैत्यों और दानवों के गुरु और याजक थे। ये मंत्रद्रष्टा थे, और इनकी शक्ति राजाओं के समान थी।

भृगु की एक पत्नी दैत्यपति हिरण्यकशिपु की पुत्री दिव्या थी, तथा दूसरी पुलोमा दानव की पुत्री पौलोमी थी। दिव्या को विष्णु ने किसी कारणवश मरवा डाला था, इस पर क्रुद्ध होकर भृगु ने विष्णु को लात मारी थी। संभव है हिरण्यकशिपु का विष्णु से विग्रह का यह भी कारण रहा हो।

भृगु-पुत्र उशना या काव्य या शुक्र दैत्य-दानव याजक थे।[16] ये बड़े नीति निपुण थे। इन्हीं के बुद्धिबल से दैत्य दानवों के राज्य निरन्तर वृद्धिगत होते रहे तथा दैत्यों की विजय होती रही। इन्होंने ओशनस अर्थशास्त्र रचा, जो संसार का सर्वप्रथम राजनीति का ग्रन्थ था। इस अर्थशास्त्र का उल्लेख मौर्य महामंत्री चाणक्य कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र[17] में किया है। इसके अतिरिक्त द्रोण, भारद्वाज कौणपन्त आदि अर्थशास्त्रों का भी मूल आधार यह औशनस अर्थशास्त्र है। व्यास ने भी महाभारत में ओशनस शास्त्र को उद्धृत किया है। उशना के धर्मशास्त्र और धनुर्वेद के लम्बे-लम्बे वचन अब भी यत्रतत्र उद्धृत रूप में मिलते हैं। इस अर्थशास्त्र ने देवासुर संग्रामों में दैत्यों की बड़ी सहायता की थी।

पुलोमा दानव ने अपनी-एक पुत्री शुक्र-पिता भृगु को दी थी, वह शुक्र की विमाता थी। पुलोमा की दूसरी पुत्री पौलोमी शची देवराट् इन्द्र को व्याही थी, और इन्द्र की पुत्री जयंती का ब्याह शुक्र से हुआ था। इस प्रकार जयंती शुक्र की मौसी की बेटी थी। परन्तु यह विवाह कायम नहीं रहा। इन्द्र ने उशना-काव्य शुक्र को अपनी कन्या जयंती देकर अपनी ओर करना चाहा था,[18] परन्तु उसकी यह अभिसंधि नहीं चली। शुक्र ने दैत्यों-दानवों का पौरोहित्य नहीं छोड़ा। अतः इन्द्र ने भी अपनी पुत्री वापस अधिकृत करके उसका पुनर्विवाह ऋषभ से कर दिया। देवासुर संग्राम चलते रहे और अंत में विष्णु ने ब्रह्मा की सभा में सब देव-दैत्यों के सम्मुख वचन दिया कि अब दैत्यों का रक्त पृथ्वी पर नहीं गिरेगा।[19] परन्तु देवों-दैत्यों की खटपट चलती ही रही। अंत में विष्णु के षड्यंत्र से इन्द्र और वामन ने प्रह्लाद के पौत्र दैत्यराज बलि को यज्ञविधि में फंसा कर उसका सारा राज्य हरण कर लिया तथा उसे बन्दी कर नागों के लोक में भेज

दिया। शुक्र ने बहुत विरोध किया था, परन्तु बलि ने उनकी बात नहीं मानी। अतः वे वहां से असंतुष्ट होकर अरब देश में चले आए,[20] जहां उनके पौत्र 'ऊर्व', रहते थे, उधर दैत्यों के गुरु वृहस्पति बन गए। 'ऊर्व' ही के नाम पर उस देश का नाम अरब पड़ा। यहां शुक्र दस वर्ष रह कर फिर दैत्यलोक लौट आये थे।

यहां हम इनका वंश वृक्ष वायु पुराण (65/90/9/,65/72/94, 70/26) के अनुसार देते हैं जो इस प्रकार है–

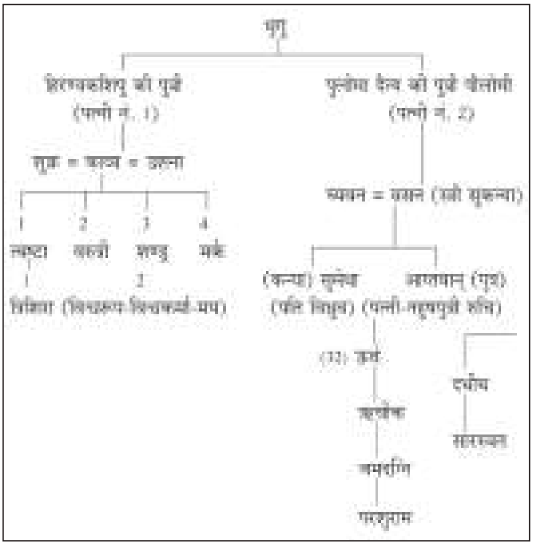

3. मनुर्भरत वंश/सतयुग

स्वायंभुव मनु प्रथम मनु है। इनका जीवनकाल प्रथम मन्वन्तर है। इनके वंश की दो शाखाएं चलीं। एक प्रियव्रत शाखा, जिसमें 35 प्रजापति और स्वायंभुव सहित पांच मनु हुए।[21] दूसरी उत्तानपाद शाखा, जिसमें चाक्षुष मनु तथा प्रजापति और राजा हुए।[22] मनुर्भरतों की पैंतालीस पीढ़ियों का भोग काल लगभग तेरह सौ वर्षों का है, जिसे 'सतयुग' कहते हैं। 'सतयुग' में बड़ी-बड़ी राजनैतिक और सांस्कृतिक घटनाएं हुईं। इसी काल में ईरान, मिस्त्र, पैलास्टाइन, बैबिलोनिया और अफ्रीका को छै भरत विजेताओं ने विजय कर अपने महाराज्य वहां स्थापित किए। राजा की प्रतिष्ठा हुई। कृषि का उदय हुआ। राज्य-व्यवस्था बनी। नगर जनपद बसे, वेदोदय हुआ। युद्ध व्यवस्थित हुए। इसी काल में प्रलय हुआ, वैकुण्ठ का निर्माण हुआ।[23] इनका वंशवृक्ष इस प्रकार है–

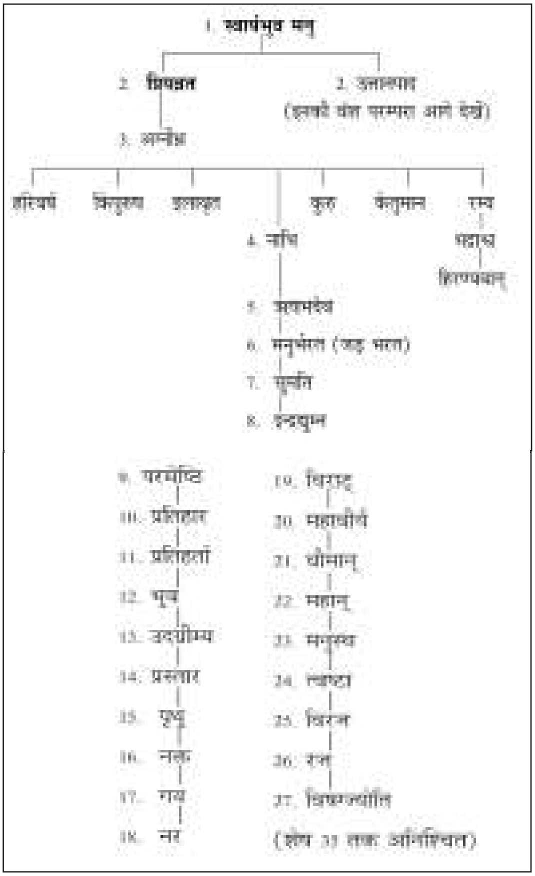

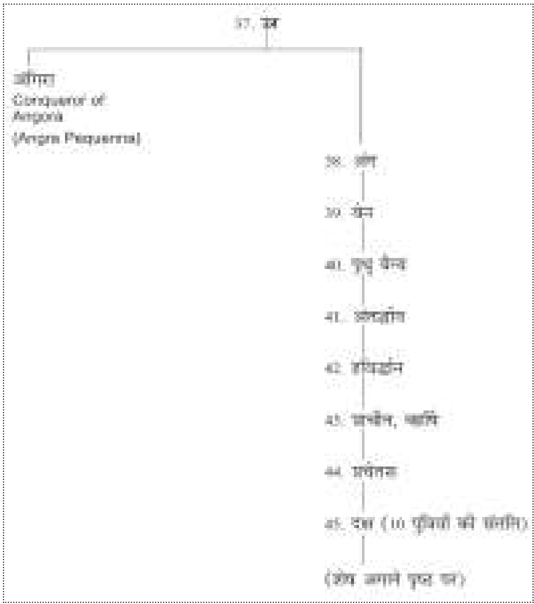

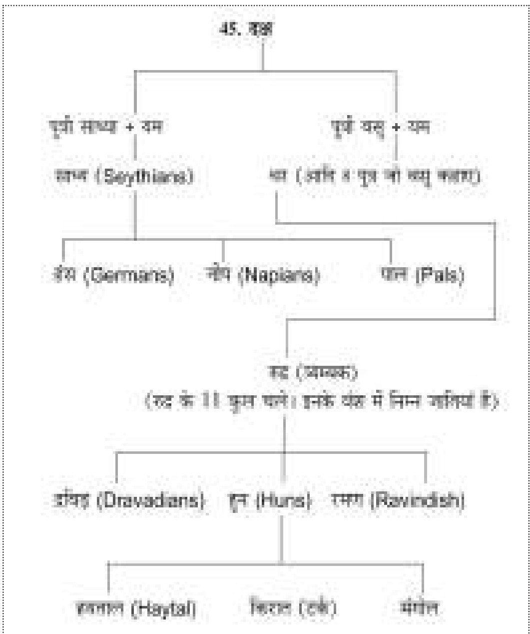

पुराणों में स्वायंभुव मनु की पत्नी का नाम 'शतरूपा' कहा है।[24] प्रियव्रत ने पृथ्वी के भाग किए[25] और देशों के नाम रखे। पहले पर्शिया के चार खंड- सुग्द (sugd), मरु (मर्व), हरिपुर, व निशा थे। कुछ काल बाद हरपू, हरितपुर, हिरात और वक्रित (काबुल) को भी मिलाकर साम्राज्य संगठित किया गया[26] जो पूर्वी साम्राज्य और पश्चिमी साम्राज्य के नाम से विख्यात हुआ। दारा ने इन दोनों प्रांतों को तेरह क्षेत्रों में विभक्त किया, जिन्हें शत्रिपीज (Satripies) कहते हैं। शत्रिपीज का 'शत्रप, क्षत्रप या क्षत्रपति का भ्रष्ट रूप माना जा सकता है। परन्तु शतरूपा के पुत्र 'शात्रप' भी माना जा सकता है। उस काल में मातृगोत्र तो प्रचलित था ही। प्रियव्रत ने जम्बू द्वीप अपने पुत्र अग्नीन्ध्र को दिया था, जिसने उसके नौ खण्ड करके अपने पुत्रों में बांट दिया। मध्यभाग (नाभि) अपने बड़े पुत्र नाभि को दिया। नाभि के पुत्र ऋषभदेव तीर्थंकर और इनके पुत्र जड़ भरत या मनुर्भरत महाज्ञानी हुए जिनके नाम पर देश का नाम भारत पड़ा। लोग भ्रम से दुष्यंत पुत्र भरत के नाम पर भारत नाम हुआ समझते हैं। दुष्यंत पुत्र भरत की संतान 'भारत' अवश्य कहलाई, पर भरत खण्ड नाम 'मनुर्भरत' के नाम से ही पड़ा।

पुरुवंशे प्रवक्ष्यामि शृणुध्वमुषिसत्तमाः।
यत्र ते भारता जाता भारतान्वयवर्द्धनाः।
भारताद्भारती कीर्तिर्येनेदं भारतं कुलम्।
अपि ये चैव पूर्वे वै भारतो इति विश्रुताः।
(मतस्य पु. अ. 24, श्लोक 72)

प्रियव्रतो नाम सुतो मनोः स्वयम्भुवस्य ह।
तस्याग्नीन्ध्रस्ततो नाभिऋषभस्तत्सुतस्ततः।
अवतीर्ण पुत्रशतं तस्यासीद् ब्रह्मपारगम्।
तेषां वै भरतो ज्येष्ठो नारायणपरायणः।
विख्यातं वर्षमेतद्यन्नाम्ना भारतमुत्तमम्।
(भागवत पु. अ. 131)

मनुर्भरतो में महाराज जानन्तपति अत्यराति की गणना, बारह प्राचीन चक्रवर्तियों में सर्वोपरि है। इन्हें आसमुद्र क्षितीश कहा है।[27] महाराज अत्यराति की राज्य सीमा पश्चिम में Adrianple (आर्द्रपुर) व आर्द्रसागर (Adriatic Sea) एवं युवन सागर (Ianion Sea) तक थी। वर्तमान भारत को छूता हुआ जो पर्शिया का पूर्वी प्रांत सत्यगिदी के नाम से विख्यात है,[28] उस समय 'सत्यलोक' कहाता था। उसी के सामने सुमेरु के निकट वैकुण्ठधाम था, जो देमावन्द एलवुर्ज पर आजकल ईरानियन पैराडाइज के नाम से प्रसिद्ध है।[29] यह वैकुण्ठ ही महाराज अत्यराति की राजधानी थी। अत्यराति के वंशज 'अर्राट' कहाते

हैं। आरमीनिया इनका प्रांत है, और ईरान का अरॉट पर्वत भी अत्यराति के नाम पर है।

चक्रवर्ती महाराज अत्यराति जानुन्तपति के भाई मन्यु-अभिमन्यु Memnon-Mainyu (ग्रीक में) थे। यह नाम एक ही व्यक्ति का है। इन्हीं ने अर्जनम (Arzanem) में 'Aphumon' दुर्ग का निर्माण कराया और ट्राय (Tray) के प्रसिद्ध युद्ध में अपनी राजधानी सुषा से ससैन्य आकर सम्मिलित हुए। इन्हीं के वीरत्व की प्रशंसा 'ओडेसी' काव्य में है[30]। इन्हीं की राजधानी मन्युपुरी सुषा कहाई।[31]

इन अभिमन्यु या मन्यु के भतीजे महाराज उर के पुत्र अंगिरा कुशद्वीप (अफ्रीका) के विजेता और 'अंगिरा पिक्यूना' (Angra-Pequenna) के निर्माता अंगोरा विजेता थे।[32] इन छहों विजेताओं के वर्णन ईरान के प्राचीन इतिहास में बहुतायत से मिलते हैं, इन्हें Six Immortal Holy ones कहा गया है।[33] इन्हीं को Satanic Host, "Satan' पाश्चात्य प्राचीन इतिहास तथा बाइबिल में कहा गया है। अवेस्ता में वर्णित अहिरमन भी यही हैं।[34] इनके सर्वग्राही आक्रमण असह्य हो गए थे। ईरानी इतिहासकार इन्हें विदेशी आक्रमणकारी कहते हैं, पर यह नहीं जानते कि वे कौन थे, न उनके वंश का उन्हें पता है। परन्तु हमारे पुराण उन्हें प्रमाणित करते हैं कि ये महान विजेता मनुर्भरत थे।

ईरान के ये छै अमर उपास्यदेव महाविक्रम अयुद्धय महाराज अत्यराति, अभिमन्यु, उर, पुर व तपोरत पांच भाई और छठे अंगिरा थे। उनके सर्वग्राही भयानक आक्रमण से दलित हो ईरानी उन्हें अहितदेव दुखदायी अहिरमन या शैतान कहने लगे।[35] (H.P. vol. I. 113.)

मिल्टन के प्रसिद्ध ग्रंथ Paradise Lost की स्वर्गनाश की कथा में जिस शैतान का उल्लेख है वह तथा बाइबिल में वर्णित शैतान और अवेस्ता के अहिरमन वास्तव में ये ही छै मनुर्भरत थे, यह आप भली-भांति समझ सकते हैं। मनुर्भरतों द्वारा ईरान, एशिया माइनर, ग्रीस व सीरिया विजय के ये अखण्डनीय प्रमाण हैं, जिनसे यह भी प्रकट होता है कि वे किस प्रकार इन देशों में राजनीतिक उपासना के मध्यबिन्दु बने। ये समागत थे।[36]

अत्यराति के भाई 'उर' ईलाम के महाराज थे। यहीं से उन्होंने अफ्रीका, सीरिया, बैबिलोनिया आदि देशों को जीता था, तथा अब्राहीम को उर देश से निकाल बाहर किया था।[37]

पर्शिया में उर के अनेक चिह्न हैं। यथा 'उर' बैबिलोनिया का एक प्रदेश है, 'उरल' (Ural) पर्वत है, 'उरराट' वंश है, 'उरफा' और 'उरगंज' नगर हैं, 'उरुक' प्रांत है, उरमिया प्रदेश और नगर हैं जहां जोरास्टर का जन्म हुआ। अफ्रीका में Rio de oro प्रांत है। ये प्रत्यागत थे।[38]

लन्दन के अजायबघर (संग्रहालय) में कुछ वस्तुएं उर से प्राप्त हुई रखी हैं। जिहोवा की आज्ञा से इस नगर को छोड़ कर अब्राहिम दूसरा नगर बसाने चला गया था। उर से प्राप्त वस्तुओं के नमूने अत्यंत सुन्दर हैं, जिन पर खुदाई और जड़ाई का काम किया गया है। ये वस्तुएं प्राचीन काल की प्रथाओं पर प्रकाश डालती हैं। इनके अतिरिक्त बहुत सी मूर्तियां, विचित्र शस्त्र, और खुदे हुए वाक्य भी हैं। उर शहर की खुदाई इतिहास के पृष्ठों का एक बड़ा मनोरंजक अध्याय है। यह पांच हजार वर्ष पूर्व की बात है, जब अब्राहम अपने सामान और पशुओं को लेकर एक दूसरा नगर बसाने उर से बाहर निकला था। उर उसका बसाया हुआ नहीं था। यह एक प्राचीन नगर था। वैज्ञानिकों का कहना है कि उर संसार का सबसे पुराना नगर है।

इस दबे हुए नगर की खुदाई ब्रिटिश अजायबघर और पैनसिलवानिया विश्वविद्यालय के अजायबघर ने श्री लियोनर्ड वूली द्वारा कराई थी। यूफ्रेटीस और टिग्रीस की घाटी में उर नगर के स्थान पर केवल बंजर रेत की चट्टानें खड़ी हुई थीं। इसी क्षेत्र में खोदने वालों को टेमीनोस का क्षेत्र मिला, जिसको इस नगर का पवित्र स्थल माना जाता था। यह पौन मील लम्बा था। उसकी चौड़ाई इससे आधी थी। इसमें प्रवेश करने के लिए बहुत से दरवाजे थे। इसमें 'जुगारत की पहाड़ी' थी, जो ईंटों से बनाई गई थी। पहाड़ी के ऊपर चन्द्रमा का मंदिर था। इस मंदिर में पुजारी प्रतिदिन चन्द्र देवता और उसकी पत्नी को भोजन कराते थे। यहां यात्री और भक्तजन नित्य कीमती धातुओं की भेंट लेकर आते थे, जो निकट ही एक खजाने में जमा कर दी जाती थी। यही वह स्थान था, जहां नगर और दूसरी जगह के विद्वान संकट के समय देवी से भिक्षा मांगने आते थे।

यहीं वह न्याय का बड़ा द्वार था, जहां बैठकर राजा कानून का संचालन करता था। ईंटों की वह पहाड़ी 195 फुट लम्बी और 100 फुट ऊंची थी। खुदाई से पता चला है कि अब्राहम के राज्य में उर में बहुत से मकान बने हुए थे। बहुत से तो खोदकर बाहर भी निकाले जा चुके हैं। ये सब मकान पक्की ईंटों के और दो मंजिले बने हुए हैं। उनके अंदर बड़ा चौक और बाहर चारों तरफ लकड़ी का बरामदा था। उर राजा अपने मकानों की इटों पर अपना नाम खुदवा देते थे। वहां पृथ्वी देवी के मन्दिर में तांबे की बनी हुई एक बैल की मूर्ति मिली, जो पशु-संसार की सबसे पहली मूर्ति मानी जाती है। इसी मन्दिर के एक कोने में एक विचित्र चिड़िया की एक पुरानी मूर्ति मिली थी, जो संसार में किसी भी चिड़िया की सबसे पहली मूर्ति समझी जा सकती है। कहा जाता है कि इन दोनों मूर्तियों के बनाने वाले ईसा से 4300 वर्ष पूर्व रहे होंगे।

उर के भाई पुर थे। उनकी राजधानी 'पुर' थी।[39] एलबुर्ज (ईरानी वैकुण्ठ) के निकट एक स्थान 'पुरसिया' है, जो इन्हीं महाराज के नाम पर बसा था। उनके भाई 'तपोरत' का राज्य ईरान के तपोरिया प्रान्त में था, जिसे आजकल मजादिरन (Mazanderan) कहते हैं।[40]

मत्स्य– मेसोपुटामिया के अधीश्वर मत्स्य थे। इन्होंने जल-प्रलय के समय सुषा के महाराज 'अभिमन्यु' की रक्षा की थी। बैबिलोनियन दन्तकथाओं के आधार पर जलविप्लव के पूर्व बैबिलोनिया में चिरकाल तक मत्स्य वंश का राज्य रहा।[41]

4. मय

आज जिसे मध्य-अमेरिका कहा जाता है, वहां अत्यंत प्राचीन काल में 'मय' नाम की एक जाति रहती थी, जो अत्यंत शक्ति-शालिनी थी। कदाचित् वह जाति रावण के श्वसुर मय की वंश परम्परा ही में थी। हमारे पुराण साहित्य में 'मय' को समष्ठि रूप में एक व्यक्ति मानकर उसे बड़ा भारी शिल्पी माना गया है।

गृहनिर्माण कला में वह पारंगत था। युधिष्ठिर का अद्‌भुत सभा-भवन उसी ने बनाया था। परन्तु सम्भवतः यह विशेषण मय जाति के लोगों का है। यह मय जाति उत्कृष्ट शिल्पी थी। अमेरिका में जिस मय जाति के ध्वंस मिले हैं, वह भी विशालकाय शिलाभवनों के निर्माणों में अत्यंत दक्ष थी। पुराणों में प्रसिद्ध है कि मय ने असुरों के लिए स्वर्ण, रौप्य और लोहे के तीन प्रसिद्ध पुर निर्मित किए थे, जिन्हें शंकर-रुद्र ने उसके अधिपति सहित विध्वंस किया था। अमेरिका में मय जाति की सभ्यता को Amazing and Puzzling सभ्यता कहते हैं। वास्तव में वह आधुनिक वास्तुशास्त्रियों के लिए आश्चर्यजनक ही है। इस जाति के ध्वस्त नगर 'चिचेन' के प्रासादों की खुदाई अद्‌भुत है। हाल ही में जंगलों और पंकप्रलेप को परिष्कृत कर कई प्राचीन मयनगरियों का उद्धार किया गया है। जिनमें उत्कृष्ट खुदाई, विशाल द्वार, लम्बी-लम्बी सड़कें, गृहों का विवरण, तिथि वार सूचक यंत्र-पत्र आदि देखकर विद्वानों ने कहा है कि यह आश्चर्य की बात है कि कैसे और कब इन लोगों ने वे सब सुविधाएं प्राप्त की, जिनसे ये विशाल प्रासाद बनाए गए। इस जाति के शिलालेख भी मिले हैं। पता लगता है, इनके इतिहास ग्रंथ भी थे, जो नष्ट हो चुके। ध्वस्त नगरों को देखकर प्रतीत होता है कि वे आज के जैसे सम्पन्न सर्वसाधनमय नगर थे। मन्दिर, महल, पिरामिड, बाजार, नाट्यगृह, अट्टालिकाएं तथा एक सहस्त्र खम्भों के वृहदाकार मंदिर थे। ऐसा अनुमान करने के लिए अनेक कारण हैं कि मय जाति का मिस्त्र देश से सम्पर्क रहा हो।

मैक्सिको के गहन वनों में छिपे मय जाति के जो ध्वंस मिले हैं, उनसे बहुत-सी महत्वपूर्ण बातों पर प्रकाश पड़ा है। मैक्सिको के दक्षिण प्रान्त में हान्दुरस-युकेतन प्रायः द्वीपमय स्थान थे। कुछ ऐसे स्तम्भ लेख वहां मिले हैं, जिनमें किसी घटना का संकेत है और वे स्तम्भ उस घटना से 3050 वर्ष बाद के हैं। जैसे हम विक्रम सम्वत् मानते हैं, सम्भवतः ऐसा ही यह भी कोई सम्वत् प्रतीत होता है। वहां की भित्तियों पर अंकित चित्र लिपि अभी नहीं पढ़ी गई है, सम्भवतः यह सभ्यता चार हजार वर्ष पुरानी है। इनकी लिपि ध्वन्यात्मक ही प्रतीत होती है, व परिष्कृत भी है। यौगिक नाम तदर्यबोधक वस्तुओं के संयुक्त चित्र में प्रकट किए गए हैं। जैसे 'मीनकेतु' या 'मीनध्वज' में मछली और ध्वजा के चिह्न से अक्षरों का क्रम नागरी के समान बांई ओर से दाहिनी ओर है। अंक प्रणाली में केवल 4 अंक हैं। इकाई, पांच, बीस और शून्य। इन्हीं से वे लाखों का गणित करते थे। अंक

जापानी लिपि की भांति खड़ी लकीर के रूप में लिखे जाते थे। ये लोग मागुई (Maguey) नामक किसी पौधे का पत्ता लिखने में काम लाते थे। पत्ता पहिले चपटा कर लिया जाता था, फिर उन्हें जोड़ लिया जाता था- लिखने में अनेक रंगों का प्रयोग किया जाता था। जुड़े पत्तों को लपेट कर पुस्तक तैयार कर ली जाती थी। धार्मिक विवरण, ज्योतिष, स्वप्न, भविष्य, उनकी पुस्तकों का विषय होता था। इनकी वर्षगणना, पंचांग, राज्यव्यवस्था, वास्तु विज्ञान, धार्मिक अनुष्ठान, कृषि सब व्यवस्थित थीं। पुरोहितों का मय जाति में मुख्य स्थान था। पुरोहितों के बाद कृषकों का स्थान था। चित्रों में पुरोहित राजदंड हाथ में लिए परदार मुकुट पहने धर्म कृत्य करा रहे हैं। कृषि संबंधी अनेक औजारों के चिह्न मिले हैं। संभवतः ये लोग ठिगने कद के, शान्तिप्रिय थे। योद्धा न थे, कपास बोना ये जानते थे। वस्त्र बुन सकते थे, कपड़ा रंग सकते थे, मक्का, आलू, केला की उपज करते तथा क्यूबा द्वीप से अधिक व्यापार करते थे। शिल्पी प्रथम श्रेणी के थे। चित्रकला के बड़े प्रेमी थे। इनके भवन ऊंचे स्थानों पर पत्थर के बने होते थे। वे दुमंजिले होते थे। ऊपर की मंजिलें मीनार की आकृति की होती थीं। प्रतीत होता है कि इमारतें, पूरी नाप-जोख के साथ नक्शा बनाकर बनाई जाती थी। सड़कें प्रशस्त थीं। ये लोग सूर्य को पूजते थे। नववर्ष के आरम्भ में ये समारोह करते थे जहां नरबलि दी जाती थी। अक्षमाल तथा युकेतन प्रायःद्वीप के चिचेन स्थान में इस जाति के बहुत भग्नावशेष मिले हैं। इन इमारतों की दीवारें 90 गज लम्बी और 10 गज चौड़ी हैं। अक्षमाल की प्रधान इमारत पिरेमिड के ढंग की तीन मंजिली लगभग 1500 फुट ऊंची है। सबसे ऊपर 322 फुट ऊंचा मन्दिर है, ऊपर तक जाने को लगातार सीढ़ियां बनी हैं। छतें अधिकांश महरावों पर हैं और रंगी हुई हैं। 'तुल्लुक' नगर का ध्वंस मय जाति के शिल्प का प्रसिद्ध स्मारक है। चियामरु के जंगलों में भी बहुत इमारतें हैं। युकेतन की राजधानी मरिदा एक प्राचीन नगर के ध्वंस पर ही बसा है। हान्दुरस में कोपन के तट पर भी एक प्राचीन नगर के अवशिष्ट चिह्न हैं, जहां पत्थरों के मध्य भवन हैं। मयों की चित्रलिपि मिश्री ढंग की है, इमारतों का रचनाक्रम आसुरी है, वलि, पूजन, धूप-दीप, सूर्यपूजन आर्यों का है। इससे प्रतीत होता है कि मय तीनों संस्कृतियों से परिचित थे। महाभारत में खाण्डववनदहन के समय अर्जुन ने किसी मय और नमुचि की रक्षा की थी, जिसके प्रत्युपकार में मय ने युधिष्ठिर का सभा भवन बनाया था। यहां मय शब्द जाति-वाचक प्रतीत होता है, व्यक्ति-वाचक नहीं। इन मयों ने वृषपर्वा दैत्य का एक प्रासाद बनाया था, वहीं से बची हुई सामग्री लाकर उन्होंने युधिष्ठिर का सभाभवन बनाया था। वे भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश से ही सामग्री लाए थे, जहां वृषपर्वा का राज्य था।[42] ये मय रावण की बर्बादी के बाद लंका छोड़ पश्चिमी समुद्र से मेक्सीको अमेरिका चले गये थे।

संदर्भ

1. The name of the Babylonian storm God was Matu or Martu which, as we have seen, was the same as the Vedic Marut and must have been taken by the Punic and Cholas to Babylonia. (Historical History of the World, vol. I. P. 89).
2. When Sumeria was begining to flourish, these two rivers had seperate outlets, and Eridu, the seat of the Cult of the Sea-- God Ea, which now lies 125 miles inland, seaport at the head of the Persian Gulf. A day's journey seperated the river mouths when Alexander the Great broke the Power of the Persian Empire.- (Myths of Babylonia and Assyria, P. 22, 23)
3. पुराणों में दैत्यों की एक जाति केसी वर्णित है, जिससे पुरुरवस ने लड़कर उवशी का उद्धार किया था।
4. 'अवाचीत्सारथिरस्य केशी' (ऋ. 10।102।6), संभव है यह घोड़ा केशी (केसी) देश का हो तथा सारथी भी केशी जाति का हो। सायण ने केशी देश का अर्थ अयालवाला किया है, जो ठीक नहीं है।
5. 'चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः' (ऋ.6।75।9) ये अश्रमास उरवो वहिष्ठास्तेभिर्न इन्द्राभि वक्षि वाजम् (ऋ. 6।21।12)। 'विश्वे रूमभिरागहि।' (ऋ. 5।51।1)। 'प्रथमास ऊमाः (ऋ. 10।6।7)'। 'अनुयं विश्वे मदन्त्यूमाः' ऋग्वेद (10।120।1)।
6. बोघ झकोई (Boghaz-Koi) में मितन्नि राजा का एक लेख मिला है, जिसमें मित्र-वरुण-इन्द्र और नासत्य की पूजा का उल्लेख है।
7. 'असितस्य तैमातस्य बभ्रोरपोदकस्य च' (अथर्व. 5।13।6)।
8. ऋग्वेद 8।13।2 तथा 9।106।3। तथा 1।139।11।
9. 'त्वंदेवानामसि यह्व होता' (ऋ. 10।110।3)। 'पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन्रुरूच उषसो न भानूना' (ऋ. 6।15।5।)
10. ऋग्वेद, 10।95।
11. 'त्वंमंशो विदथे देव भाजयुः' (ऋ. 2।1।4।10)।
12. 'स एतशो रंजासि देवः सविता महित्त्वना' (ऋ. 5।8।1।3)।

13. वायुपुराण।
14. Siwas in Asia Minor Gordium (H.P. Vol.II 55.
15. देखिये, प्राचीन ईरान का इतिहास।
16. 'वृहस्पति देवानां पुरोहित आसीत उशना काव्योऽसुराणाम्' (जैमिनीय ब्राह्मण 1-125) (ताण्ड्य ब्रा. 7।5।20)।
17. कौ. अ. व्यवहाराध्याय।
18. बोधायन श्रौत सूत्र 18। 46।
19. योगवाशिष्ठ। देखिए, प्रह्लाद कथा प्रसंग।
20. देखिए, मत्स्य पुराण में वही प्रसंग।
21. विष्णुपुराण स्वायम्भुव मनु प्रसंग। श्रीमद्भागवत्, हरिवंश, ऋग्वेद।
22. हरिवंश पुराण।
23. हरिवंश पु., विष्णु पुराण। श्रीमद्भागवत। मत्स्य पु.। (H.P. vol.1.)।
24. हरिवंश पुराण।
25. श्री मद्भागवत।
26. H.P. vol.1.
27. ऐतरेय ब्राह्मण 8।4।1।
28. Sattagydia, the Eastern province of Persia. (H.P. Vol. 173)
29. Mount Demavand (the modern ELburz) or the Iranian Paradise. (H.P. Vol. 1. 117, 123.)
30. Memnon, who came to the aid of Troy leading an army of Susians (Susa) and Ethiopians to the assistance of Prium, who is his parental uncle. There are brief references to Memnon in Homer, and he is evidently regarded as an important personage. "To Troy no here came of nobler line, Or if of nobler, Memnon it was thine." - Odyssey
Hesiod calls him-- the Ethiopian king. Also Herodotus V. 54, where Susa is termed the city of Memonon. - (H. P. Vol. I, 55). Todd's Rajsthan shows the Ethiopians were Indians.
सुषा नाम पुरी रम्या वरुणस्यपि धीमतः (मत्स्य पुराण अ. 123, श्लोक 22)।
31. Susa or Shush or the city of Memnon, the ancient capital of Elam and the oldest known site in the world.- (H.P. vol. I, 59)
32. देखिए, विष्णु पुराण में चाक्षुष मन्वन्तर कथा प्रसंग।
"Africa of Cushdwipa" टाड राजस्थान।
"Angra Pequenna on the south west coast of Africa"
Ancyra or Angira or Angora in Asia-Minor.
33. " In the Later Avesta Ahura Mazda is still Supreme, but he is no longer the sole object of worship. By this time the six attributes had become the "Six Immortal Holy Ones" and were worshipped as such."
(H.P. vol. 1. page 111.)
"The Sky-God Varuna, the Ouranos of the Greeks, was worshipped as the Supreme God."
(H.P. vol. 1. page 106.)
" Under the spiritualizing influence of Zoroaster's teaching, which may be defined as the attribution of a moral character to the powers of nature, Varuna, became Ahura "the Lord," or more commonly Ahura Mazda (Ormuzd), "the Lord of Great Knowledge," The Supreme God and the Creator of the world."
(H.P. vol. 1. age 111.)
'Ahriman, the spirit of Evil - coeval with Ahura Mazda, fundamentally hostile to him and having the power to thwart his beneficient actions, for a while is Angra Mainyu or Ahriman, the spirit of Evil, who thus the omnipotence of Ahura Mazda." (H.P. vol. I. 112.)
34. " What a terrible, nay ferocious God is This.!"
(H.P. vol. I. 118.)
35. " Ahura Mazda created all that is good, whom it is the duty of all believers to cherish. Ahriman or Angra Mainyu created all noxious creatures which it is the bounden duty of all the faithful to destroy."
"The Ahriman of Zorastrianism is almost identical with Satan of Judaism and Theory of Christianity. Zoroastianism influenced Judaism and thereby Christianity in diverse ways, The Supreme God of Judaism could not destroy the terrible and forocious Ahriman as obviously as he would, if he could
- ' (H.P. vol.1, 117-118).
36. The chief diety whose name was sacred and secret and who was offered to as Shushinak or the 'Susian' dwelt in a forest sanctuary which was sacred, and to which only the priests and the kings were admitted. Assosiated with Shushinak were six other deities of the first rank, grouped in two triads, of these, Amman Kashibar may possibly be the Memnon of the Greeks.The Swarthy the son of Kissia and the black Tihon of the Greeks.
(Gautier, Rec. de trav. xxxi p. p. 41 ff.)
37. " A letter from the expedition of prof. C. Leonard Woolley in Chaldea tells of wars between Elam Ur in the time of Abraham and the utter coollapse of the latter : This reveals more than 2000 years of a city life." " The third dynasty of Ur (Babylonia) which Ur-Engur founder lasted less than two centuries. At the time of Abraham is collapsed as a result of the disastrous wars with Elam"
- (The English man, dated 20th April 1925)
"The conquest of Elam by the dynastry of Ur in 2600 B. C." (H. P. vol. 1. 73). The overthrow of the dynasty of Ur by Elam in 2280. B. C."
38. " From the tablets just referred to, we learn the names of the several of the Patesis of Elam, none of whom is a native of the country. As the dynasty became weak, Elam recovered its liberty and finally turned on its oppressor and caused the downfall of the dynasty of Ur (2280 B.C.)"
(H.P. vol. 1. 73-74)
(H. P. vol. 1. 74)
(H.P. vol. I. 113.)
39. Poura, now termed Pahra by the Baluchis and Fahraj by the Persians, lies in the only really fertile valley of Persian-Baluchistan. In the neighbourhood are ruins of two other forts, and the site is generally believed to be ancient. Arrian states that Poura was reached in 60 days from Ora, and as the map makes the distance of 600 miles, this would in all the circumstances be a reasonable distance to be covered in the time, (H.P. vol. 297, 298).
40. The Mardi lived further west than the Tapuritae under Demvand of Tapuria. (H.P. vol.1. 284)
41. देखिये, जेनेसिस।
42. देखिए, महाभारत, सभापर्व।

■

आठवां प्रकरण

1. यम

यम सूर्य के पुत्र तथा मनु के सगे भाई थे। यम का 'कृकवा' से विशेष संबंध है।[1] कृकवा एक प्रकार का मुर्गा होता है जो ईरान में ही होता है। यम का देश यमपुरी ईरान में था, जिसे दोजख कहते थे। उसी को संस्कृत में अपवर्त कहा है। यम को ईरानी प्रथम विजेता मानते हैं।[2] यम जब वहां पहुंचे तो जल प्रलय से वह स्थान मृत्युलोक बन गया था। अतः इनको मृतकों का राजा मान लिया गया। इन्हीं यम को रोमन लोग 'प्लूटो' और फिनलैन्डर्स 'यमात्मा' कहते हैं। इनका विवाह दक्ष की दस पुत्रियों से हुआ। इनमें से साध्या की संतान सिदियंस हैं। इनके पुत्र नीप और पाल से नैपियन्स और पालवंश चले। जिनके राज्य मिस्र तक फैल गए थे।[3] ग्रीस के आदि निवासी (Palas-gians) पालवंशी सीदियन्स ही थे। नीपवंश को जनमेजय ने नष्ट किया था। वसु, घोष, साध्य, हंस, विश्वकर्मा, मनीषि, द्रविड़, हुन, मंगोल, रमण, धर, हयताल आदि शाकद्वीपी जातियां यम की ही संतान हैं। ये सब अपने कुलदेव सूर्य की उपासक थीं। सूर्य को ये God of all Nations मानती थीं। 'हुन' धर के पुत्र हैं। कुशान, हयताल (White Huns) व तुर्क (किरात-टर्क) को भी ईरानी इतिहास 'हुन' बताता है।

मंगोल 'हुन' हैं। (हुन चीन के गोवी मरुस्थल के निवासी थे।) वहां Ravandis एक जाति है, जो इसी वंश की है। धर के पुत्र रमण थे। ईरान में एक रावन्द नगर है। साध्यापुत्र हंस जर्मन हैं। इनका Hansesatic League प्रख्यात है। यम के पुत्र वसुओं के आठ वंश चले। हयतालों ने ईरान में राज्य किया। मरुद्गण के वंश हिरात में फैले। हयताल भी हुन में मिल गए। पर्शिया के सतयुग (Heroic Age) के आदि नरेश जमशैद (Jamshid) यम, कैमुर्जआदम (Keiomurj Adam), फरीदून (Feridun), ईरज (सूर्य), सनुचेहर (शनैश्चर या सावर्णिमनु), कैखुसरा (Keikhusro) आदि प्राचीन ऐतिहासिक देव संज्ञक पुरुष, जिनका वंशवृक्ष पर्शियन हिस्ट्री में नहीं है, सब सातवें मन्वन्तर के सूर्यवंशी नरेश थे। यम वेदर्षि थे।[4] तथा पितरों के अधिपति थे।[5] मंगोल, मोंग (Mong), शब्द से बना है, जिसका अर्थ सिंह या वीर है। मुगल मंगोल का अपभ्रंश है। (Moghul means Mongols, especially, the great dynasty of India, H. P. vol. 1. 145).

मंगोल सूर्य उपासक, मूर्तिपूजक थे। ये मदिरा-प्रेमी, शूकर-भक्षक, भयंकर धनुर्धर, प्रख्यात अश्वारोही और पुंस्त्व प्रधान थे। इनके आचरण हीन थे, इनके दाढ़ी मूंछ नहीं थीं, तातारियों को इन्होंने विजय किया था। मुगलों में चंगेजखां, हलाकू, तैमुरलंग, बाबर आदि बड़े-बड़े विजेता नरेश हुए। चंगेज का नरवध, और राज्य विस्तार एशिया भर में सर्वोपरि था। दिग्विजयी तैमूर का राज्य गंगा से दमस्कस व आरची पेलोगो तक व वोल्गा से फारस की खाड़ी तक समूचे एशिया में फैला था। इतिहास में ये असभ्य-महामारी के नाम से विख्यात हैं। इनके उजाड़े हुए देश 700 वर्ष तक नहीं पनपें। (जमीउलतवारीख, लिटरेचर एण्ड आरचीटेक्टर-अंडर दी मुगल्स तथा तारीखे जहांगश्ता और हिस्ट्री आफ पर्शिया जिल्द, दो, 61)।

2. ययाति और उनका वंश

पुरूरवस के पुत्र आयु थे, जिनका चरित्र बैबिलोनिया के Oannes से मिलता है,[6] जो मत्स्य थे। उनके पुत्र नहुष और नहुष के ययाति थे। टालोमी ने ईरान की एक जाति अयाति (Iatii) का वर्णन किया है, जिसका उल्लेख कर्निंघम ने भी किया है।[7] ये भी ययाति के ही वंशधर हैं। जो अब भी ईरान के जोट (jotah) प्रदेश में रहते हैं। ययाति की दो स्त्रियां थीं। एक देवयानी शुक्र की कन्या, जो दैत्य गुरु थे, व एशियामाइनर में 'गुरुद्वारम्' (Gordium) के निवासी थे।[8] दूसरी सीरियानरेश वृषपर्वा दैत्य की कन्या शर्मिष्ठा।[9] ययाति मरुद्गण 'हिरात' (Scythas & Scythians) व वसुगण (The Busae) नन्दनवन-पारदिया-शाकद्वीप के स्वामी थे। प्रजा को सताने के कारण सुरलोक से इन्हें निकाल दिया गया।[10] तब इन्होंने अपने दौहित्र अष्टकों के यहां मध्यभूमि या यज्ञभूमि (Middle Kingdom) में शरण ली।[11] जहां अष्टकों के राजा प्रतर्दन व शिवि ने उनका स्वागत किया और अपने लोक भी देने चाहे। पर ययाति ने स्वीकार नहीं किया।[12] ययाति ने संभवतः फिर से स्वर्ग जीतने का प्रयत्न किया था। ईरानी इतिहास में इस युद्ध का वर्णन है।[13]

यवद्वीप (जावा)– जावा में अब से चार शताब्दी पहिले हिन्दु संस्कृति थी। वहां शिव के अनेक भव्य मंदिर हैं, तथा राम-रावण युद्ध के अभिनय बहुत होते हैं। राम कथा से लोग परिचित हैं। सीता-राम के प्रति जावावासियों में श्रद्धा है। महाभारत की कथाएं भी अभिनीत की जाती हैं। राम-रावण के द्वन्द का अत्यंत प्रभावशाली दृश्य दिखाया जाता है। प्राम्वनम् में भव्य शिव और विष्णु के मंदिर हैं जिनकी मूर्तिकला और स्थापत्यकला अद्भुत है। जावावासी मूलतः शैव ही थे। वहां एक स्थान कैलाश (कैलासन) है। प्राम्वनम् का साठ फुट ऊंचा शिव मंदिर अद्भुत है, जहां दीवारों पर रावण और जटायु के युद्ध का दृश्य अंकित है तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश की मूर्तियां अंकित हैं। नन्दी का मंदिर भी है।

3. राक्षस

रा + क्षस। 'रा' मिस्री भाषा में सूर्य को कहते हैं। सूर्य आदि बारह भाई आदित्य कहाते थे। आदित्यों की सभ्यता का प्रतीक 'रा' शब्द है। 'क्षस'- 'यक्ष' का प्रतीक है। 'यक्ष' संस्कृति का संस्थापक विश्रवा-पुत्र कुबेर था। रावण ने अपने भाई कुबेर की 'यक्ष' संस्कृति और आदित्यों की 'रा' संस्कृति को मिलाकर 'राक्षस' (रा-यक्ष) संस्कृति वाली राक्षस जाति का संगठन किया।

'रक्षामः' अर्थात रक्षा करेंगे। 'यक्षामः' अर्थात खायेंगे। ये दो संस्कृतियों के मूल आधार-सिद्धान्त रावण और कुबेर ने स्थापित किए थे। कुबेर का अभिप्राय था कि धन वैभव और राज्य, भोग करने-मौज मजा करने के लिए है। रावण का अभिप्राय था कि धन वैभव और राज्य, रक्षण करने के लिए है। अतः कुबेर व रावण ने अपने-अपने आदर्श पर यक्ष-रक्ष जातियों का संगठन किया। दोनों जातियों के परिवार-परिजन एक ही थे, भाई-बन्द रिश्तेदार थे। बाद में जब कुबेर और रावण में संघर्ष हुआ, और कुबेर को परास्त होना पड़ा, तो रावण के सम्प्रदाय में बहुत से यक्ष आ-आ कर राक्षस धर्म स्वीकार करने और राक्षस बनने लगे। इस प्रकार 'रा' सूर्य धर्म आदित्यों की संस्कृति, और यक्ष बड़े भाई कुबेर की संस्कृति को मिलाकर रावण ने राक्षस संस्कृति और राक्षस जाति का निर्माण किया।

संदर्भ

1. 'अनिवार्या भवस्यापि का कथान्येषु जन्तुषु। कृकवा कूर्मयादत्तो यः कृमीन्भक्षयिष्यति।' (मत्स्य पुराण)
2. The hero Yama was held to be the first to show the way to many, and being the first to arrive in the vasty halls of death. Yama becomes transformed into the king of the dead. (H. P. vol. 1. 107)
3. Scythes had two sons Pal and Napas and the nations were called after them the Palas and Napians. They led their forces as far as the Niles. (टॉड राजस्थान 51)
4. ऋग्वेद के दशम मंडल का 14वां सूक्त यम का है।
5. ये पितर संभवतः ईरान की प्राचीन जाति थी। पितरों का वर्णन बाइबिल में भी है। पद्मपुराण सृष्टि खंड में 'याम्य' देवता का उल्लेख है। पितरों के सात गण थे, जिनके पृथक-पृथक लोक थे। (विष्णु पु.)।
6. देखिए H.P. vol. I 65.
7. देखिए, कर्निंघम, जि. II. 55.
8. देखिए H.P. vol. I, 266, 267.
9. विष्णु पु., भागवत, मत्स्य। कोश में Diety and Dietas.
10. प्रभ्रंशितोऽहं सुरसिद्धलोकात् परिच्युतः प्रमताम्यल्प पुण्यः (ययातिरुवाच) मत्स्य पु. अ. 38 श्लोक 1।
11. मत्स्य पुराण अ. 41। From Ganges to the Caspian sea was the Middle Kingdom. तिब्बत और चीन की मध्य भूमि का विवरण भी देखिए (टॉड राजस्थान 434)।
12. अष्टक पारदिया प्रदेश के Ashtshat in Parthia स्वामी थे तथा शिवि व शिवस्थान (शिशतान) व उशीनर (Ush) या Trans Caspia के राजा थे। खुरासान भी अष्टकों के राज्य में था। (टाड राजस्थान, जैसलमेर प्रसंग)।
13. ईरानी इतिहास में इस युद्ध को Holy wars of Khorasan व Turanion Invasion of Afrasiah के नाम से प्रसिद्ध है। (देखिए, कर्निंघम, vol. II)। ■

नवां प्रकरण

1. राम

सूर्यवंश :– फारस के उत्तर पूर्व से अफगानिस्तान और पामीर तक आरम्भिक वेद काल में इन्द्र का राज्य था, जिसने बाद में सिन्ध और पंजाब तक भारत में उसका विस्तार कर लिया था। यह इन्द्र देवों का प्रथम भारतीय सम्राट था।

इन्द्र का यह साम्राज्य दैत्यों और दानवों के राज्यों की सीमा से लगा हुआ था, और आए दिन इन देश वालों से इन्द्र के युद्ध हुआ करते थे। वृहस्पति उसके कुल गुरु थे जिसकी पत्नी का नाम तारा था, असुर याजक चन्द्र वनस्पतियों का अधिपति था। उसका वृहस्पति की पत्नी तारा से सम्बन्ध स्थापित हो गया और वह उसे भगा ले गया। इसी बात पर झगड़ा बढ़ गया, चन्द्र का पक्ष दैत्यों ने लिया और अंत में एक देवासुर संग्राम हुआ जो 'तारकामय' के नाम से प्रख्यात है। इस युद्ध में चन्द्र ने दैत्य दानवों की सहायता से इन्द्र को हरा दिया, पर अंत में संधि हुई और तारा वृहस्पति को दे दी गई। परन्तु वह गर्भवती थी और गर्भ चन्द्रमा का था। जब उसने पुत्र को जन्म दिया तो उसे चन्द्र को दिया गया। इस बालक का नाम बुध रखा गया। युवा होने पर वैवस्वत मनु नामक एक आर्य नेता ने, जो सूर्य का पुत्र था, अपनी पुत्री इला उसे ब्याह दी। परन्तु अपवाद और वैमनस्य के कारण मनु और बुध दोनों ही का इन्द्र की राजधानी एलम में रहना असंभव हो गया, और दोनों श्वसुर दामाद ने अब पच्छिमोत्तर के दुर्गम दर्रो को पार कर भारत में प्रवेश किया। भारत में आकर सरयू तट पर मनु ने अयोध्या नगरी बसाकर अपने पिता के नाम पर सूर्यवंश की गद्दी स्थापित की, और बुध ने अपने पिता के नाम पर चंद्रवंश की स्थापना कर गंगा-जमुना के संगम पर उसने प्रतिष्ठान नगरी बसाई। धीरे-धीरे इन दोनों के वंशों की अनेक शाखाएं फैलीं, जो चन्द्रमंडल और सूर्यमंडल के नाम से विख्यात हुईं। दोनों मंडलों का संयुक्त नाम आर्यावर्त पड़ा।

सूर्यवंश की पांच शाखाएं स्थापित हुई। (1) उत्तर कोशल राजवंश, (2) दक्षिण कोशल राजवंश (3) मैथिल राजवंश, (4) वैशाली राजवंश (5) शार्यात शाखा या आनर्त राजवंश। उत्तर कोशल राजवंश की 39वीं पीढ़ी में राम का जन्म हुआ।

2. सूर्यवंश (मूल)

(1) उत्तर कोशल राजवंश– 1. मनु वैवस्वत, 2. इक्ष्वाकु, 3. विकुक्षि, 4. पुरंजय, 5. अनेनस, 6. पृथु., 7. विष्टराश्व (विश्वगश्व), 8. आर्द्र, 9. युवदाश्व (प्रथम), 10. श्रावस्त, 11. वृहदस्व, 12. कुवलयास्व (धुन्धमार), 13. दृढ़ाश्व, 14. प्रमोद, 15. हर्यस्त्र (प्रथम), 16. निकुम्भ, 17. संहताश्व, 18. अकृशाश्व, 19. प्रसेनजित्, 20. युवनाश्व (दूसरे), 21. मानधातृ, 22. पुरुकुत्स, 23. त्रसदस्यु, 24. संभूत (तृक्षि-वेद), 25. रुरुक, 26. वृक, 27. श्रुत, 28. नाभाग, 29. अम्बरीष, 30. सिन्धुद्वीप, 31. शतरथ 'कृतशर्मन', 32. विश्वशर्मन, 33. विश्वमह (प्रथम), 34. दिलीप (खट्वांग), 35. दीर्घबाहु, 36. रघु, 37. अज, 38. दशरथ, 39. राम।

(2) दक्षिण कोशल राजवंश– 35. अयुतायुसु (भगस्वर), 35. दीर्घबाहु (इससे) शाखा चलती है।), 36. ऋतुपर्ण, 37. सर्वकाम, 38. सुदास, 39. मित्रसह या कल्माषपाद।

(3) मैथिल राजवंश— इस विदेह कुल की मिथिला शाखा नं. 2 इक्ष्वाकु के किसी पुत्र से चलती है, परन्तु इसके प्रारम्भिक 14। तक नाम प्राप्त नहीं हैं।

15. निमि, 16. मिथि, 17. जनक, 18. उदारवसु, 19. नन्दिवर्धन, 20. सुकेतु, 21. देवराट्, 22. वृहदुक्थ, 23. महावीर्य, 24. धृतिमन्त, 25. सुधृति, 26. धृष्टकेतु, 27. हर्यश्व, 28. मरू, 29. प्रतन्धिक, 30. कीर्तिरथ, 31. देवमीढ़, 32. विवुध, 33. महाधृति, 34. कीर्तिराट्, 35. महारोमन, 36. स्वर्णरोमन, 37. ह्स्वरोमन, 38. सीरध्वज, 39. भानुमन्त।

(4) वैशाली राजवंश– वैशाली वंश शाखा इक्ष्वाकु के छठे भाई नाभानेदिष्ट से चलती है।

1. मनु वैवस्वत, 2. नाभानेदिष्ट, 3. भलन्दन, 4. वत्सपी, 5. पांशु, 6. प्रजाति, 7. खनित्र, 8. क्षुप, 9. विंश, 10. विविंश, 11. खनीनेत्र, 12. करन्धम, 13. अवीक्षित, 14. मरुत्त, 15. निरष्यंत, 16. दम, 17. राष्ट्रवर्द्धन, 18. सुघृति, 19. नर, 20. केवल, 21. बन्धुमंत, 22. वेगवन्त, 23. बुध, 24. तृणविन्दु, 25. निश्रवस, 26. विशाल, 27. हेमचन्द, 28. सुचन्द, 29. धूम्राश्व. 30. संजय, 31. सहदेव, 32. कृशाश्व, 33. सोमदत्त, 34. जनमेजय।

(5) शार्यात शाखा-आनर्त्त राजवंश– यह सूर्यवंश (शार्यात शाखा-आनर्त राजवंश) वैवस्वत मनु के तीसरे पुत्र शार्यात से चला।

1. वैवस्वत मनु, 2. शर्यात, 3. आनर्त, 4. रोचमान, 5. रेव, 6. रेवत, 7. ककुर्मिन, (कुल 24 या 25 पीढ़ियां)।

सूर्यवंश की उक्त वंशावली रामायण, महाभारत और पुराणों की भली-भांति छानबीन करने के बाद पार्जीटर तथा डॉ. सीतानाथ प्रधान ने संपुष्ट की है। यद्यपि रामायण और पुराणों में अंतर है, परन्तु उसका यथेष्ठ ऊहापोह कर लिया है।[1]

उत्तर कोशल का वंश मुख्य सूर्यवंश है। इसकी राजधानी अयोध्या थी, जिसकी स्थापना मनु ने तथा पूर्ति इक्ष्वाकु ने की। इसी वंश की 39 वीं पीढ़ी में राम का जन्म हुआ। यहां जो वंशावली दी गई है, वाल्मीकि ने इस वंशावली को भिन्न रीति पर लिखा है। पुराणों में भी अंतर है। ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्तकाल में पुराण-सम्पादन के समय सगर, हरिश्चन्द्र तथा दक्षिण कोशल को वंश के नाम उत्तर कोशल के मुख्य सूर्यवंश में मिला दिए गए हैं।

वाल्मीकि द्वारा लिखे वंश वृक्ष में हरिश्चन्द्र तथा दक्षिण कोशल के वंश नाम तो नहीं हैं, परन्तु सगर तथा लववंशी ध्रुवसंधि, सुदर्शन अग्निवर्ण आदि नाम हैं, जो राम के पूर्व पुरुष बना दिये गये हैं तथा नहुष और ययाति भी, जो चन्द्रवंश के हैं, गिन लिए गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह वंश तालिका इक्ष्वाकुओं में प्रचलित थी, जहां से ई. पू. छठी या सातवीं शताब्दि में वाल्मीकि ने इसे लिया।[2]

इक्ष्वाकु के सौ पुत्र कहे जाते हैं, जिनमें से उसके बाद विकुक्षि अयोध्या के राजा हुए, जो राजर्षि भी कहाते थे। इनके पुत्र पुरंजय ने युद्ध में इन्द्र की सहायता की थी। विश्वगश्व का हयदल अजेय था। श्रावस्त (10) ने श्रावस्ती बसाई। कुवलयाश्व (12) ने धुन्ध राक्षस को मारा। युवनाश्व महायज्ञकर्ता तथा उनके पुत्र मान्धाता चक्रवर्ती थे। इनका विवाह शशिविन्दु पौरव महाराज की पुत्री विन्दुमती से हुआ। इनका दल लाख हयबल का था और इन्होंने लंका, अफ्रीका (कुशद्वीप) तथा दक्षिण महासागर के द्वीप समूहों को जय किया था।[3] वे बड़े न्यायी, दानी और प्रबंधक थे। इनका वध मथुरा के असुर राजा ने वन में इनको एकाकी पाकर किया। पुरुकुत्स और त्रसदस्यु वैदिक नरेश हैं।[4] नाभाग ने वैश्या स्त्री से विवाह किया। अम्बरीष दुर्द्धर्ष योद्धा थे। दिलीप, रघु और अज प्रतापी नरेश थे।

दशरथ योद्धा और प्रतिष्ठित राजा थे। वे नीतिवान और सत्यप्रज्ञ रहे। उनकी तीन महिषी थीं, प्रथमा-कौशल्या, दक्षिण कोशलाधिपति भानुमान[5] की पुत्री। द्वितीया-सुमित्रा, मगधराज की पुत्री। तृतीया-कैकेयी, उत्तरी पच्छमी आनव-नरेश कैकेय की पुत्री। दशरथ ने सिन्धु सौवीर, सौराष्ट्र, मत्स्य, काशी, दक्षिण कोशल, अंग, वंग, कलिंग और द्रविड़ नरेशों को जीता, तथा अश्वमेध यज्ञ किया था।

यावदावर्तते चक्रं तावती में वसुंधरा।
प्राच्याश्च सिन्धु सौवीराः सुरसा वर्तयस्तथा।।
वंगांगमगधा देशाः समृद्धाः काशिकोसलाः।
पृथिव्यां सर्वराजोऽस्मि सम्राटस्मि महीक्षिताम्।।

वाल्मीकि, उत्तर पाठ, अयो. 13, 21.

गिरिव्रज के प्रसिद्ध युद्ध में उत्तर पांचाल के दिवोदास की इन्होंने सहायता की थी। वैजयन्ती के कुलीतर के वंशधर तिमिध्वज शम्बर असुर को, जो रावण के साढू थे, परास्त किया था। अंग नरेश लोमपाद इनके मित्र थे, उन्हें इन्होंने अपनी पुत्री शान्ता दत्तक दी थी।

इस उत्तर कोशल राजवंश की कुछ शाखाएं भी हुईं। कुछ राम से प्रथम, कुछ बाद में। राम पूर्व एक शाखा हरिश्चन्द्रवंश की हुई। यह हरिश्चन्द्रवंश राम के पूर्व पुरुषों का नहीं, भाई-बन्दों का था। मुख्य सूर्यवंशी राजा सिन्धुद्वीप (30वें) के काल में अनरण्य ने एक सूर्यवंशी राज्य स्थापित किया। इनकी पांचवीं पीढ़ी में त्रय्यारुण हुए, उनके पुत्र सत्यव्रत (त्रिशंकु) और उनके पुत्र हरिश्चन्द्र हुए, जो पीछे महासत्यवादी प्रसिद्ध हुए। सम्भवतः यह राज्य कान्यकुब्ज के निकट कहीं स्थापित हुआ था। त्रय्यारुण राजा वेदज्ञ और प्रतापी थे।6 उसके पुत्र सत्यव्रत ने एक नवविवाहिता ब्राह्मणी का हरण किया (जिसकी संतती को सत्यायन ब्राह्मण कहा गया), चाण्डालों का साथ किया, कुल-गुरु वशिष्ठ की गाय मारी। इसी से वह त्रिशंकु कहाया, और पिता द्वारा वशिष्ठ के कहने से युवराज के अधिकार से च्युत किया गया। पिता के मरने पर भी उसे राज्याधिकार न मिला, वशिष्ठ ही राज्य चलाते रहे। तब इन्होंने म्लेच्छों का दल संगठित किया। इसी बीच कान्यकुब्ज नरेश विश्वामित्र ने वशिष्ठ पर चढ़ाई की। वशिष्ठ ने शबरों और म्लेच्छों की मदद से विश्वामित्र को पराजित किया। त्रिशंकु ने इस समय विश्वामित्र की सहायता की और उनके कुटुम्ब का वन में पालन किया। अवसर पाकर विश्वामित्र ने त्रिशंकु को सिंहासन पर बैठाया और उसके यज्ञ में पुरोहित भी बने।[7]

त्रिशंकु के पुत्र महादानी और महाबली हरिश्चन्द्र हुए जिन्होंने दिग्विजय करके अश्वमेध यज्ञ किया। इन्होंने सौभपुर नगर बसाया। इनको चिरकाल तक पुत्र नहीं हुआ, तो इन्होंने वरुण की उपासना की और कहा कि पुत्र हुआ तो उसको मैं वरुण को बलि दूंगा। तिसपर पुत्र रोहित का जन्म हुआ। पर मोहवश राजा ने पुत्र की बलि न दी। वशिष्ठ की सलाह से वह सात बार वन को चला गया और लौट आया। बाईस वर्ष पीछे हरिश्चन्द्र को जलोदर रोग हुआ जिसे समझा गया कि यह वरुण देवता का कोप है। इस कोप से बचने को अंत में राजपुत्र रोहित के स्थान पर बलि देने के लिए एक ब्राह्मण कुमार शुनःशेप को वेदर्षि अजीगर्त से हजार गाय देकर मोल लिया, और यज्ञ की तैयारी की। बदनामी से बचने के लिए वशिष्ठ इस यज्ञ के पुरोहित नहीं बने, तब अयास्य अंगिरस को पुरोहित बनाया गया। फिर बलि देने के लिए शुनःशेप को यज्ञ स्तूप (स्तम्भ) में बांधने को कोई राजी न हुआ तो उसका बाप ही 100 गाएं और लेकर तैयार हो गया,[8] तथा 100 गाएं और लेकर उसके अंग काटने को भी तैयार हो गया। यह खबर विश्वामित्र को लगी। वह लड़का उनकी बहिन का परिजन था। उन्होंने अपने पचास परिजनों को शुनःशेप के स्थान पर बलि होने को कहा, पर उन्होंने नहीं माना। इस पर क्रुद्ध होकर विश्वामित्र ने उन 50 परिजनों को कुटुम्ब सहित दक्षिणारण्य में निष्कासित कर दिया।[9] तथा स्वंय यज्ञभूमि में उपस्थित होकर बालक की प्राण रक्षा की। यही कथा पीछे उलटपुलट होकर हरिश्चन्द्र की प्रचलित कथा बन गई। जिसमें पिता पुत्र दोनों के चरित्र ग्रथित कर दिए गए।

इस वंश की दूसरी शाखा सगर वंश ने, दशरथ (38) के काल में मध्यभारत में कहीं स्थापित की। इस वंश के प्रथम राजा बाहु (38) हुए[10], जिन्हें हैहय राजा तालजंघ ने उत्तर भारत पर आक्रमण करते समय परास्त किया। बाहु राज्यच्युत हो ऋषि अग्निऔर्व के आश्रम में रहने लगे, वहीं उनके पुत्र सगर का जन्म हुआ। बाहु उसी आश्रम में स्वर्गगत हुए। पर सगर आगे चलकर बड़ा प्रतापी राजा हुआ।

उसने हैहयों को जीता और अपने राज्य का विस्तार किया।[11] उसे हैहयों के परम्परागत शत्रु अग्निऔर्व ने भारी सहायता दी। सगर ने हैहयों की सारी शाखाओं का मूलोच्छेद किया और अपना विराट राज्य स्थापित किया। इसका विवाह वैदर्भी केशिनी से हुआ था। इसकी कमान में 60 हजार अजेय योद्धा थे। पीछे इसने महर्षि

कपिल को कुपित कर स्वनाश किया। इस वंश की तीन पीढ़ियों के नरेशों-अंशुमान, दिलीप और भगीरथ द्वारा हिमालय की चार नदियों के अंतरभाग को खोदकर और उन्हें मिलाकर गंगा नाम देकर मैदान में लाया गया। अंशुमान राजर्षि थे। अंशुमान ने राजसूय और अश्वमेध यज्ञ किया। अंततः जिसके प्रयास से गंगा नदी मैदान में आई उस भगीरथ के पीछे इस वंश का पता नहीं लगता।[12] ये भी राम के पूर्व पुरुष नहीं थे।

दक्षिण कोशल राज्य (वर्तमान रायपुर, विलासपुर और संभलपुर के आस-पास का मध्य प्रदेश का भाग) की स्थापना खट्वांग दिलीप के पुत्र दीर्घबाहु (35) के काल में किसी सूर्यवंशी के राजकुमार– जिसका नाम अयुतायुस था ने की। इन्हीं का नाम भगस्वर भी है।[13] इनके पुत्र ऋतुपर्ण थे, जिनके पास प्रसिद्ध नल राजा छद्मवेश में अश्वपाल बनकर रहे। इस समय विदर्भ में भीमरथ यादव का राज्य था। नल उत्तर पांचाल के राजा मुद्गल के श्वसुर थे।[14]

ऋतुपर्ण के पुत्र सुदास और प्रपौत्र कल्माषपाद थे। जो राक्षसों के संसर्ग से नरमांस भक्षी हो गए।[15] इनके पुरोहित वशिष्ठ थे। विश्वामित्र के भड़काने से इन्होंने वशिष्ठ पुत्र तथा उनके सम्बन्धियों को खा डाला।[16] कल्माषपाद की रानी में वशिष्ठ ने नियुक्त होकर पुत्र उत्पन्न किया। इसके बाद ही शायद वे दक्षिण कोशल छोड़कर उत्तर कोशल चले गए।

कल्माषपाद के बाद दक्षिण- कोशल वंश की दो शाखाएं हो गईं– 1. अश्मक-उरकाम–मूलक (42) व 2. सर्वकर्मन-अनरण्य-निध्नअनमित्र (43)। निषध-विदर्भ, दक्षिण कोशल, चेदि और दशार्ण राज्यों की सीमाएं परस्पर मिलती थीं।[17]

पुराणों के अनुसार हरिश्चन्द्र वैवस्वत मनु का 33वां और सगर 40वां वंशधर है, भगीरथ 44 वां, कल्माषपाद 52वां, मूलक 55वां, तथा राम 63वां। इस प्रकार ये सभी राम के पूर्ववर्ती हो जाते हैं, परन्तु पुराणों ही के अनुसार उत्तर पांचाल नरेश सुदास मनु से केवल 43वीं पीढ़ी पर हैं। तथा इन्हीं सुदास के सगे पितामह सृंजय की दो पुत्रियां राम के समकालीन सात्वत यादव के पौत्र भजमान को ब्याही थी।[18] फिर राम के मित्र अलर्क के पितामह प्रतर्दन ने वीतिहोत्र हैहय को जीता, तथा सगर ने वीतिहोत्र के पौत्र और प्रपौत्र को। इधर विश्वामित्र, हरिश्चन्द्र के पिता त्रिशंकु को यज्ञ कराते है, हरिश्चन्द्र के यज्ञ से शुनःशेप को बचाते हैं, ऋग्वेद में सुदास का यश गाते हैं, और राम को अस्त्रविद्या सिखाते हैं। इस गड़बड़ी का कारण मात्र यही है कि इन तीन सूर्यवंशी शाखाओं को पुराणों में, गुप्तकाल में एकत्र कर दिया गया है। वास्तव में ये तीन समकालीन पृथक शाखाएं थीं और इनकी पृथक राजधानियां थीं।

अब मैथिल सूर्यवंशी शाखा पर विचार कीजिए। रावी नदी के तट से चलकर माथव नामक राजर्षि अपने पुरोहित रहूगण की सलाह से राप्ती नदी के पूर्व प्रान्त में आकर बसे।[19] उन्होंने जयंत को राजधानी बनाया।[20] परन्तु पुराणों के अनुसार इक्ष्वाकु पुत्र निमि ने ऐसा किया। निमि के पुत्र मिथि थे। संभव है इन्हें ही माथव कहा गया हो और मिथिला प्रान्त माथव या मिथि के नाम पर बना हो। अथवा संस्कृति 'मिथि' का प्राकृत में माथव बन गया हो।

इस विदेह कुल के तेरह नामों का पता नहीं लगता है। इन्हें यदि नहीं जोड़ा जाता है, तो दशरथ और सीरध्वज की समकालीनता की संगति नहीं बैठती है। निमि याज्ञिक थे। मिथि ने मिथिलापुरी बसाई। आगे चलकर सीरध्वज ने सांकाश्य राज्य को जीता, और अपने भाई कुशध्वज को वहां का राजा बनाया।[21] कुशध्वज का सांकाश्य राज्य चार पीढ़ी तक चला। इस वंश में ब्रह्माज्ञानी खांडिक्य हुए, मितध्वज के पुत्र खांडिक्य से कृतध्वज के पुत्र केशिध्वज का प्रथम युद्ध हुआ, फिर ज्ञान चर्चा हुई।[22] सीरध्वज जनक ही राम के ससुर थे।[23]

चौथी वैशाली शाखा है। वैवस्वत मनु के पुत्र नाभानेदिष्ट ने एक वैश्या स्त्री से विवाह किया, इससे वह क्षत्रिय-वैश्य वंश कहलाया। नाभानेदिष्ट काशी के उत्तर पूर्व बिहार प्रान्त में बस गए। ये अयोध्या के नाभाग (28) से भिन्न हैं। इस वंश में करन्धम और मरुत बड़े प्रतापी हुए। मरुत को हिमालय में सोने की खान मिल गई थी। इससे प्राप्त स्वर्ण से उन्होंने महायज्ञ करके महादान किया, पीछे अवशिष्ट स्वर्ण को वहीं गाड़ दिया, बाद में जिसे पाकर पौरव युधिष्ठिर ने यज्ञ किया। मरुत ने वृहस्पति के भाई संवर्त से यज्ञ कराया (महाभारत,

अश्वमेध पर्व। द्रोण पर्व। तथा अन्य पुराण)। परन्तु एक मरुत तुर्वश वंशी भी है, तथा तीसरे युधिष्ठिर के पूर्ववर्ती 16 मुख्य पुरुषों में है। यह यज्ञ वैशाल मरुत ने किया था या तौर्वश मरुत ने, यह चिन्त्य है।

इस वंश के नरेश विशाल (26) ने विशालपुरी बसाई जो वैशाली कहाई। जब हैहय तालजंघ ने काशी जीती, तब वैशाली में प्रमति राज्यासीन थे, जो सम्भवतः इस वंश में अंतिम थे। हैहयों ने उन्हें भी पारभूत किया था।[24]

पांचवीं शर्यात शाखा के संस्थापक शर्याति थे जो मनु के पुत्र थे, इन्होंने खम्भात की खाड़ी में अपना राज्य स्थापित किया, जो आनर्त कहाया। भृगुपुत्र च्यवन शर्याति के दामाद थे, तथा पुरोहित भी। शर्याति का ऐन्द्र महाभिषेक हुआ था। शर्याति वेदर्षि भी हुए। शर्याति का पुत्र अनर्त और कन्या सुकन्या थी। सुकन्या च्यवन को ब्याही गई थी। अनर्त के नाम पर उस देश का नाम आनर्त रखा गया। यह वंश आनर्त पर 24 या 25 पीढ़ियों तक राज्य करता रहा। पीछे राक्षसों से परास्त हो हैहयों में मिल गया। हैहयों की पांच मुख्य शाखाओं में एक शर्याति भी है। राम के काल में वहां मधु यादव राजा था। हरिवंश में यह कुन्त राज्य कहा गया है। सूर्यवंशी राजा युवनाश्व का भाई हर्यश्व मधु का दामाद था।[25]

ऋग्वेद में सरयू नदी के तट पर पहली आर्य बस्ती बसने का उल्लेख है।[26] विदेह में पहले दलदल था, माथव ने उसे देश बनाया, कोशल के उत्तर में हिमालय, पूर्व में सदानीर, दक्षिण में सई नदी, पश्चिम में पंचाल देश था। शाक्यों का राज्य कोशल के अंतर्गत था।[27] आयोध्या, श्रावस्ती और साकेत सूर्यवंशियों की राजधानियां थी। श्रावस्ती राप्ती के निकट सहेत-महेत है। कोशल राज्य कुरु-पांचाल से पीछे और विदेह के पूर्व महत्वपूर्ण हुआ।[28] इक्ष्वाकुवंशी, विशाला-विशाली,[29] मिथिला[30] तथा कुसीनारा[31] में राज्य करते थे।

मनु वैवस्वत, शर्याति, त्रसदस्यु, अम्बरीष और मान्धातृ वेदर्षि थे। इक्ष्वाकु का उल्लेख ऋग्वेद[32] अथर्ववेद में है। मान्धातृ, यौवनाश्व का गोपथ ब्राह्मण[33] में है। पुरुकुत्स ऋग्वेद में वर्णित है।[34] पुरुकुत्स इक्ष्वाकु हैं। त्रसदस्यु पुरुकुत्स के पुत्र हैं।[35] त्रयारुण भी ऐक्ष्वाकु हैं।[36] त्रिशंकु, हरिश्चन्द्र, रोहित, ऐक्ष्वाकु हैं।[37] भगीरथ, भाजेरथ, अम्बरीष, ऋतुपर्ण, दशरथ और राम समर्थ पुरुष हैं।[38] पुरुकुत्स, त्रसदस्यु, हरिश्चन्द्र, रोहित, ऋतुपर्ण आदि अयोध्यावाली सूची में वाल्मीकि ने गिने हैं। परन्तु वैदिक साहित्य से प्रमाणित है कि ये सूर्यवंशी उत्तर कोशल से भिन्न शाखा में से थे। कोशल और मिथिला के बीच सदा- नीरा 'राप्ती' नदी थी। शतपथ के अनुसार विदेह राज्य माथव द्वारा स्थापित हुआ।

संक्षेप में सूर्यवंशी नरेशों में– मनु, इक्ष्वाकु, पुरंजय, मान्धातृ, त्रसदस्यु (ऋग्वेद में प्रशंसित), वृक, नाभाग, अम्बरीष, दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम, (मुख्यशाखा) हरिश्चन्द्र, रोहित, सगर, भगीरथ, ऋतुपर्ण, नाभानेदिष्ट, करन्धम, अवीक्षित्, मरुत, विशाल, शर्याति और यदु प्रसिद्ध हुए। इनमें मनु, इक्ष्वाकु, मान्धातृ, त्रसदस्यु, दशरथ, राम, हरिश्चन्द्र, सीरध्वज, सगर और भगीरथ अति प्रसिद्ध हुए और उत्तर भारत में इनके नाम का डंका बजा। राम की सत्ता सर्वोपरि हुई। दशरथ ने तिमिध्वज शम्बर को, सुदास ने वर्चिन को, और राम ने रावण को जय करके राक्षसों और असुरों के तीन प्रमुख महाराज्यों को नष्ट कर दिया।

3. राम के समकालीन नृपति

उत्तर कोशल राज्य– राम (39)। उत्तर कोशल की हरिश्चन्द्र शाखा में हरिश्चन्द्र या रोहिताश्व (39-38) राम के दायाद सपिंड संबंधी या भाईपा। उत्तर कोशल सगर-शाखा-में सगर (39) राम के दायाद। दक्षिण कोशल राज्य— सुदास (38) या मित्रसह कल्माषपाद (39)। राम के नाना और मामा अर्थात कौशल्या के पिता, भाई।

विदेह मैथिल राज्य मुख्य शाखा-सीरध्वज (38) (कुशध्वज भाई), 'भानुमंत' (39), राम के श्वसुर-साले।

मैथिल राज्य-सांकाश्य शाखा-धर्मध्वज (39)।

वैशाली शाखा-राज्य– इस वंश के अंतिम राजा प्रमति (35) थे, इन्हें सम्भवतः हैहय तालजंघ ने जय किया। राम के समय वैशाली पर हैहय वंश का कोई प्रतिनिधि राज्य कर रहा था।

शर्यात शाखा-राज्य : यह राज्य वंश 24 या 25 पीढ़ी तक चलकर राक्षसों से परास्त हो हैहयों से मिल गया। राम के समय 'मधु' यादव राजा था।

सूर्यवंश की इन गद्दियों के अतिरिक्त उस काल में और भी अनेक राजवंश समृद्ध हुए थे। जिनमें चन्द्रवंश

सबसे प्रमुख था। यह वंश मनु के दामाद बुध ने अपने पिता चन्द्र के नाम पर स्थापित किया था और इसकी मुख्य और आदि गद्दी प्रतिष्ठान (झूसी-प्रयाग) थी।

पौरव चन्द्रवंश मुख्य राज्य– सार्वभौम (39), ऋक्ष (32) का छोटा भाई।

विदर्भ का द्विमीढ़ वंश राज्य– धृतिमंत (40)।

उत्तर पांचाल (वैदिक) सुदास वंश– सोमक (39)। सुदास (वैदिक)।

दक्षिण पांचाल राजवंश– राश्व।

मागध शाखा 'चन्द्रवंश'–सुधन्वा (प्रथम)।

काशी शाखा-वत्स (ऋतुध्वज-कुवलयाश्व)।

हरिवंश से पता चलता है कि मुद्गल, सृंजय, वृहदिषु, क्रिमिलाश्व और जयीनर ने पांचाल राज्य स्थापित किया। सहदेव (38) के दो भाई, प्रस्तोक और पिजवन थे। पुत्र सोमक था। पिजवन के पुत्र प्रसिद्ध वैदिक राजा सुदास हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में यह राज्य मुद्गल, काम्पिल्य, दिवोदास, प्रस्तोक और सहदेव (38) में बँट गया था। दिवोदास यद्यपि सुदास के दूर के चचा होते थे, पर उनका मेलजोल सुदास से इतना था कि वे सुदास के पिता कहे गए। इसमें सन्देह नहीं कि वैदिक सुदास राम के समकालीन हैं। इसका समर्थन इस बात से भी होता है कि इस वंश की 37वीं पीढ़ी के राजा सृंजय की दो पुत्रियां भजमान यादव (44) को ब्याही गई थीं। भजमान के पितामह सत्वन्त राम के समकालीन थे।

इस वंश के ऋक्ष (34) के पुत्र भृम्यश्व व उनके पुत्र मुद्गल और काम्पिलय थे। मुद्गल को निषधपति कल की पुत्री इन्द्रसेना ब्याही थी। ये मुद्गल युद्धकर्ता और वेदर्षि थे। इन्हीं के पुत्र वेद में विख्यात वध्युश्व के पुत्र दिवोदास थे तथा कन्या अहल्या, शरद्वन्त गौतम को ब्याही थी। राम ने अहल्या का उद्धार किया था और दशरथ ने दिवोदास को शंवर असुर से युद्ध करने में सहायता दी थी। वेद में सुदास को दिवोदास और पिजवन दोनों का पुत्र कहा है। संभव है कि दिवोदास ने उन्हें गोद लिया हो। दिवोदास के पुत्र थे मित्रायुस, पौत्र थे सोम और प्रपौत्र मैत्रेयस। वाजिनेय भरद्वाज (वैदिक ऋषि) के मंत्रों में आया है कि दिवोदास, प्रस्तोक और अभ्यावर्तिन चापमान ने उनका सत्कार किया। दशरथ दिवोदास के समकालीन हैं। भरद्वाज के पुत्र पायु और शुनहोत्र थे। वैदिक ऋषि गृत्समद शुनहोत्र के पुत्र थे। अहल्या के पुत्र शतानन्द सीरध्वज जनक के पुरोहित थे।

कान्यकुब्ज शाखा– इस शाखा में 35वें राजा विश्वामित्र, कुशिक के पौत्र और गाधी के पुत्र थे। ये ऋग्वेद के ऋषि हैं। वशिष्ठ से विश्वामित्र का युद्ध हो गया। पीछे इस युद्ध का विवरण आ चुका है कि हरिश्चन्द्र के पिता सत्यव्रत ने तीन अपराध किए जिससे उसका नाम त्रिशंकु पड़ा और उसे वशिष्ठ के कहने से यौवराज्य से च्युत कर दिया गया। पिता के मरने पर भी उसे राज्य नहीं मिला। राजकाज वशिष्ठ करते रहे। इसी समय कान्यकुब्ज नरेश विश्वामित्र ने इस राज्य पर चढ़ाई की, जिसमें वशिष्ठ ने शवरों और म्लेच्छों की सेना लेकर विश्वामित्र को पराजित कर दिया। विश्वामित्र ग्लानि के मारे लज्जित होकर वन में चले गये। वहां त्रिशंकु ने उनके परिवार की बड़ी सहायता सेवा की। इस पर प्रसन्न होकर विश्वामित्र ने जोड़तोड़ लगाकर अपना और उनका बल संग्रह कर फिर वशिष्ठ से युद्ध किया और उसे हराकर त्रिशंकु को पिता के सिंहासन पर बैठाया। उनके मरने पर हरिश्चन्द्र राजा हुए जिनके काल में शुनःशेप की घटना घटी। जिसमें विश्वामित्र को राजा का विरोध करके शुनःशेप को छुड़ाना पड़ा। संभवतः उसी घटना के बाद वशिष्ठ भी उस राज्य को छोड़कर मूल वंश के राज्य अयोध्या में आ गए और हरिश्चन्द्र को अपना यज्ञ अपास्य-आंगिरस से कराना पड़ा। इसके बाद ही सम्भवतः विश्वामित्र ने राज संन्यास ले लिया था। राजर्षि तो वे थे ही, ब्रह्मर्षि भी हो गए। इनके बाद उनकी गद्दी पर उनके पुत्र अष्टक और पौत्र लौहि (37) बैठे। सम्भवतः उनके पौत्र लौहि से हैहय तालजंघ ने राज्य छीन लिया। बाद में विश्वामित्र ने ऋग्वेद के तीसरे मण्डल की रचना कर महर्षि पद पाया।

4. यदुवंश-माथुर शाखा में मधु

यदुवंशी हैहय के माहिष्मति वंश दक्षिण-मालव में राजा दुर्जय। दुर्जय के पुत्र सुभ्रतीक (40) को प्रतर्दन और सगर ने पराजित कर इस हैहयवंश को नष्ट कर दिया।

विदर्भ की चेदि शाखा में सुबाहु (28) अंतिम नृप। आगे इस वंश का पता नहीं मिलता।

तुर्वशु का मरुत्तवंश (उत्तरी बिहार)–मरुत्त का यह प्रतापी वंश था। मरुत्त महाप्रतापी प्रसिद्ध यज्ञकर्ता थे। ये निःसंतान हुए, इसलिए पौरव दुष्यंत को गोद लिया, जिन्होंने शकुन्तला से भरत को जन्म दिया। जिनका अंधे ऋषि दीर्घतमस ने इन्द्राभिषेक किया। परन्तु भरत के बाद; राम से कोई 14-15 पीढ़ी पहिले यह वंश समाप्त हो चुका था।

द्रुह्युवंश (पंजाब)-राम से 12 पीढ़ी पूर्व मान्धाता ने इसे नष्ट किया।[39]

आनववंश औगशाखा–लोमपाद (39) दशरथ के मित्र।[40] आनववंश-उत्तर-पश्चिम शाखा में युधाजित (38) दशरथ की पत्नी कैकई के भाई, भरत के मामा।

यह राज्य इसके बाद शत्रुओं ने नष्ट कर दिया। फिर भरत पुत्र पुष्कर और तक्ष ने उसे पाया। तक्ष ने तक्षशिला बसाकर राजधानी बनाई और पुष्कर ने पुष्करावती, (पेशावर) को बसाकर राजधानी बनाया। पीछे इनके वंशधर भी शायद राज्य खो बैठे। (वायु पु. 88,189-90। विष्णु पु. 4, 47। पद्म 271, 10। अग्नि, 11, 7, 8।)।

इस प्रकार राम के समकालीन राजाओं में–हरिश्चन्द्र, सगर, सुदास, कल्माषपाद, सीरध्वज, कुशध्वज, भानुमन्त, धर्मध्वज (ये सूर्यवंशी) तथा सार्वभौम, धृतिमन्त, सोमक, सुदास, दिवोदास (वैदिक), रुचिराश्व सुधन्वा, वत्स, मधु, दुर्जय, सुप्रतीक, लोमपाद, युधाजित तथा अन्य राजा थे।

राक्षस-असुर राजाओं में और दैत्य वंश में परमप्रतापी रावण, मारीचि, सुबाहु थे।

ऋषियों में थे– वशिष्ठ, विश्वामित्र, वामदेव, ऋष्यश्रृंग, मित्रभुकाश्यप, सामकाश्व, देवराट्, मधुच्छन्दस, प्रतिदर्श, गृत्समद, अगस्त्य, अलर्क, भरद्वाज।[41]

दशरथ और राम दोनों नामों का सबसे प्रथम उल्लेख हमें ऋग्वेद में मिलता है।[42] परन्तु वे अयोध्या से सम्बन्धित नहीं हैं। इसके बाद राम का पूर्ण परिचय वाल्मीकि रामायण से प्राप्त है। इसके अतिरिक्त ब्रह्मपुराण[43], महाभारत[44], विष्णुपुराण और हरिवंश तथा श्रीमद्भागवत में भी है। वाल्मीकि की राम कथा विख्यात है। जिसका सरांश यह है कि दशरथ को वृद्धावस्था तक एक पुत्री शांता के अतिरिक्त कोई संतान नहीं हुई। शांता को दशरथ के मित्र राजा रोमपाद (अंग नरेश) ने गोद लिया। उसका विवाह ऋषि ऋष्यशृंग से हुआ। पीछे ऋष्यशृंग से दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ कराया, जिसके फलस्वरूप राम (कौशल्या), लक्ष्मण-शत्रुघ्न (सुमित्रा), भरत (कैकई) उत्पन्न हुए। किशोर वय में राम लक्ष्मण को विश्वामित्र अपने सिद्धाश्रम में ले गए, जहां उन्होंने राम लक्ष्मण को शस्त्रास्त्र की शिक्षा दी, वहीं इन्होंने ताड़िका राक्षसी और सुबाहु को मारा, मारीचि को परास्त किया। तदन्तर मिथिला जाकर जनक सीरध्वज के स्वंयवर में धनुष भंग कर सीता को विवाहा, साथ ही सीरध्वज की भतीजियों से शेष तीनों भाइयों के ब्याह हुए। यहीं राम का हैहय वंश के विध्वंसकारी परशुराम से साक्षात हुआ। राम सपत्नीक कुछ दिन अयोध्या रहकर, फिर कुछ दिन मिथिला रहे। पीछे जब भरत शत्रुघ्न ननिहाल गए हुए थे, दशरथ ने राम का यौवराज्य अभिषेक करना चाहा, जिस पर विमाता कैकई ने मंथरा दासी के परामर्श से दशरथ द्वारा पूर्व दत्त वरों के आधार पर 14 वर्ष के लिए राम वनवास और भरत के लिए राज्य मांग लिया। राम के वनवास जाने पर दशरथ का दुःख से प्राणान्त हो गया।[45] भरत जब राम को लौटाने में असमर्थ हुए तो वे उनके प्रतिनिधि रूप राज्य करने लगे। राम कुछ दिन चित्रकूट रहकर दण्डकारण्य में चले गए।[46] वहां पंचवटी में रहे, तथा जनस्थान में अगस्त्य से मिले।

राम चित्रकूट में 10 मास और पंचवटी में 12 वर्ष रहे, यहां मनुष्यभक्षी राक्षस रहते थे, उन्हें मारा। अगस्त्य ने सर्वप्रथम विन्ध्य और महाकान्तार को पार कर दक्षिण में इल्वल राक्षस को मारकर उपनिवेश स्थापित किया था। वैदर्भी लोपामुद्रा इनकी पत्नी थी। दोनों वेदर्षि थे। इन्होंने अरब समुद्र के जलदस्युओं को नष्ट कर जल व्यापार निष्कंटक किया (ऋग्वेद)। लोपामुद्रा ने राम के मित्र अलर्क को आशीर्वाद दिया।

यहीं रावण भगिनी सूर्पनखा और खरदूषण से उनका विग्रह हुआ, पीछे रावण ने सीता हरण किया। इसी समय मारीचि वध हुआ, और फिर सीता की खोज में ऋष्यमूक पर पंपा सरोवर तट पर सुग्रीव, हनुमान से भेंट कर बाली को मार, सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा बनाया।[47] पीछे हनुमान से सीता की खोज करा समुद्र पर सेतु बांध लंका पर अभियान किया, जहां घोर युद्ध

में रावण सपरिवार मारा गया तथा सीता का उद्धार कर और मित्र विभीषण को लंका का राज्य दे, राम अयोध्या लौटे।[48] पन्द्रहवें वर्ष के ठीक प्रथम दिन राम से भरत की नन्दिग्राम में भेंट हुई। पीछे अयोध्या में राम का राज्याभिषेक हुआ। तदनन्तर अपवाद के भय से राम ने सगर्भा सीता को वन में त्याग दिया, जहां ऋषि वाल्मीकि ने उसे आश्रय दिया। वहीं सीता के लव-कुश पुत्र हुए, जिन्हें ऋषि ने संस्कृत किया, तथा रामचरित लिखा।

शत्रुघ्न ने यादव भीम सात्वत के आग्रह से मथुरा के शासक लवणासुर को मार, मथुरा अधिकृत की। पीछे राम ने सीता की स्वर्ण मूर्ति बना यज्ञ किया। भरत के मामा को गन्धर्वों ने मार डाला था, इससे भरत ने गन्धर्वों को मार कैकय देश अधिकृत किया। समय पाकर और भी अनेक राज्य राम के परिजनों ने जय किए। राम ने कुश को युवराज बनाया।[49] शत्रुघ्न के दो पुत्र हुए, सुबाहु और शत्रुघाती। भरत के पुष्कर और तक्ष। लक्ष्मण के अंगद और चन्द्रसेन। पीछे तक्ष ने तक्षशिला और पुष्कर ने पुष्करावती में, अपने राज्य स्थापित किए।[50] कुश ने विन्ध्य के दक्षिणांचल में कुशस्थली में भी एक राज्य स्थापित किया। लव को उत्तर कोशल राज्य पृथक करके दिया राजधानी श्रावस्ती हुई। लव ने लवकोट (लाहौर) बसाया। चन्द्रसेन (चन्द्रकेतु) चन्द्रावती, और अंगद मल्लदेश के राजा हुए।[51] सुबाहु को मथुरा का और शत्रुघाती को विदिशा का राज्य मिला। इस प्रकार राम ने अपने और भाइयों के आठों पुत्रों को राज्य बांटा। राम ने शत्रुघ्न, सुग्रीव, विभीषण आदि सब मिलाकर ग्यारह लोगों को अपने बाहुबल से राज्य जीतकर दिए और उनका राज्याभिषेक किया। इस तरह अंग, बंग, मत्स्य, श्रृंगवेरपुर, काशी, सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, दक्षिण कौशल, किष्किन्धा और लंका राज्य राम की मित्र शक्तियां थीं।

रामचरित्र अत्यंत उदात्त और दैवी गुणों से परिपूर्ण है। वे लोकोत्तर आदर्श पुत्र, पति, पिता, मित्र और नृपति रहे। उनका शौर्य, रण-पांडित्य और दृढ़-चित्तता असाधारण थी। तथापि राम अपने जीवन में दुखी रहे। युवराज होते ही बनवासी हुए। बनवास काल में सीता विछोह और रावण विग्रह की विपत्तियां आईं। अयोध्या लौटने पर सीता को त्यागना पड़ा, पत्नी और पुत्र सुख से वंचित रहना पड़ा। पीछे घटनावश लक्ष्मण को भी त्यागना पड़ा। जिससे दुखी हो लक्ष्मण को सरयूगर्भ में जलमग्न हो प्राणघात करना पड़ा। पीछे उनके दुख से दुखी राम, भरत, शत्रुघ्न तीनों को सरयू के गुप्तारघाट में आत्मघात करना पड़ा।

5. वाल्मीकि और उनकी रामायण

रामचरित सम्बन्धी जितने ग्रंथ संस्कृत और वर्तमान भारतीय भाषाओं में हैं, उतने कृष्ण और बुद्ध को छोड़ और किसी एक व्यक्ति के विषय में नहीं लिखे गए। बौद्ध ग्रन्थों में भी 'राम' का वर्णन बहुत है तथा एक ग्रन्थ 'दशरथ जातक' तो बहुत ही प्रसिद्ध है जिसमें राम कथा अधिकांश में ज्यों की त्यों लिखी है। जैन ग्रंथों में भी राम चर्चा बहुत है। एक जैन रामायण भी है। अपभ्रंश में जैन विद्वानों ने रामचरित पर बड़े काव्य लिखे हैं, जिनमें स्वयंभू कवि कृत रामायण अप्रतिम है। विविध पुराणों में तो रामचर्चा है ही। परन्तु रामचरित का सबसे अधिक प्रमाणिक सांगोपांग वर्णन वाल्मीकि रामायण में ही है। वाल्मीकि रामायण रामचरित की विश्व-विश्रुत सर्वाधिक प्राचीन, सर्वाधिक प्रामाणिक, सर्वाधिक सांगोपांग पूर्ण पुस्तक है।

कहा जाता है कि वाल्मीकि राम के जीवन काल में जीवित थे। उन्हीं के आश्रम में अयोध्या से निर्वासित भगवती सीता ने दो पुत्रों लव-कुश को जन्म दिया और निर्वासन के बारह वर्ष व्यतीत किए। वाल्मीकि ने राम के जीवन काल में ही रामायण की रचना की, तथा उसे रामात्मज लव-कुश को कण्ठस्थ कराया। कालान्तर में जब राम ने नैमिषारण्य में, जो वर्तमान सीतापुर से सोलह मील दूर एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है, यज्ञ किया, तब वाल्मीकि ने लवकुश के द्वारा नैमिष में रामायण का गान कराया। इस गान को राम ने सुना। सीता का शरीरान्त भी वाल्मीकि के आश्रम में ही हुआ[52]।

परन्तु वाल्मीकि रामायण की रचना राम के जीवन काल में होना सर्वथा असंभव है। निस्संदेह वाल्मीकि रामायण बुद्ध और पाणिनि से पूर्व का ग्रन्थ है। परन्तु यह ग्रन्थ ई. पू. सातवीं शताब्दी में आज से कोई 2600 वर्ष पूर्व लिखा गया है। इस समय यह ग्रन्थ तीन पाठों में उपलब्ध है। यद्यपि तीनों पाठों में सूर्य वंश की प्राचीन

वंशावली का कुछ भाग थोड़ा विकृत हो गया है, फिर भी प्राचीन इतिहास के लिए यह अत्यंत उपादेय ग्रन्थ है। फ्रांस के प्रसिद्ध पुरातत्वविद् स्वर्गीय श्री लेबी ने इस ग्रन्थ के महत्व पर प्रकाश डाला है। यह बात भी अब प्रमाणित हो चुकी है कि बाल-काण्ड और उत्तर काण्ड मूल रामायण में नहीं थे। इन्हें ई. पू. तीसरी शताब्दी में जोड़ा गया। मूल ग्रन्थ में पांच काण्ड बारह हजार श्लोकों में थे।[53] रामायण की फलश्रुति छठे काण्ड के अंत में है। फिर भी सातवां कांड काफी प्राचीन है। भदन्त अश्वघोष (प्रथम शताब्दी),[54] भास (प्रथम शताब्दी), कालिदास (पांचवी शताब्दी), भवभूति (आठवीं शताब्दी) ने इस कांड की घटनाओं को उद्धृत किया है।[55] निरुक्त व्याख्याकार दुर्ग ने तो वाल्मीकि रामायण से श्लोक भी उद्धृत किए हैं। वाल्मीकि रामायण के अनेक उद्धृत श्लोक तथा उनकी छाया महाभारत में है।

'अपिचायं पुरागीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि।
न हन्तव्याः स्त्रिय इति यद् ब्रवीषि प्लवंगम।'

(रामायण युद्धकाण्ड 81।28, और महाभारत द्रोणपर्व अ. 143।85) महाभारत के नलोपाख्यान में ऐसे अनेक श्लोक हैं। वाल्मीकि को राम का समकालीन तो कहा ही गया है, भील या डाकू एवं नीच जाति का भी बताया गया है। आजकल भंगी अपने को वाल्मीकि की संतान कहते हैं, अपनी जाति भी वाल्मीकि बताते हैं। परन्तु ये सारी ही बातें निराधार हैं। राम के समकालीन किसी वाल्मीकि नाम के ऋषि का कोई अस्तित्व नहीं है। उनका आश्रम अयोध्या के निकट ही कहा गया है, पर उसकी चर्चा केवल उत्तर-काण्ड में ही है, इससे पूर्व कहीं नहीं, जो प्रक्षिप्त हो सकती है। वाल्मीकि ई. पू. सातवीं शताब्दी के बुद्ध से कोई सौ वर्ष पूर्व के पुरुष हैं। उनका जन्म भृगुवंश में (च्यवन की परम्परा में) हुआ था।[56] वह किसी इक्ष्वाकुवंशी राजा के आश्रित थे। यह अश्वघोष का वचन है जो ईसा की प्रथम शताब्दी में विद्यमान थे। वाल्मीकि उनसे कुछ ही सौ वर्ष पूर्व यह ग्रन्थ लिख चुके थे। तब तक इस ग्रंथ का वर्तमान रूप नहीं बन पाया था और रामायण के केवल पांच काण्ड और 12000 श्लोक ही थे। राम के परिपूर्ण वर्णन का यही सर्व प्राचीन ग्रन्थ है।

सीताराम के यमज पुत्र लव-कुश थे, उन्हें वाल्मीकि ने रामायण का पाठ पढ़ाया और उन्होंने उसका राम के यज्ञ में गान किया, यह भी कुछ विचित्र सी बात है। हकीकत तो यह है कि प्राचीन काल में जो गाने-बजाने का, नट का, नाचने का, या कथा सुनाने का पेशा करते थे– उन्हें 'कुशीलव' कहते थे। कुशीलव का अर्थ है– 'नृत्य के साथ गाने वाले।' ऐसे नाचने-गाने वाले पुरुषों को कौटिल्य भी 'कुशीलव' कहता है।[57] रामायण काल में नट-नर्तक उत्सवों पर नाच-गाकर कथा वार्ता सुनाते थे।[58] सम्भव यही प्रतीत होता है कि ऐसे ही किन्हीं कुशीलव (नटों) ने राम के यज्ञ में सीता व्यथा की कथा सुनाई हो, परन्तु वह कथा वाल्मीकि कृत नहीं हो सकती। यदि वह कोई कथा सुनाई गई थी, तो वह अब नष्ट हो चुकी है। तथा राम कथा का मूलाधार वही कथा होगी, जिसे सम्भवतः वाल्मीकि ने देखा हो, या उसके संबंध में सुना हो।

6. राम एक महान् सांस्कृतिक पुरुष

राम एक धीर-वीर उदात्त और कर्त्तव्यनिष्ठ पुरुष थे। उन्होंने राज-त्याग कर तथा पिता की आज्ञा मानकर जो यश संचय किया, वह तो असाधारण था ही, परन्तु उनका महत्सांस्कृतिक कार्य रावण वध और राक्षस वंश की समाप्ति थी।

लंका बड़ी दुर्धर्ष और सम्पन्न पुरी थी। उसके चार द्वार थे, जिन पर उपल यंत्र (पत्थर फेंकने के यंत्र) लगे थे। किले के चारों ओर जलचर सेवित खाई थी जिसमें अगाध यंत्र द्वारा बल बढ़ाने से शत्रु सेना डूब सकती थी।[59] ऐसे राक्षस राज रावण को आमूल नष्ट करना आसान न था। राम से पहले पांचाल नरेश दिवोदास और दशरथ ने तिमिध्वज शंबर के सौ किले तोड़कर उसको मार डाला था।[60] दिवोदास के भतीजे सुदास ने अनार्य वर्चिन को मार और भेदादि महासेनानायक को समूल नष्ट कर भारत में अनार्य बल को तोड़ दिया था। अब राम ने रावण को मार कर भारत के दक्षिणांचल ही को नहीं, मेडागास्टर से आस्ट्रेलिया तक के समस्त द्वीप समूहों और समुद्र तटों को अनार्य प्रभाव से मुक्त कर दिया था।

इस तरह शंबर, वर्चिन और रावण का निधन होने से पम्पा, मलय महेंद्र, लंका और अफ्रीका तक आर्य प्रभाव हो गया। अगस्त्य ऋषि पहले ही दक्षिण में आर्य

उपनिवेश स्थापित कर चुके थे। अब राम के द्वारा यह महत्कर्म हुआ, जिसमें राम का यश दिग्रदिगन्त तक फैल गया। वाल्मीकि ने इसी से तो कहा है :–

यावत्स्थस्यैतिरयः सरितश्चमहीतले।
तावद्रामायण कथा लोकेषु प्रचरिष्यति।

रामायण के अतिरिक्त महाभारत, ब्राह्मण ग्रंथों तथा पुराणों में तो राम वर्णन आया ही है, संस्कृत साहित्य में भी माघ, कालिदास, भवभूति, राजशेखर, दामोदर मिश्र आदि ने राम कथा का आश्रय ले लेखनी धन्य की है।

7. राम मूर्ति पूजन

यह एक बड़े ही महत्व और आश्चर्य की बात है कि राम की मूर्ति अथवा कोई चिह्न भूमण्डल भर में पूजित है। विश्व भर में राम माहात्म्य कैसे विस्तृत हुआ, यह समझ में नहीं आता है। सबसे प्रथम भास ने 'प्रतिमा' नाटक में प्रतिमागृह में राम के पूर्वजों की प्रतिमा की स्थापना का उल्लेख किया है।[61] दूसरे किसी ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं पाई गई। भास का काल मसीह पूर्व प्रथम शताब्दि है। भवभूति,[62] लिखता है कि राम अयोध्या को लौटते समय पुष्पक विमान से सीता को अपने घटनास्थल दिखला रहे हैं। दशरथ जातक की कुछ राम सम्बन्धी घटनाएं सांची और बड़ौत की प्राचीन प्रस्तर कला में अभिव्यक्त की गई हैं।

वराहमिहिर वृहत्संहिता में राम-मूर्ति 120 अंगुल की बनाई जाने का विधान कहता है,[63] प्राचीन श्रावस्ती (सहेत-महेत) के ध्वंसों में भी हनुमान, लक्ष्मण, सूर्पनखा संवाद सम्बन्धित मिट्टी की मूर्तियां– जो संभवतः गुप्तकालीन हैं, मिली हैं। एक मूर्ति में सूर्पनखा पृथ्वी पर घुटने टेके, हाथ जोड़े लक्ष्मण से विवाह की याचना कर रही है।[64] देवगढ़ देवालय में, जो छठी शताब्दी का निर्मित है, और गुप्त-कालीन है, रामचरित से सम्बन्धित अनेक मूर्तियां प्रदर्शित हैं। इन मूर्तियों में राम बाएं हाथ में धनुष लिए, दाहिने हाथ से अभय मुद्रा प्रकट कर रहे हैं। राम मयंक आसीन हैं, सीता खड़ी हैं। दाहिनी ओर लक्ष्मण सूर्पनखा के केश पकड़ प्रहार कर रहे हैं। अन्य घटनाएं भी हैं।

(मध्यप्रांत) 'सीरपुर' तथा 'ग्वालियर' से उत्तर-पढ़ावली के भग्न दुर्ग में 10वीं शताब्दी के एक शिव मंदिर में पत्थर पर राम संबंधी चित्र खुदे हुए हैं। 'परखाम' में गुप्तकालीन हनुमान की विराटकाय मूर्ति मिली है।[65] पहाड़पुर (बंगाल) में 9वीं शताब्दी के कुछ राम सम्बन्धी चित्र खोदे हुए हैं, जिनमें वानर पत्थर उठा-उठाकर सेतुबन्ध के काम में लगे हैं तथा बाली-सुग्रीव युद्ध प्रदर्शित है। राजशाही जिले के गणेशपुर गांव से पालकालीन मूर्तियां राम, सीता, लक्ष्मण और हनुमान की मिली हैं।

दक्षिण एलौरा के 8वीं शताब्दी के गुहा स्थित कैलाश मंदिर में 42 पौराणिक घटनाएं पत्थर पर खुदी हैं जिनमें रावण द्वारा कैलाश उत्थान का दृश्य भी अंकित है। ऐसा ही एक गुप्तकालीन फलक मथुरा में सुरक्षित है। पद्दू कदल के विरूपाक्ष मंदिर में जो 470 ई. का है, पल्लवकालीन रामचरित संबंधी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। विजय नगर के विट्ठल स्वामी मंदिर में, तथा जिञ्जी दुर्ग के मंदिर के द्वार स्तम्भों पर भी रामचरित संबंधी दृश्य अंकित हैं। 15वीं 16वीं शताब्दी की रामावतार संबंधी कांसे की तथा आधुनिक हाथी दांत की बनी राम, लक्ष्मण, सीता की मूर्तियां बहुत हैं। यद्यपि गुप्तकालीन शिलालेखों में राम के विष्णु-अवतार होने का कहीं भी आभास नहीं मिलता है, परन्तु कालीदास ने रघुवंश[66] में लिखा है कि रावण को मारने के लिए विष्णु ने राम का अवतार लिया। उसने हरि विष्णु को राम-नाम से संबोधित किया है।[67] इसके बाद तो राम को विष्णु अवतार मान ही लिया गया, तथा सर्वत्र ही उनकी पाषाण प्रतिमाएं प्राप्त हैं। इन सब मूर्तियों में राम के एक हाथ में बाण और धनुष हैं। ऐसी ही एक 10वीं शताब्दी की मूर्ति बर्मा के 'पैगन' स्थित 'नाथलिंग' के मंदिर की ताख में रखी है। राम संबंधी उल्लेख वाला सर्वप्रथम शिलालेख गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त का एरण में है, जिसमें राम का संकेत है।[68] भारत के अतिरिक्त मध्य एशिया, चीन, बर्मा, स्याम, चम्बा, कम्बोडिया, जावा, थाइलैण्ड में राम संबंधी मूर्तियां, और लेख मिले हैं।

चम्बा के प्राचीन शिला-लेखों में दशरथ पुत्र राम के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए 'रामकीर्ति' का उल्लेख है। कम्बोडिया के 6ठी शताब्दी के एक शिलालेख से प्रकट है कि वहां रात दिन रामायण, महाभारत, पुराण का पाठ होता था। थाइलैण्ड की राजधानी बैंकाक के

राज मंदिर की दीवारों पर रामचरित संबंधी झाकियां अंकित हैं।

बर्मा में 9वीं शताब्दी में 'रामावत्ती' की स्थापना राम के नाम पर हुई। 'अमरपुर' बर्मा के बिहार में राम, लक्ष्मण, सीता तथा वानरसेना अंकित है। कम्बोडिया के 'हेमश्रृंगगिरि' में जगत्प्रसिद्ध मंदिर पर रामायण संबंधी चित्र अंकित हैं। मध्य जावा के 9वीं शताब्दी के 'प्राम्वानम्' के मन्दिर में ऐसे ही चित्र हैं। प्राम्वानम् में रामायण के 20 संदर्भों का भव्य तक्षण है।

योरोप के देशों में भी राम का प्रभाव प्रकट होता है। योरोप की सारी ही जातियां किसी न किसी अंश में सूर्यवंश, भरतवंश और राम के नाम को सांस्कृतिक रूप में साथ ले गई हैं। खासकर जर्मनी और इंगलैण्ड में तो राम से संबंधित बहुत नाम हैं।[69] फ्रांस के भी कुछ नगर और गांव राम की ध्वनि प्रकट करते हैं।[70] इसी प्रकार स्पेन[71] स्वीडन[72] नार्वे और स्कण्डीनेविया[73], ग्रीस[74] और इटली[75] में भी हैं।

मानव शास्त्रियों ने मनुष्य जाति को पांच भागों में विभक्त किया है। रंगों के हिसाब से ये गोरे, पीले, काले, बादामी और लाल हैं। इनमें गोरी जाति प्रधान है, मिस्र, असीरिया, बैबिलोनिया, फिनिशिया, फारस, यूनान, इटली, भारत, हिब्रू जातियां गोरी हैं। गोरी जाति की तीन शाखाएं हैं आर्य, सैमेटिक और हैमेटिक। आर्य सर्वप्रधान हैं। आर्यों के अंतर्गत भारतीयों, जर्मनों, रूसियों, अंग्रेजों और फ्रांसीसियों की गणना है। इसी से इन सब जातियों की परम्पराओं में इस आर्य नेता, विजेता मर्यादा पुरुषोत्तम राम का किसी न किसी रूप में सांस्कृतिक मिश्रण है।

8. होमर और वाल्मीकि

ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रीक कवि होमर ने अपने काव्य इलियड में रामायण से ही प्रेरणा ली है, और इसका समर्थन अब अनेक विद्वान भी करते हैं। अब आप इलियड और रामायण के कथानक की समता पर विचार कीजिए। इलियड के मुख्यपात्र दो भाई हैं। जिनका आपस में अत्यंत प्रेम है। रामायण में भी, राम और लक्ष्मण ऐसे ही हैं। इलियड में उन दोनों भाइयों को उनका पिता आरगल अपने राज्य से निकाल देता है, इधर राम लक्ष्मण को भी वनवास होता है। इलियड का नायक मेनेलिस हेलेन को उसके पिता द्वारा आयोजित स्वयम्वर में सबको जीतकर अपनाता है, उसी प्रकार राम धनुषयज्ञ में सीता को वरण करते हैं। राज्य निकाले के बाद ट्राय के बादशाह प्रायाम का पुत्र पैरिस, मेनेलिस की अनुपस्थिति में उसके घर जाकर उसकी पत्नी को चुराकर समुद्रपार ट्राय नगर में ले जाता है। उसी प्रकार जैसे राम के पीछे रावण सीता को चुराकर समुद्र पार लंका में ले जाता है। ट्राय के महल जमीन से बहुत ऊपर तक बसे थे, जैसे कि लंका की राजधानी भी त्रिकूट पर साधारण सतह से बहुत ऊपर बसी थी।

स्पार्टा के बादशाह मेनेलिस ने ग्रीक राजकुमार की सेना लेकर बारह सौ जहाजों से आग्नेय समुद्र पार करके ट्राय को घेरा था, उसी प्रकार, जैसे राम ने सुग्रीव की वानर सेना लेकर हिन्द महासागर पार कर लंका को घेरा था।

ट्राय के युद्ध में असंख्य यूनानी सेना थी, जिसमें घुड़सवार और रथी थे। ऐसी ही राम की सेना अपार थी उसमें रथ भी थे। ट्राय का घेरा अमेनन के नेतृत्व में हुआ था, जिसे यूनान के राजा ने विश्वकर्मा के बनाए अस्त्र दिए थे, तथा उसे इन्द्र ने अपने रथ-घोड़े-सारथी दिए थे। ऐसे ही लंका में राम ने इन्द्र से रथ, घोड़े तथा सारथी प्राप्त किए, और विश्वामित्र के दिए दिव्य अस्त्रों का प्रयोग किया। ट्राय के सेनापति के वाण भी मेघनाद के वाणों की भांति उसके तरकस में लौट आते थे। हनुमान की गर्जना की भांति ही एक्लस की गर्जना ट्रायनगर की सेना में आतंक उत्पन्न कर देती है। हनुमान ने जैसे लंका के विशाल फाटक को उखाड़ फेंका था, वैसे ही हेक्टर ने ट्राय का मुख्य लोह फाटक उखाड़ फैंका था। ट्राय के युद्ध में अनेक महारथी भारी-भारी पत्थर उठाकर शत्रुओं पर फेंकते हैं, उसी भांति, जैसे रामायण में वानर और राक्षस फेंकते हैं। ट्राय के युद्ध में और लंका के युद्ध में समान रूप से देवता आकाश में बैठकर युद्ध देखते हैं। ट्राय का वीर योद्धा मार्स जब प्लास के हाथों मर कर भूमि पर गिरा, तब सात एकड़ धरती घिर गई। रामायण में भी जब कुम्भकर्ण मर कर गिरा तो उसने बड़े भूभाग को घेर लिया। विभीषण की भांति ट्राय का एन्टेनर पैरिस के दुष्कृत्यों से सहमत न

था, यदि वहां एन्टेनर न होता तो मेनेलिस मारा जाता, उसी प्रकार लंका में विभीषण न होता तो हनुमान का बचना कठिन था। विभीषण की ही भांति एन्टेनर ने भी पैरिस को समझाया था कि वह हेलेना को लौटा दे। अंत में एन्टेनर पैरिस को छोड़कर मैनेलिस से जा मिला। उसी प्रकार, जैसे विभीषण राम से जा मिला। जैसे युद्ध के बाद, रावण के मरने पर राम को सीता मिलती है, उसी प्रकार पैरिस के मरने पर मेनेलिस को हेलना मिलती है। राम ने जैसे विभीषण को लंका का राजा बनाया, उसी भांति एन्टेनर ट्राय का राजा बनाया गया।

अब आप विचार लें कि वाल्मीकि और होमर के महान् काव्यों में कितनी समानता है। इतना ही नहीं— कहावतें, मुहावरे, जीव-जन्तु और दृश्यों में भी होमर का महाकाव्य वाल्मीकि की रामायण से बहुत मिलता जुलता है।

राम का काल—अब इस बात पर विचार होना चाहिए कि राम का काल क्या है। हमारे विचार से मनु-राम का काल त्रेता युग है। इसलिए राम त्रेता-द्वापर की संधि में उपस्थित थे। यह काल बहुत करके मसीह पूर्व बारहवीं या तेरहवीं शताब्दी है। अर्थात् अब से 3250 वर्ष पूर्व राम का राज्य-काल है।

वैवस्वत मनु से राम तक सूर्य वंश की 39 पीढ़ियां होती हैं। इनमें शाखाओं वाले 26 नाम नहीं जोड़े गए हैं। यही काल त्रेता युग का भोग काल है। आधुनिक विद्वानों का भी लगभग यही निर्णय है। यह निर्णय बहुत खोज जांच से किया गया है; यहां विस्तार से इसका विश्लेषण नहीं किया जा सकता।

9. विजयादशमी

बहुत काल से आश्विन शुक्ल दशमी को विजयादशमी का उत्सव मनाया जाता है। जिसमें भारत भर में रामलीला के बाद रावण के पुतले धूमधाम से जलाए जाते हैं और माना जाता है कि इस दिन रावण की मृत्यु हुई थी। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह बात सत्य नहीं ठहरती है।

भविष्योत्तर पुराण में यह वर्णन है कि विजयादशमी के दिन शत्रु का पुतला बना कर उसके हृदय को वाण से बींधना चाहिए। यह संभव है कि लोगों ने राम-रावण में अपने वैयक्तिक मित्र-शत्रु भावों को आरोपित करके राम-रावण युद्ध का अभिनय नव रात्रियों के नौ दिनों में करके विजयादशमी का संबंध रावण वध से जोड़ दिया हो। उधर नवदुर्गा की भी वीर-पूजा होती है, जो असुरों का देवी द्वारा हनन करने की मार्कण्डेयपुराण की कथा से संबंधित है।

राम का जन्म चैत में हुआ। संभवतः तभी से वर्ष का आरम्भ चैत्र से माना जाने लगा। एक पुरानी परिपाटी यह भी थी, कि चैत्र से सातवें मास में इन्द्र पूजा होती ही थी।[76] पर्शियन प्राचीन इतिहास में भी ऐसा ही उल्लेख है। उस काल में भारत के अंतर्गत नौ द्वीप थे। प्रत्येक द्वीप को स्वराष्ट्र और समस्त भारत के अधीश्वर को सम्राट कहते थे। वर्ष के हर 7वें मास में स्वराष्ट्र एकत्र होकर सम्राट का अभिवादन करते थे और शपथ लेते थे।[77] दशहरा वही त्यौहार है। हो सकता है कि रावण को जय करने के बाद राम को त्रिलोकपति की उपाधि मिली हो और आश्विन में उनका ऐन्द्राभिषेक हुआ हो। योरोप, अमेरिका और ईरान में भी यह उत्सव मनाया जाता था। मैक्सिको में तो 'राम सीतव' उत्सव मनाने वाली एक जाति अभी भी है। ईरान व योरोप के अनेक स्थानों पर सातवें मास में मित्र की उपासना होती थी।[78]

मित्र सूर्य ही का नाम है। उन्होंने अपने सगे भाई वरुण पर अभियान किया था, जो एलम इलावर्त का अधिपति हो गया था और असुरों का 'इष्टखर' (इष्टदेव) बन गया था तथा अपनी पूजा प्रचलित की थी।[79] वरुण का सहायक इन्हीं का भतीजा सूर्यपुत्र यम था, जो नरक (Dead Sea) क्षेत्र का अधिपति था। यम की तिथि दशमी है, और वाहन भैंसा है। इसी कारण संभवतः दशहरे पर भैंसा मारा जाता है।

वाल्मीकि रामायण रावण की निधन तिथि का ठीक-ठीक वर्णन नहीं करती। परन्तु हमें ऐसे आधार प्राप्त हैं कि इसका हम कुछ अनुमान लगा सकते हैं।

जिस समय राम को रावण पर चढ़ाई करने की आवश्यकता हुई, उस समय उनके वनवास का 14वां वर्ष चल रहा था। वाल्मीकि ने वर्षा ऋतु में सीताृविरह में राम विलाप का वर्णन किया है। लंकाकाण्ड से यह भी प्रकट है कि वर्षा के चार मास में कोई सीता को ढूंढने नहीं गया। अनुमान होता है कि आश्विन माह से

पहले सीता की खोज नहीं हुई। यह खोज कोई आसान भी न थी। जब सुग्रीव ने सीता की खोज में वानर दल रवाना किया, तो बड़ी-बड़ी नदियों तथा द्वीपों और प्रांतों के नाम गिना कर यूथ भेजे थे। देशों की परिगणना करते हुए उन्होंने शक, पुलिन्द, वनभूमि, कलिंग, सुम्भ, विदेह, मलय, काशी, कोशल, मगध, दण्डकूल, वंग, अंग, उड़ीसा, चेदी, दशार्ण, ककुर, भोज, पाण्डय, विदर्भ, अष्टिक, माहिष्मती, उण्ड्र, द्रविड़, पुड़ाड्र, केरल तथा पर्वतों में यामुन, मलय, विन्ध्य, हिमाचल और नदियों में कौशिक, शोष्ठा, यमुना, गंगा, सरयू, नर्मदा, गोदावरी, कावेरी एवं समुद्र मध्यस्थ देशों और द्वीपों का नाम लिया था। इन द्वीपों, पर्वतों और नदियों को देखते अनुमान किया जा सकता है कि सुग्रीव ने असाधारण साज-सज्जा से तैयारी करके वानरों के यूथ देश देशान्तरों को भेजे होंगे। वर्षा ऋतु के बाद दशहरा ही पर्व था। सो संभव है कि दशहरे के दिन ही खोजी दल रवाना हुए हों। कुछ लोगों का मत है कि विजयादशमी के दिन राम ने विजय यात्रा की थी।

हनुमान ने कुछ खोजी दल प्रथम ही भेज दिए थे। जिस पर सुग्रीव ने हनुमान से कहा था–'तुमने तीव्रगति वाले दूत भेजे सो ठीक किया। परन्तु अब और भी शीघ्रता से बड़े-बड़े दूतों को भेजो, उनमें से जो दस दिन में लौटकर न आयेगा, उसे मैं प्राण-दण्ड दूंगा।' पीछे उसने एक मास की अवधि देकर सेनापतियों को भी भेजा, जिनमें स्वयं हनुमान भी थे। इस प्रकार दो मास खोज में गए, माघ में सैन्यदल चला। एक मास में समुद्र पार किया। संभवतः चैत्र या वैशाख में युद्ध हुआ, जो [84] दिन चला, जिनमें से 77 दिन राक्षस-सेना नायक लड़े। फिर 7 दिन तक रात दिन निरन्तर राम-रावण युद्ध हुआ। अनुमान है कि रावण का निधन वैशाख कृष्ण चतुर्दशी या चैत्र कृष्ण अमावस्या को हुआ।

देवदानवयक्षाणां पिशाचोरगरक्षसाम।
पश्यतां तन्महद्युद्धं सप्तरात्रमवर्तत
नवरात्रिन दिसवं न मुहूर्त न चक्षणम्।
रामरावणर्योयुद्धं विराममुपगच्छति। (वाल्मीकि युद्ध.)

राम का जन्म चैत्र शुक्ला नवमी को हुआ। अठारह वर्ष की अवस्था में विवाह हुआ। विवाह के बाद बारह वर्ष अयोध्या में रहे, तीस वर्ष की अवस्था में वनवास हुआ। वनवास काल में दस मास चित्रकूट में रहे तथा बारह वर्ष पंचवटी में निवास किया। लगभग दस मास का काल राम-रावण युद्धाभियान में व्यतीत हुआ। 15वें वर्ष के ठीक प्रथम दिन नन्दिग्राम में भरत से मिले। उस समय चौवालीस वर्ष की उनकी आयु थी।

10. सीता का अग्नि-प्रवेश और परित्याग

युद्ध के बाद सीता की अग्नि परीक्षा तथा अयोध्या लौटने पर धोबी के अपवाद से सीता-त्याग के दो महत्वपूर्ण अंश रामचरित से संबंधित हैं। इन दोनों का महाभारत में बिल्कुल वर्णन नहीं है।

जब सीता को विभीषण ने लाकर राम के समक्ष खड़ा किया, तो राम ने कहा–'कल्याणी, युद्ध में शत्रु को हराकर मैंने तुम्हें जीत लिया, आत्म सम्मान की भावना से प्रेरित होकर मैंने रावण को मार डाला है। मैंने अपमान का बदला चुकाकर मनुष्य का कर्तव्य पूरा किया, तुम्हारे चरित्र पर लोग संदेह कर रहे हैं, तुम मुझे वैसी ही अप्रिय लग रही हो; जैसे दुखती आंखों में दीपशिखा। इसलिए तुम जहां तुम्हारा जी चाहे चली जाओ। मेरी ओर से तुम्हें अनुज्ञा है। ये इतनी दिशाएं तुम्हारे लिए खुली हैं, मुझे तुमसे अब कोई सरोकार नहीं।'

तब जानकी ने मुख पर छाए आंसुओं को पोंछकर कहा–'हे वीर' गंवार आदमी जैसे नीच स्त्रियों से बात करते हैं, उसी प्रकार तुम आज मुझसे बात कर रहे हो। तुमने मुझे जैसा समझा है, मैं वैसी नहीं हूं। रावण ने मेरा शरीर जरूर छुआ, पर मैं अवश थी। मेरे हाथ में तो केवल मेरा हृदय था, जो अब भी तुम्हारा है। लंका में मैं कैसे रही; इसका साक्षी तो यह हनुमान है। तुम इस वानर से ही अपने मनोभाव प्रकट कर देते, तो मैं क्यों तुम्हारी याद में जीवित रहती, तभी प्राण त्याग देती। फिर तुम्हें इतना भारी यत्न और प्राण संकट का कष्ट भी न उठाना पड़ता। विवाह के समय पकड़े मेरे हाथ को तुमने नहीं पतियाया। मेरी भक्ति और सदाचार को तुमने उठाकर ताक पर रख दिया। साधारण पुरुष की भांति सारी स्त्री जाति को ही तुमने 'पुरस्कृत' कर डाला। अरे लक्ष्मण वीर, मेरे लिए चिता तैयार करो, अब अग्नि प्रवेश को छोड़ मेरी गति नहीं![80]

महाभारत में अग्नि प्रवेश की कुछ भी चर्चा नहीं है। केवल ऋषियों, देवताओं और पितरों की गवाही को ही काफी समझ लिया गया है। यद्यपि महाभारत रामायण के बाद की है। अवश्य ही यह कथा पीछे से रामायण में जोड़ी गई है। शम्बूक वध की कथा भी पीछे से जोड़ी गई है।

11. विष्णु-अवतार राम

विष्णु नाम ऋग्वेद में सूर्य का आया है। यह सूर्य कश्यप-अदिति पुत्र थे, इनके बहुत युद्ध असुरों से हुए। पीछे इन्हें देवता माना जाने लगा। ऋग्वेद में इन्द्र के बाद विष्णु ही का अधिक मान है। ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ तथा तैत्तिरीय आरण्यक में विष्णु, देवमण्डल में गण्यमान्य पुरुष हैं। महाभारत विष्णु को परमात्मा नारायण कहता है, यद्यपि विष्णु के मन्दिर कम हैं। शेषशायी विष्णु भुवनेश्वर, जगन्नाथपुरी तथा खजुराहो में हैं। वाल्मीकि रामायण में राम विष्णु के अवतार नहीं हैं, परन्तु उसके नवीन संस्करणों में अवतारवाद की चर्चा है। महाभारत के नारायणीय खण्ड में दस अवतार माने गए हैं। उनमें राम भी एक है। वायु, वाराह, अग्नि और भागवत पुराणों में भी दस अवतार हैं। हरिवंश में छै हैं। राम, कृष्ण सर्वत्र विष्णु अवतार माने गए हैं। पर पूजा कृष्ण की अधिक है और प्राचीन है। पातंजल महाभाष्य में राम का नाम नहीं है। भवभूति राम को अवतार मानता है। माधवाचार्य ने सन् 1264 में नरहरितीर्थ को सीताराम की मूर्ति लाने को जगन्नाथपुरी भेजा था, तथा बद्रीनाथ से वे स्वयं राम की मूर्ति लाए थे।

जहां वासुदेव कृष्ण को पूजने का उल्लेख ई. पू. छठी शताब्दी में प्राचीनतम81 मिलता है, वहां राम का नहीं मिलता। गुप्त महाराज चन्द्रगुप्त पांचवीं शताब्दी में विष्णु ध्वज-स्थापन करते हैं। चौथी पांचवीं शताब्दी वाला आडवार तामिल संत संघ विष्णु महिमा गाता है। छठी शताब्दी में वराहमिहिर विष्णु का पूजन लिखता है। महाभारत के व्यूह पूजन में आलंकारिक वर्णन राम परिवार का है। 1013 ई. में जैन ग्रंथ धर्म परीक्षा ने राम को अवतार माना है। गीता में 11वें अध्याय में जो विराट रूप कहा गया है, वह विष्णु ही का है।

ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी में 'वाल्मीकि रामायण', 'जय' तथा 'मनुस्मृति' तीन ग्रन्थ बने। 'जय' बढ़ते बढ़ते 'भारत' फिर 'महाभारत' हो गया। रामायण में भी बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड पीछे से जोड़े गए। मनुस्मृति में भी वृद्धि हुई। पीछे पुराण बने। विष्णु पुराण पहली दूसरी शताब्दी के लगभग बना।

चौदहवीं शताब्दी के मध्य में भारत में स्वामी रामानुज ने भक्ति मार्ग का प्रचलन करके विष्णु पूजा आरम्भ की। इन्हीं की शिष्य परम्परा में 15वीं शताब्दी में रामानन्द ने राम नाम का माहात्म्य स्थापित किया। इनकी शिष्य परम्परा में कबीर, तुलसी हुए। तुलसी ने राम के धर्म का सांगोपांग वर्णन किया।

12. तुलसी के राम

तुलसी बड़े भारी पंडित थे। उनके विचार स्पष्ट और निश्चल थे। एक कवि की दृष्टि से तुलसी भारतीय संस्कृति की कीर्ति हैं। उन्होंने रामचरित में लोकधर्म चित्रित किया है। तुलसी की जोड़ का सत्कवि विश्व में दूसरा नहीं है। राम के प्रति उनकी अपरिसीम तल्लीनता उनकी सम्पूर्ण कवित्व सत्ता से परे की वस्तु है। ईस्वी सन् 1573 से 1626 तक का 53 वर्ष का काल तुलसी काल है। इस काल में तुलसी से प्रभावित हिन्दू साहित्य भारतीय हिन्दुओं के जीवन में प्रविष्ट हो गया। तुलसी ने जो शुद्ध दक्षिणमार्गी सीताराम की मूर्ति स्थापित की, वह हिन्दू जनता के भीतर-बाहर सब ओर उनके जीवन में रम गई। आज का हिन्दू धर्म तुलसी का धर्म है, और राम उनका इष्टदेव है। तुलसी के आदर्शों पर समाज में सहिष्णुता, मर्यादा, धैर्य, संगठन शौर्य और आशा का बीज उगा, तुलसी के राम के झण्डे के नीचे शिवाजी ने दक्षिण में मराठा राज्य स्थापित किया। राजसिंह ने मुगलों को ध्वस्त किया। तुलसी के राम का बल पाकर राठौड़ों ने तीस वर्ष मुगलों से लोहा लिया। इन्हीं तुलसी के राम के आसरे छत्रसाल ने केवल पांच सवारों और पच्चीस पैदलों की सेना लेकर दो करोड़ वार्षिक आय का विशाल राज्य स्थापित किया। तुलसी के रामाश्रय होकर ही पेशवाओं ने मुगल साम्राज्य को ध्वस्त कर 500 वर्षों से खोए हिन्दू साम्राज्य की फिर से स्थापना की। ये तुलसी के हिन्दू संगठन के महान् परिणाम थे कि दो ही शताब्दियों के भीतर हिन्दू साम्राज्य भारत में स्थापित हो गया।

13. हिन्दी साहित्य में रामचरित

तुलसी के रामचरितमानस के बाद रामचरित पर हिन्दी में बहुत साहित्य प्रकाशित हुआ। काव्यों में जानकीप्रसाद महन्त का 'सुजसकर्दव' (1877) रघुराजसिंह का 'राम स्वयंवर' (1879), रमणबिहारी की 'रामकीर्ति-तरंगिणी' (1883), श्रीराम का 'प्रेम सरोवर' (1884), लाला सीताराम का 'सीतारामचरितमाला' (1885), रमण बिहारी का 'रामचन्द्रसत्योपाख्यान' (1886), जानकीप्रसाद महन्त की 'रामनिवास रामायण' (1889), कालिकाप्रसाद सिंह की मानसतरंगिणी (1896) और अक्षयकुमार की रसिक विसाल रामायण (1911)।[82]

रामचरित पर नाटक भी लिखे गए, पर वे साधारण थे। जानकी प्रसाद महन्त का रामरसायन (1911), प्रयागनारायण मिश्र का राघव गीत (1911), भगवानदीन की रामचरणांक माला (1912), रामचरित उपाध्याय की रामचरित्र चन्द्रिका (1919), राधेश्याम की रामायण (1919), रामचरित उपाध्याय की रामचरित चिन्तामणि (1920), मैथिलीशरण की साकेत (1932) व पंचवटी (1925), शिवरत्न शुक्ल की भरत भक्ति (1932), अयोध्यासिंह उपाध्याय का वैदेही बनवास, बलदेवप्रसाद मिश्र का कौशल किशोर (1935), शामनाथ का रामचन्द्रोदय। ये रचनाएं आधुनिक काल की हैं।

परन्तु मध्य काल में तुलसी के बाद सर्वश्री केशवदास, अग्रदास पयहारी, नाभादास, प्राणचन्द्र चौहान, हृदयराम, बलदास, लालदास, बालभक्त, रामप्रियाशरण, प्रियादास, कलानिधि, विश्वनाथ महाराज, प्रेमसखी, कुशलमित्र, रामचरणदास, मधुसूदनदास, कृष्णनिवास, गंगाप्रसाद आदि अनेक कवि हुए, जिन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा से रामचरित गाया।

<u>संदर्भ</u>

1. ब्रह्म, 7, 226। आदि ब्रह्म 7। पद्व, सृष्टि 8। विष्णु, भाग 4, 2। भागवत भाग नवां 1, 13, 5, 6। देवी भागवत भाग 7 अ. 8, 9। मार्कण्डेय 20। आग्नेय प्रथम 67। ब्रह्माण्ड, लिंग पुराण, ब्रह्म 138। स्कन्द पु. में ब्रह्म 104। वाल्मीकि रामायण। ब्रह्म 154। ऐतरेय ब्राह्मण, अध्याय 7, 3।
2. वैवस्वत मनु, इक्ष्वाकु, कुक्षि, विकुक्षि, वाण, अनरण्य, पृथु, तृशंकु, धुन्धमार, युवनाश्व, मान्धातृ, सुसन्धि, भरत, असित, सगर, असमंजस, दिलीप, भगीरथ, काकुत्स्थ, रघु, कल्माषपाद, शंखण, सुदर्शन, अग्निवर्ण, शीघ्रग, मनु, पृथुश्रक, अम्बरीष, नहुष, ययाति, नाभाग, अज, दशरथ, राम। (वा, बा. का. 7)
3. महाभारत iii 136, 104, 62; vii 62, 2281, 2।
4. शतपथ xiii 5, 45।
5. यह नाम वंशावली में नहीं है। सम्भवतः यह सुदास का दूसरा नाम है।
6. वायु 88, 78, 116।
7. महाभारत।
8. ऐतरेय ब्राह्मण। यजुर्वेद। पुराण।
9. शतपथ ब्राह्मण।
10. पुराणों के मतानुसार सम्भवतः यह राजा हरिश्चन्द्र शाखा में हुए।
11. मत्स्य पु. 12, 40। पद्म पु. v 8, 144। ब्रह्माण्ड III 48, 9, 10 महाभारत III 106, 8, 831।
12. वाल्मीकि रा., महाभा. शा. पर्व।
13. सीतानाथ प्रधान।
14. ऋग्वेद x 102। महाभा. III 57। 46। महाभा. वनपर्व।
15. महाभारत।
16. महाभारत। परन्तु ऋग्वेद पर वेदार्थ अनुक्रमणि तथा वृहदेवता में इन पुत्रों का विश्वामित्र के कहने से पांचाल सुदास या सौदासों द्वारा मारा जाना प्रमाणित होता है।
17. सीतानाथ प्रधान।
18. देखिए यादव वंशावली। पुराण।
19. शतपथ।
20. वायु. पु. 89, 1, 2, 6 ; ब्रह्माण्ड iii 6, 4, 1, 6।
21. वाल्मीकि बालकाण्ड अ. 70।
22. भागवत ix 13, 21।
23. वृहदारण्यकोपनिषद में जो सम्राट जनक और याज्ञवल्क्य के समसामयिक और ब्रह्मज्ञानी विख्यात हैं, वे युधिष्ठिर काल के भी बाद के हैं। यह वंश युधिष्ठिर काल के बाद भी चलता रहा।
24. वायु पु. 86, 15, 17। विष्णु iv 1, 18। रामायण 47, 12। भागवत ix 2, 33। ब्रह्माण्ड iii 6, 1 12।
25. मत्स्य पु. 69, 9। पद्म पु. v 23, 10। विष्णु v 1, 34। महाभारत ii 13, 313, 40 iii, xii।
26. ऋग्वेद 4, 30, 18।
27. सुत्तनिपात।
28. शतपथ ब्रा.।
29. रामायण 47, 11, 12।
30. वायु पु. 89, 3।
31. जातक नं. 531 iii 6-1-12।
32. ऋग्वेद x 60, 4।
33. गोपथ I 2, 10।
34. ऋग्वेद I, 83, 7, vi, 20, 10। शतपथ ब्रा. xiii 5, 45।
35. ऋग्वेद IV 38, 1 VII 19, 3।
36. ऋग्वेद v 20, पंचविंश ब्रा. viii 3, 12।
37. तैत्तिरीय 3।10।1, शतपथ ब्रा. vii 13, 16 vii 14।
38. ऋग्वेद x 602। 100, 17। बौधायन श्रोत सूत्र xx 12। ऋग्वेद। 126, 4। ऋग्वेद x 93। 14।
39. हरिवंश, 32, 1837, 8। म. भा. 126, 10465।
40. इस वंश की 29 से 36 तक की पीढ़ियां अज्ञात है। इस वंश के लोमपाद (39) है।

41. पार्जिटर और डॉ. प्रधान के मतानुसार। हरिवंश, ब्रह्म पु.।
42. ऋग्वेद, क्ष्क्ष 27, 4। (दशरथ) ऋ. ╒ 93, 14 (राम)
43. ब्रह्मपुराण 154।
44. म. भा. वन पर्व।
45. राम वन गमन के 6ठे दिन दशरथ का प्रणान्त हुआ। तब उनके शरीर को तेल में रख भरत-शत्रुघ्न को बुलाने दूत गए। (वाल्मीकि)।
46. यह निष्काषित आर्यों का स्थान था, दोषी जन को आर्य दण्डकारण्य में निष्काषित करते थे।
47. इन दिनों किष्किन्धा दक्षिणांचल में सर्वश्रेष्ठ नगरी थी। (वाल्मीकि)
48. लंका में सीता 10 मास रही। (वाल्मीकि)
49. पद्म पु. VI 271-54-55।
50. वायु 88, विष्णु पु. iv 4, 47, पद्म पु. v 35-23-4, vi 271, 10। अग्नि. 11, 7-8।
51. वायु 88, 187, 8। ब्रह्माण्ड iii 63, 188-9। विष्णु iv 4, 47। यह स्थान हिमाचल प्रदेश में था।
52. देखिए, वाल्मीकि रामायण।
53. महाभारत।
54. बुद्धचरित 11।13।, सदरनन्द 11।43, उत्तरकाण्ड सर्ग 67।
55. उत्तर रामचरित नाटक, भवभूति कृत।
56. 'वाल्मीकिरादो च ससर्ज पद्यं जग्रंथयन्नच्यवनो महर्षिः।। (बुद्धचरित अश्वघोषकृत, 1।43) तथा वा. रा. उत्तर कां. 94।25।26।'
57. एतेन नट नर्तकगायकवादक वाग्जीवन कुशीलव प्लवक सौमिक चरणानां स्त्रीव्यवहारिणां स्त्रियोगूढ़ाजीवाश्च व्याख्याताः (कौटिल्य)।
58. नटनर्तक संघानां गायकानां च गायताम्। यतः कर्ण सुखावचः सुश्राव जननास्ततः। (वाल्मीकि)।
59. वाल्मीकि, लंका का. अ. 130।
60. ऋग्वेद, सातवां मण्डल।
61. प्रतिमा, नाटक (भासकृत)।
62. उत्तर रामचरित।
63. वृहत्संहिता, 57।30।
64. यह मूर्ति लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित है।
65. यह मूर्ति मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है। इसका सिर टूटा है।
66. रघु. 10 सर्ग।
67. रघु, 13।2।
68. 'नृपतयः पृथुराघवाद्याः' एरण का शिलालेख।
69. इंगलैण्ड–Ramo Island, Rame, Ramar, Rampisham, Ram Head, Rams gate, Ramsgrave, Ramelton, Ramsden, Ramsbury, Ramsgill.
जर्मनी–Ram Saw, Ramsteen, Ramstadt, Ramsberg, Rampitz, Sittard, Rambow, Ramsdorf, Ramillies.
70. Rambonillet, Ramerput.
71. Ramalde, Rambla.
72. Seyo, Situo, sita, Ramsty, Rameski.
73. Ramlasa, Ramen, Raumnso, Ramsjo, Rambik, Ramsele, Ramshogda, Ramnas, Ram hall, Ramdula.
74. Sitasova,
75. Ramo, Romo.इसी प्रकार के अनगिनत उदाहरण हैं।
76. भविष्य पुराण अ. 43
77. मत्स्य पुराण। अग्नि पुराण। वायु पुराण। (भारत वर्णन)
78. हिस्ट्री आफ पर्शिया, vol. i, 419.
79. हिस्ट्री आफ पर्शिया, vol. i, iii.
80. वाल्मीकि।
81. पाणिनि व महाभाष्य।
82. कुछ श्रृंगारी अश्लील रचनाएं भी हुईं, जिनपर संभवतः अवध की नवाबी की श्रृंगार भावना का प्रभाव रहा।

■

केवल नष्ट होने के लिए साहस करना तो आत्मघात कहाता है, और आत्मघात सदैव ही पाप है।।

–आचार्य चतुरसेन

प्यार तो पत्थर का बुत है, जिसे हिन्दू पूजते हैं। भीतर-बाहर वह सब तरफ पत्थर है ठोस, वहाँ अहसास कहाँ? इसी से वह प्यार सब भूख प्यास से पाक-साफ होकर भक्ति बन जाता है। इस भक्ति से किसी का पेट नहीं भरता। कभी ऊब नहीं पैदा होती। वह इतना पाक हो जाता है कि सिवा पूजा करने के दूसरी किसी बात का ख्याल दिमाग में लाया ही नहीं जा सकता।।

– धर्मपुत्र (आचार्य चतुरसेन)

दसवां प्रकरण

1. कपिल

कपिल की प्राचीनता– कपिल और उनके सांख्य सिद्धान्त अत्यंत प्राचीन हैं। यह बात श्रुति स्मृति महाभारत और पुराणों से प्रमाणित होती है। प्रसिद्ध दीर्घायु प्राप्त योगिराज गौड़पाद स्वामी, जो कि शुकदेव के शिष्य थे,[1] और जो सांख्य के सर्वप्रथम और प्राचीनतम टीकाकार हो गये हैं, जिन्होंने वेदांत पर 'मांडूक्योपनिषद् मुख्य' और सांख्य पर 'सांख्य सप्तति मुख्य' ये दो प्रख्यात ग्रंथ लिखे हैं, उन्होंने कपिल को ब्रह्मा का पुत्र माना है।

ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रेज्ञानैर्विभाति जायमानञ्च पश्यत श्रुतिः। (उप.)
आदो यो जायमानञ्च कपिलं जनयदृषिम्;
प्रभूतं विभृयात् ज्ञानैस्तं पश्येत्पारमेश्वरम् (स्मृति)
सनकश्च सनंदश्च तृतीयश्च सनातन।
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा।
सप्तते मानसाः पुत्राः ब्रह्मणः परमेष्ठिनः (पुराण)

अथ मानादि क्लेश कर्म-वासना समुद्र पतितान् अनाथान् उद्दिधीषुः परमकृपालुः स्वतः सिद्धज्ञानो महर्षिर्भगवान् कपिलो ब्रह्मसुतो द्वाविंशति सूत्राण्युपादिक्षत्। सूचनात्सूत्रमिति हि व्युत्पतिः। तत एतैः समस्त तत्वानां तीर्थान्तराण्यपि चैतत्प्रपञ्च भूतान्येव। सूत्रं षड्ध्यापयितुं वैश्वानरावतार भगवत्कपिल प्रणीता। इय द्वाविंशति सूत्राणितस्या अपि बीजभूता ब्रह्मसुत महर्षि भगवत्कपिल प्रणीतेति वृद्धा वदंति।

भागवत में कपिल के जन्म की कथा विस्तार से लिखी है, जिसका सारांश यह है– 'ब्रह्मा ने प्रजापति कर्दम को प्रजा-निर्माण करने की आज्ञा दी। कर्दम नदी के तीर गये। वहां उन्होंने दस हजार वर्ष तपस्या की। तब विष्णु ने प्रसन्न होकर वर दिया कि शीघ्र ही यहां स्वायंभुव मनु सपरिवार आयेंगे, उनके साथ उनकी कन्या देवहूति है, उसे तुम अपने लिए मांगना, मैं उसके गर्भ में ज्ञानोपदेश के लिए जन्म लूंगा। वैसा ही किया गया। इससे कपिल का जन्म सरस्वती के तीर पर कर्दम ऋषि के आश्रम में हुआ। यह अत्यंत प्राचीन बात है, क्योंकि सरस्वती गंगा से भी प्राचीन है। इन्हीं कपिल ने सगर के 60 हजार पुत्रों को भस्म किया था। तब सगर के वंशज भगीरथ ने तप करके गंगा का अवतरण किया था। ऐसी कथा मिलती है। आजकल सरस्वती नदी नहीं है, पर प्राचीन काल में वह प्रयाग में गंगा में मिल गयी थी, यह प्रसिद्ध है। कर्दम ऋषि अपनी पुत्रियों को मरीचि, अंगिरस, वशिष्ठ, अत्रि आदि ऋषियों को ब्याहकर तपश्चर्या करने को चले गये। कपिल ऋग्वेद में वर्णित प्राचीन ऋषि हैं।'

कपिल एक महासिद्ध पुरुष हुए। उन्होंने अपनी माता देवहूति को ज्ञानोपदेश दिया, जिससे देवहूति को सिद्धि प्राप्त हुई। जिस स्थान पर यह उपदेश दिया गया था, वह सिद्धपुर की नाम से गुजरात में प्रसिद्ध है और बड़ौदा से बंबई जाते समय एक रेलवे स्टेशन है। यहां कपिल ऋषि का एक आश्रम भी है। माता को ज्ञानोपदेश देकर कपिल ईशान-दिशा में तपश्चर्या करने

को चले गये। इन सब आधारों से कपिल अंगिरस आदि सप्तर्षियों के साले तथा कश्यप, अगस्त्य, दत्तात्रेय आदि के मामा एवं प्रियव्रत– उत्तानपाद के भांजे और ध्रुव के फुफेरे भाई व शंखपद के भाई सिद्ध होते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि कपिल कहीं एक ठिकाने पर नहीं रहे। माता को उपदेश देने के पीछे उनकी आज्ञा लेकर ईशान दिशा (हिमालय की ओर) चले गये थे। यह भागवत से प्रमाणित होता है। पीछे सगर राजा के अश्वमेध-यज्ञ के समय वे गंगासागर के निकट, जो वर्तमान कलकत्ता से लगभग 45 कोस है, कहीं तपश्चर्या कर रहे थे। वहां अब एक टाटी के उसारे को कपिल का आश्रम बताया जाता है, जहां एक बहुत पुरानी घिसी हुई कपिल की मूर्ति है। इसके दाहिनी ओर राजा भगीरथ और बायीं ओर रामानन्द स्वामी की मूर्तियां हैं। ये मूर्तियां भी वैसी ही पुरानी और घिसी हुई हैं। रामानन्द स्वामी ने फिर से इस आश्रम का पता लगाया था। इन मूर्तियों पर जो चढ़ावा चढ़ता है, उसे अयोध्या के साधु लेते हैं।

जहां इंद्र ने घोड़ा चुराकर बांधा था, वह स्थान दक्षिण-पूर्व समुद्र के किनारे कहीं था। यह स्थान बंगाल की खाड़ी के निकट कहीं समझना चाहिए। वहां पहुंचकर जब सगर के 60 हजार पुत्रों (सेना?) ने कोलाहल किया, तो वहां तपस्यारत कपिल ने उनको क्रोध-नेत्रों से भस्म कर दिया। कदाचित् उसी दिन से इनका नाम वैश्वानर-अवतार (अग्नि पुत्र) पड़ा। इसके बाद सगर का पौत्र अंशुमान वहां गया, उसने ऋषि को प्रसन्न किया तथा उन्हीं की सम्मति से अंशुमान ने गंगा लाने का प्रयत्न किया, जो उसके पुत्र भगीरथ के समय में संपूर्ण हुआ। इसी से गंगा का नाम भागीरथी पड़ा।

सुप्रसिद्ध राजा उपरिचरवसु ने वृहस्पति की आज्ञा से जो अश्वमेध यज्ञ किया था, उसमें कपिल उपस्थित थे। रामचन्द्र ने जो सरयू तट पर अश्वमेध यज्ञ रावण-वध के पश्चात किया था उसमें भी कपिल हाजिर थे। विख्यात पृथु राजा ने अश्वमेध यज्ञ किया था, उसमें भी कपिल हाजिर थे। इसके अतिरिक्त प्राचीन राजा बर्हि कपिल के आश्रम में तपश्चर्या के लिए गया था। ये बातें हरिवंश, रामायण, महाभारत, भागवत आदि से प्रमाणित होती हैं। अब, इस बात पर विचार कीजिये कि 'कपिलवस्तु' नगर, जो बुद्ध के पिता की राजधानी थी, उसका कपिलाचार्य से क्या संबंध हो सकता है? विंसेंट स्मिथ ने अपने इतिहास में लिखा है–'कि यह नगर शाक्य राजा ने बसाया था। यह काशी से ईशान-कोण में 100 मील दूर था। अशोक और हर्ष के राज्य का विस्तार दिखाते हुए मानचित्र में जो कपिलवस्तु नगर का स्थान दिया है, वह काशी से उत्तर 150-175 मील पर हिमालय की तराई में कौशल की राजधानी श्रावस्ती व कुशनगर की मध्यवर्तिनी गंडकी नदी के पश्चिम भाग में है।

गौतम बुद्ध के समय तक, अर्थात् ईस्वी सन् से 542 वर्ष पूर्व इस नगर में खूब चहल पहल थी। इसके 53 वर्ष बाद, अर्थात ईस्वी सन् से 489 वर्ष पूर्व कौशल के राजा 'विदूदव' ने चढ़ाई करके इस प्राचीन नगर का विध्वंस किया, और शाक्य वंश को यहां से अपदस्थ किया। इसी कपिलवस्तु के निकट 'लुंबिनी' नामक वन में, जहां गौतम बुद्ध का जन्म हुआ था, सम्राट अशोक ने एक स्तम्भ निर्माण किया था, जो अभी तक है। प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान ने, जो ईस्वी सन 400 में अर्थात् बुद्ध से 900 वर्ष बाद आया था, कपिलवस्तु को उजाड़ अवस्था में देखा था। तब भी यहां 10-5 बौद्ध भिक्षु रहते थे। इसके 300 वर्ष बाद ईस्वी सन् 700 में जब हुएनसंग चीनी यात्री भारत में आया, तब कपिलवस्तु का नाम निशान भी न था। केवल यहां अशोक का स्तम्भ ही रह गया था। इस प्रकार यह नगर अब से कोई 1300 वर्ष पूर्व ही नष्ट हो चुका था।

श्री मुखर्जी व श्री विंसेंट स्मिथ ने सन् 1857 में बस्ती और गोरखपुर जिले से उत्तर हिमालय की तराई में स्थित 'पिपरावा' नामक स्थान की जांच की थी। तब वहां बुद्ध-काल के स्तूप पाये गये थे। उनका कथन है कि यह पिरावा गांव अथवा हुएनसंग के कथनानुसार उसके निकट का निलोराकोट नामक स्थान ही 'कपिलवस्तु' है। निश्चय ही कपिलवस्तु अत्यंत प्राचीन नगर था और आचार्य कपिल से इसका संबंध रहा लगता है।

2. रुद्र-शंकर-शिव-महादेव

ऋग्वेद में रुद्र की ऋचाएं हैं। उनसे प्रमाणित होता है कि वह मरुतों का पूर्वज है।[2] मरुतों के विषय में वेद में संकेत है कि वे भग के साथ उत्पन्न हुए। रथों में चढ़कर युद्ध करते थे। कंधे पर बरछा और हाथ में

खड्ग रखते थे। मरुत कश्यप की एक पत्नी दिति की संतति हैं, इससे उनकी दैत्य संज्ञा थी। उनके उन्चास परिवार थे। प्रथम इन्हें देवता नहीं माना गया। इनके यज्ञ भाग लेने पर देवताओं ने आपत्ति की। पीछे युद्ध में इन्होंने देवों की सहायता की और दैत्यों से सम्बन्ध त्याग दिया, तो इन्हें इन्द्र ने मित्र बना लिया और यज्ञ भाग दिया।[3] रुद्र को 'कपर्दी' भी कहा गया है।[4] तुत्सुओं को भी 'कपर्दी' कहा है अर्थात बालों का जुड़ा रखने वाले। संभव है शिव और 'तुत्सु' सिखों की भांति जूड़ा रखते हों। पुराणों में भी शिव की जटाजूट का वर्णन है, अन्य देवों की जटा का नहीं। बैबिलोनिया के अक्केडियन जटा बांधते थे, पर सुमेरियन जटा नहीं रखते थे। ईरान में एक जाटा नामक प्रदेश भी है। ऋग्वेद काल में रुद्र का महत्व इन्द्र के समान था, इसके बहुत प्रमाण हैं। परन्तु यजुर्वेद में स्थिति बदली हुई है। वहां अनेक रुद्रों की स्तुति है। यजुर्वेद की शतरुद्री प्रसिद्ध है।[5] कुल ग्यारह रुद्र हैं।[6] रुद्र-स्थान अनेक हैं। भिन्न-भिन्न समयों में रुद्र भिन्न-भिन्न स्थलों में रहे।[7] भद्रवट[8] का भी रुद्र से संबंध है।

यजुर्वेद में रुद्र को गणों का निषादों का, अधिपति कहा है, उसे -भव-शर्व-पशुपति आदि नाम दिए हैं। इससे प्रतीत होता है कि यजुर्वेद काल में सीमा प्रान्त के पहाड़ी प्रदेशों में लोग इन नामों से रुद्र की पूजा करते थे।[9] आश्वलायन गृह्यसूत्रों अध्याय 4, खण्ड 10 में रुद्र को उसके सब नामों से पूजित कर 'शूलगव' यज्ञ का विधान बताया है, जो शरद् ऋतु में या बसन्त में होता था। वह आर्द्रा नक्षत्र में होना चाहिए। गोशाला से सबसे अच्छा बैल छांट लिया जाता था। वह 'पृषद्वर्ण' या चित्रवर्ण होना चाहिए, ऊंचे कन्धे वाला काला बैल हो तो उत्तम है। उसका चावल और जौ के पानी से अभिषेक करें–'रुद्राय-महादेवाय-जुष्टोवर्धस्व।' फिर उसे मार कर आहुतियां दे–'हराय कृपाय शर्वाय-शिवाय भवाय महादेवावोग्राय पशुपतेय रुद्राय शंकरायेशानायाऽशनये स्वाहा।' उसकी पूंछ-चमड़ा-सिर-पैर अग्नि में डाले। निस्संदेह सीमा प्रान्त के चोरों ने इस प्रकार अपने देवता की पूजा प्रचलित की। पीछे जब सीमा प्रान्त में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ, तब संभवतः यही बैल 'नन्दी' के नाम से पूजा जाने लगा, और जिस पशुपति महादेव को बैल की बलि दी जाती थी वही बैल का संरक्षक बन गया। बैल उसका वाहन हुआ।[10] पीछे संसार की सभी जातियों में रुद्र से साथ बैल की पूजा भी प्रचलित हुई। अथर्ववेद के बाद शतपथ ब्रा. के समय में सीमा प्रान्त के अन्य सब देवों को भी रुद्र रूप देने का संकेत मिलता है–'प्रजापति को उषादेवी से एक कुमार हुआ। वह रोने लगा। प्रजापति ने पूछा– रोते क्यों हो?' मेरा नाम नहीं है। तब उसका नाम 'रुद्र' रखा गया। उसने एक और नाम रखने को कहा, तब 'सर्व' (शर्व) नाम रखा। शर्व का अर्थ है 'जल'। फिर 'पशुपति' नाम रखा गया, फिर 'उग्र', 'अशनि' महादेव, 'ईशान' आदि नाम रखे गए। (शतपथ ब्राह्मण. 6।1।3।) ये देवता सीमाप्रान्त में पूजे जाते थे। रुद्र सूर्य के पुत्र यम के पौत्र धर के पुत्र थे।[11] इनके पिता धरवसु थे।[12] ऐसा प्रतीत होता है कि यम का वंश देवों और आर्यों से पृथक हो गया था। वसुओं को देव कोटि में माना तो गया है, परन्तु वे देवों से पृथक ही हैं। इसी से इनके परिवार मिस्र, ग्रीस और असुर प्रदेश में अधिकांश में रहे तथा आर्यों और देवों से उनके सम्पर्क कम ही रहे[13]। अधिकांश शाकद्वीपी जातियां यम की ही संतान हैं। ये अपना कुलदेव सूर्य को अवश्य मानती थीं, तथा सूर्य को God of all Nations कहती थीं। तुर्क भी 'धर' ही के वंशधर हैं।14 रुद्र नागों के मित्र थे। नाग तुर्क हैं, नाग रुद्र से रक्षित थे। आरंभ में रुद्र हेमकूट पर रहे, जो हिन्दुकुश का प्रत्यंत पर्वत है। उसके बाद शरवन में रहे। यह स्थान एशिया माइनर में था तथा 'शिवदेश' कहाता था। ईरान में एक 'शंकर' प्रदेश भी है जिसमें जाटा प्रान्त है। जाटा और जिप्सी जाति इन्हीं प्रान्तों की है। ईरान का डद्भड्डडढ्ढद्ध प्रान्त रुद्र का निवास है, जो हिरात के निकट है, हिरात का प्राचीन नाम हर-राष्ट्र है, जो मरुतों का देश था।

अरब और अफ्रीका में शिव के बहुत से स्थान हैं। मक्का का प्रसिद्ध संगे-असवद प्राचीन शिवलिंग है, जिसका पूजक Sabaism या Sabeanism अरब का प्राचीन धर्म था।[15] केदार प्रदेश के पास ही शिव (Seba) नगरी के सम्मुख त्रिपोली (त्रिपुर) है, जो समुद्रमग्न है। उसके सामने ही फारस की खाड़ी के उस पार फारस के 'सोमकारा' प्रदेश में लिंगात स्थान है। ये सब स्थान 'शिव' से सम्बन्धित हैं। इसके अतिरिक्त अफ्रीका का

सूदान (शिवदान) प्रदेश भी शिवभूमि ही है। पाठक यह देखते हैं कि संसार की प्राचीन अनार्य जातियों में शिवमाहात्म्य और लिंग-पूजन का महत्व बहुत है। अवश्य ही शिव-रुद्र अपने प्रारंभिक जीवन में पर्शिया-अरब और अफ्रीका प्रदेश में रहे। उनका तेज और शौर्य अमित था। वे इन प्रदेशों के अधिपति भी थे। उनके युद्ध भीषण होते थे। संभवतः ग्यारह रुद्रों का संगठन प्रबल था। उन्हें देव दैत्य सभी भय और प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते थे। आड़े समय पर देव दैत्य दोनों ही उनसे सहायता लेते थे। रुद्र का भी सब पर समभाव था। वास्तव में दूसरे आदित्य भी दैत्य दानवों से मिल कर ही रहते थे, केवल विष्णु-सूर्य और इन्द्र ने ही उनसे युद्ध ठाने थे।

दक्ष पुत्री सती से जब रुद्र का विवाह हो गया, तो संभवतः वे कुछ दिनों ससुराल में रहे। अरब का उमा प्रदेश उमा के पिता दक्ष का राज्यस्थान प्रतीत होता है। यहीं स्वसुर दामाद में वैमनस्य हो गया था। दक्ष ने अपने यज्ञ में रुद्र को नहीं बुलाया। सती के जाने पर अपमान किया, जिससे सती को अग्नि में जलना पड़ा। दक्षस्थान और शिवस्थान निकट ही थे। तभी तो सती अकेली वहां चली गई, तथा उसके दाह की सूचना भी रुद्र को तुरन्त ही मिल गई, और रुद्र ने दक्ष के सावधान होने से प्रथम ही उसका यज्ञध्वंस कर उसे मार डाला।[16] अवश्य ही दक्षस्थान अरब का उमा प्रदेश था तथा शिव का शिवस्थान था।

ऐसा प्रतीत होता है, यह सती की घटना उसी समय हुई, जब दैत्यलोक पर प्रतापी तरुण वाण का आधिपत्य था। विष्णु तब तक मर चुके थे, और प्रतापी वाण का सामना करने वाला कोई शेष न था। वाण ने देवों से अपना खोया राज्य छीना और इस काम में रुद्र ने उसकी पूर्ण सहायता की। वाण ने समूचा दैत्यलोक जीत लिया। उस समय सतीदाह से विद्ध रुद्र कुछ दिन वाण की राजधानी वन में रहे। पीछे जब उनका दूसरा विवाह हिमाचल प्रदेश में पार्वती के साथ हुआ, तो फिर वे हिमालय ही में बस गए और कैलाश को अपनी राजधानी बनाया। संभवतः रुद्र का यह विवाह कुबेर की सिफारिश से हुआ था– जो रावण से प्रताड़ित होकर स्वयं हिमाचल में आ अलकापुरी बसा कर रहने लगा था। कुबेर के साथ रुद्र का प्रियभाव था। संभवतः कुबेर ही के आग्रह से वे हिमाचल में बस गए थे।

3. लंका

आजकल भारत के दक्षिण चरण में जो अमरूद की आकृति का छोटा सा द्वीप है, उसे सीलोन कहते हैं (जिसे अब श्रीलंका कहा जाता है -सम्पादक)। यही प्राचीन लंका द्वीप है। परन्तु आज इसका जो स्वरूप है-- वह प्राचीनकाल में न था। वास्तव में आधुनिक सीलोन तो प्राचीन लंका देश का एक खण्डमात्र है। उसके आगे की जो भूमि पृथ्वी में डूब गई है, वह और दक्षिण द्वीप समूह तक फैला हुआ एक बड़ा भूभाग लंका में सम्मिलित था। वर्तमान सीलोन नाम सिंहल द्वीप का है। भूगर्भ-शास्त्रियों का अनुमान है कि मलय और सुमात्रा की भूमि में ही लंका थी। वास्तव में मेडागास्टर लंका-और सारे ही पूर्वी द्वीप समूह एक थे। और यह विशाल भूभाग लंका कहाता था।[17] सुमात्रा द्वीप के उत्तर-पूर्ववाले पर्वत के पास समुद्र तट पर 'सोनी लंका' नामक स्थान है तथा सुमात्रा द्वीप समूह में भी लंका नाम का एक द्वीप है। लंका के साथ स्वर्ण या सोना नाम सम्बद्ध है। कहा जाता है कि लंका में सोना बहुत था। यह बात अब पुरातत्वविदों तथा भूगर्भशास्त्रियों ने भी प्रमाणित की है। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वर्ण ही का लालच उस काल में दक्षिणारण्य में बहिष्कृत आर्यों तथा अन्य देश वासियों को इन द्वीप समूहों में खींच ले जाता था।[18] इस द्वीपपुञ्ज में छः सात द्वीप प्रधान थे।[19]

4. वराह

पौराणिक गाथा है कि वराह ने पृथ्वी का जल से उद्धार करने में ब्रह्मा या वरुण को सहायता दी थी। वराह केतुमाल द्वीप के अधीश्वर थे, जो कोला पैनिन्सुला क्षेत्र में था। कोला वराहवंशी हैं। केतुमाल द्वीप में वराह मूर्ति की पूजा होती थी। अनेक शक क्षत्रप भी वराह पूजन करते थे। इंग्लैंड, स्वीडन, नारवे, स्कन्डिनेविया और जर्मनी में भी वराह वंश के अवशेष हैं।[20] नारवे के सागर में कहीं केतुमाल द्वीप था।[21] योरोप के उत्तरी प्रदेश में कोलाप्रदेश-केतुमाल द्वीप था जो अब कोला पैनिन्सुला कहाता है। यह स्थान श्वेत सागर के ठीक

ऊपर है। उसके नीचे और कश्यप सागर के उत्तर पश्चिम में निम्न भूमि है, जिसका उत्तर-पूर्वी छोर वाल्टिक सागर को छू रहा है। यह भूमि समुद्र की सतह से केवल 600 फीट के लेवल पर है।[22] यहीं वराहों का राज्य था। आज भी वहां Hong. Pig., Boar Hyo आदि वराहवाची शब्दों की भरमार है। यहां की जनता के नाम Colt, Kelt, या Celt हैं।

5. वशिष्ठ

वशिष्ठ का पूर्व वृत्त ठीक-ठीक नहीं मिलता। ऋग्वेद में संकेत है कि ये उर्वशी के पुत्र थे।[23] पुराणों में इन्हें मैत्रावरुण कहा है। ऐसे विवरण मिलते हैं कि उर्वशी, (सूर्य) और वरुण दोनों की सेवा करती थी। अतः यह नहीं निर्णय किया जा सका कि वशिष्ठ दोनों में से किसके पुत्र हैं। इसलिए वशिष्ठ को मैत्रा-वरुण नाम दिया। संभवतः ये ईरानी मग जाति के थे और भारत में इलावर्त से आए थे।[24] मग-मौनी-मुनि-मिहिन, वशिष्ठ के जाति संबंधी नाम हैं। मगों को मौनी या मुनि कहते हैं।[25] ईरान में मगों को The Mannaii व सूफी भी कहते हैं।[26] गोमाता भी उन्हें कहा गया है।[27] पारदिया के राजाओं की उपाधि गोमाता थी।[28] नन्दन वन की प्रजा को नन्दनी कहते थे। इन सब बातों से उन सब पौराणिक विवरणों पर प्रकाश पड़ता है जिनमें वशिष्ठ को नन्दिनी गो का स्वामी माना गया है। यद्यपि बहुत सी काल्पनिक पौराणिक कथाओं से सत्य का रूप विकृत हो गया है। परन्तु इतिहास की धुंधली छाया उस पर है।

सबसे पहले हम वशिष्ठ को उत्तर पांचाल के वैदिक राजा सुदास का कुल पुरोहित और मंत्री पाते हैं। ये ऋग्वेद के सातवें मंडल के ऋषि हैं। निस्संदेह यह मंडल भारत में आकर ही लिखा गया है, क्योंकि इसमें सुदास की महिमा बहुत है तथा प्रसिद्ध दस राजाओं के युद्ध का वर्णन है। इस मंडल से प्रकट होता है कि वशिष्ठ ने समुद्र यात्राएं की और युद्धों में प्रत्यक्ष भाग लिया। सुदास से नाराज होकर इन्होंने पौरव संवर्ण का मंत्रीपद और पुरोहित का पद ग्रहण किया, और उसके द्वारा सुदास को पराजित कराया। पीछे उत्तर कोशल राज्य की हरिश्चन्द्र वाली शाखा का और उसके बाद मूल कोशल अथवा अयोध्या राज्य के दशरथ का पौरोहित्य और महामंत्री पद संभाला। इसी बीच इनके विश्वामित्र से प्रबल युद्ध और झगड़े हुए। वर्तमान अयोध्या के राजा शाकद्वीपी मग ब्राह्मण हैं। संभव है यह राम के पुरोहित वशिष्ठ के कुल के ही हों। इनका इतिहास कहता है कि लवण सागर के पास क्षीरसागर से घिरे जम्बूद्वीप से सम्बन्धित शाकद्वीप है। उसमें चातुर्वर्ण मगही रहते हैं। वे सूर्य पूजा करते थे, तथा उनके 18 कुल वेद पाठी हैं। ऋग्वेद का तीसरा मंडल विश्वामित्र का है और सातवां वशिष्ठ का। ये दोनों महापुरुष एक दूसरे के घोर प्रतिस्पर्द्धी और आर्यावर्त में बहुत ऊंची प्रतिष्ठा भूमि पर स्थिर हुए। कहना चाहिए कि वशिष्ठ और विश्वामित्र उस काल के ऐसे अप्रतिम नक्षत्र थे, जिनमें सारे आर्यावर्त की राजनैतिक और सांस्कृतिक प्रतिष्ठा भूमि आधारित थी।

6. वरुण-ब्रह्मा-कर्त्तार—Lord Creator-Elohim (इलाही) Orunzd.

अदिति के बारह पुत्र आदित्य कहाए। वरुण आदित्यों में ज्येष्ठ थे। प्रलय के बाद इन्होंने उजड़ी हुई मनुपुरी को बसाया। उसे अपनी राजधानी बना उसका नाम 'सुषा' प्रसिद्ध किया। सुषा संसार की प्राचीनतम नगरी है।[29] वरुण ने जल में डूबी हुई पृथ्वी का उद्धार किया।[30] पुराणों में इसे ही ब्रह्म संकट कहा है। ब्रह्मा ने जलों को समुद्रों में विभक्त किया[31] पृथ्वी को सम किया। वरुण-ब्रह्मा-कर्तार-लार्ड क्रिएटर-एलेहिम (इलावृत्त के ईश्वर)- इलाही एक ही व्यक्ति के नाम हैं। जलों का विभाजन करने से ही वरुण जल के देवता माने जाते हैं। जोरास्टर वरुण के उपासक थे, इनके समय में पर्शिया में वरुण ही एक महाराज, महाउपास्य देव माने जाते थे, दूसरे देवों की उपासना बन्द हो गई थी व इसी को ईरानी लोग Unitarianism कहते हैं। Gulf of Ormuz के ऊपर ब्रह्म (Biremah) नामक स्थान भी वरुण के निकट है।

7. वशलोक

ऐतरेय ब्राह्मण में एक मध्यवर्ती देश 'वशलोक' का उल्लेख है। यह मध्यवर्ती देश 'काकेशस' है। इसका प्राचीन नाम 'वशलोक' (Bashluikur) था जिसमें प्रमुख

नगर वशुपुर (Bospsrus) है। काकेशस पर्वत का प्राचीन नाम 'शक्र' (Shakra) भी है। इन्द्र का एक नाम 'शक्र' है। एक नाम 'वासव' है जो वश देश का अधिपति होने के कारण है। काकेशस की सुन्दरियां ही इन्द्रसभा की अप्सराएं थी, जो सौंदर्य के लिए आज भी प्रसिद्ध हैं। यहां के कुछ प्राचीन कुलीन सरदार घराने अब भी 'बासव' (Bashaw) कहाते हैं। 'पाशा' या 'वाशा' इसी का विकृत रूप है।

8. वैकुण्ठ

विकुण्ठा व उनके पुत्र वैकुण्ठ तपसी थे।[32] उन्हीं के नाम पर देमावन्द पर्वत पर वैकुण्ठ का निर्माण हुआ। जो देमावन्द पर्वत (एलबुर्ज) पर अब तक स्थित है।[33]

9. विश्वामित्र

दुष्यन्त के पुत्र भरत का कोई ओरस पुत्र नहीं हुआ। इसलिए दीर्घतमा मामतेय के भाई भरद्वाज द्वारा उसकी पत्नी से उत्पन्न उसका क्षेत्रज पुत्र वितथ उसका उत्तराधिकारी हुआ।[34] वितथ का पुत्र भुमन्यु या भुवमन्यु हुआ, जो प्रसिद्ध राजा था। भुमन्यु का पुत्र वृहत्क्षत्र और उसका पुत्र चक्रवर्ती सुहोत्र सकल पृथ्वीपति प्रसिद्ध हुआ।[35] सुहोत्र का पुत्र हस्तिन था जहां जिसने हस्तिनापुर बसाया, बाद में पौरववंश की मुख्य गद्दी रही। सुहोत्र के तीसरे पुत्र वृहत्त ने कान्यकुब्ज में पौरवों का एक नया राज्य स्थापित किया। जिसका वंशवृक्ष इस प्रकार है–

29 सुहोत्र
30 वृहत
31 जह्नु
32 अजक
33 बलाकाश्व
34 वल्लभ
35 कुशिक
36 गाधि
37 विश्वामित्र[36]

कुशिक बड़े प्रतापी और प्रसिद्ध वेदर्षि थे। इन्हीं के नाम पर विश्वामित्र कौशिक कहाए। इनका विवाह पुरुकुत्स की पुत्री पुरुकुत्सी से हुआ। पुरुकुत्सी में कुशिक से गाधि उत्पन्न हुए जो वेद में गाथिन नाम से प्रसिद्ध हैं। गाधि भी वेदर्षि थे। गाधि के पुत्र विश्व विख्यात कौशिक विश्वामित्र ब्रह्मर्षि हुए।[37] इस प्रकार विश्वामित्र चन्द्रवंशी पौरव शाखा में 37वीं पीढ़ी में उत्पन्न हुए। दौष्यन्ति भरत इनके पूर्वज थे जो इनसे बारह पीढ़ी पहिले हुए। पुराणों में लिखा है कि विश्वामित्र से मेनका में शकुन्तला का जन्म हुआ। यह बात सर्वथा निराधार है। क्योंकि शकुन्तला का पुत्र भरत तो विश्वामित्र का पूर्वज है जो इनसे तीन सौ वर्ष पूर्व हो चुके थे।

विश्वामित्र के पिता गाधि की पुत्री और विश्वामित्र की बड़ी बहिन सत्यवती का विवाह भार्गव ऋचीक से हुआ। ऋचीक और सत्यवती के पुत्र जमदग्नि हुए। इसी समय गाधि के पुत्र विश्वामित्र का जन्म हुआ। विश्वामित्र और जमदग्नि इस प्रकार मामा भानजे थे। विश्वामित्र मामा थे और दोनों की समान आयु थी। दोनों ने ऋचीक के आश्रम में ही वेदाध्ययन किया था। विश्वामित्र के बहनोई ऋचीक जैसे ऋषि थे वैसे ही मंत्र-यंत्र और शास्त्र विद्या में भी पारंगत थे। उन्होंने विश्वामित्र और जमदग्नि को वेद विद्या और दिव्यास्त्रों का प्रयोक्ता बना दिया। यही विद्या इन्होंने आगे राम को उस समय सिखाई थी, जब मारीच और ताटिका (ताड़का) से युद्ध करने के लिए वे उन्हें ले गए थे।

विश्वामित्र का जन्म का नाम विश्वबन्धु विश्वरथ था। गाधि और कुशिक भी वेदर्षि थे। विश्वामित्र की ऋचाएं ऋग्वेद के तीसरे मण्डल में और कुशिक की दसवें मण्डल में हैं। समवयस्क होने और साथ-साथ रहने के कारण जमदग्नि और विश्वामित्र परस्पर प्रगाढ़ मित्र हो गए थे।

जब विश्वरथ (विश्वामित्र) कान्यकुब्ज के राजा थे, कान्यकुब्ज (कन्नौज) के निकट ही कहीं (वर्तमान बरेली बदायूं, फर्रुखाबाद के आसपास के क्षेत्र में) उत्तर कोशल राज्य की गद्दी थी, वहां के राजा त्रय्यारुण के मरने पर भी उनके पुत्र सत्यव्रत (त्रिशंकु) राज्यच्युत थे। इसलिए वहां के प्रधान मंत्री और राजगुरु वशिष्ठ राज्य का शासन चला रहे थे। राजा रहित राज्य को देख, अभिसंधि पा कान्यकुब्जपति विश्वरथ ने वशिष्ठ द्वारा शासित उस राज्य पर एक अक्षौहिणी सेना लेकर आक्रमण कर दिया। परन्तु वशिष्ठ ने शवरों और म्लेच्छों की सातगुनी सेना लेकर भीषण संग्राम कर विश्वरथ को परास्त किया, जिससे कान्यकुब्ज का राज्य एक प्रकार से नष्ट ही हो गया, और विश्वरथ की सारी शक्ति टूट गई, तथा

विश्वरथ भाग कर वन में सपरिवार जा छिपे। तब कान्यकुब्ज के एक अंश भग राज्य पर लौहि; वशिष्ठ से सन्धि करके राज्य करने लगा।

इस समय सत्यव्रत त्रिशंकु भी वन में चाण्डालों और चोरों के साथ रहता था। उसने अपने दस्यु साथियों के साथ विपद्ग्रस्त कान्यकुब्ज नरेश विश्वरथ की बहुत सहायता की। इसी समय 12 वर्ष की घोर अनावृष्टि हुई जिसमें बहुत लोग भूखों मर गए। वन में सत्यव्रत और उसके दस्यु चाण्डाल साथियों ने आखेट ला लाकर विश्वरथ के कुटुम्ब का पालन पोषण किया, और उनके प्राणों की रक्षा की।[38]

इस प्रकार दस वर्ष तक विश्वरथ और सत्यव्रत एक साथ में रहे। फिर अवसर पाकर दोनों ने संगठित हो चोरों और चाण्डालों का बड़ा भारी दल लेकर वशिष्ठ को अधिकार च्युत कर दिया। विश्वरथ ने सत्यव्रत को उत्तर कोशल राज्य की गद्दी पर अभिषिक्त कर दिया,[39] तथा स्वयं उसके मंत्री और राजगुरु हो गए। सत्यव्रत का विवाह भी कैकय वंश की राज कुमारी सत्यव्रता से कर दिया गया।

अनावृष्टि की समाप्ति पर विश्वरथ/ विश्वामित्र की सम्मति से त्रिशंकु सत्यव्रत ने यज्ञ करना चाहा, तो वशिष्ठ ने इसका घोर विरोध किया और देवताओं तथा ऋषियों को इस यज्ञ में आने से रोक दिया। कोई ऋषि यज्ञ कराने को भी तैयार नहीं हुआ, तब क्रुद्ध होकर विश्वरथ ने अपने को ऋषि और याजक घोषित कर दिया और स्वयं यज्ञ के पुरोहित बन गए तथा अपना नाम विश्वमित्र (विश्वामित्र) रखा। परन्तु वशिष्ठ ने उन्हें याजक मानने से इन्कार कर दिया। उन्होंने घोषणा की कि विश्वरथ यज्ञविधि नहीं जानता। वशिष्ठ का प्रताप बहुत था, वे दस हजार वटुकों के कुल-गुरु थे। उनके कहने से ऋषि और देवताओं ने यज्ञभाग लेना अस्वीकार कर दिया। तब विश्वमित्र ने बहुत से देवताओं के स्थान पर एक देवता, नई ऋचा, नई यज्ञविधि प्रचलित करने की धमकी दी। यहां एक बात कहने योग्य यह है कि विश्वामित्र के बहनोई और गुरु ऋचीक ऋषि भृगुवंशी थे, जो कि दैत्य-गुरु थे। उनकी यज्ञ परम्परा और वेदविधि भी वाम थी।

एक क्षत्र राजा का कुल परम्परा के विपरीत याजक बन जाना आर्यों में नई घटना थी। अतः विश्वामित्र के इस क्रांतिकारी कार्य से आर्यावर्त में भारी हलचल मच गई, ऋषियों और देवताओं ने मिल कर त्रिशंकु सत्यव्रत को उत्तर पांचाल का आर्य राजा स्वीकार कर लिया। उसका यज्ञ भाग भी ग्रहण किया। इस कार्य से विश्वामित्र का तेज प्रताप चमक उठा, और वे खुल्लम खुल्ला याजक पुरोहित बन गए। ऋषियों में उनका नाम शीर्षस्थानीय हो गया। वशिष्ठ के साथ जो उनका बैर बंधा सो चिरकाल तक चलता रहा। एक प्रकार से विश्वामित्र ने वशिष्ठ के वंश का ही विच्छेद कर डाला, और उनके सब पुत्र पौत्रों को मरवा डाला। वशिष्ठ और विश्वामित्र के विग्रह के संकेत ऋग्वेद के तीसरे मंडल में हैं।

ऋग्वेद का तीसरा मण्डल मुख्यतः विश्वामित्र का है। इस मण्डल के पन्द्रह सूक्तों के अन्य ऋषि हैं, परन्तु वे सब भी विश्वामित्र ही के पिता पुत्र परिजन हैं।[40] इस मण्डल में सब मिलाकर 62 सूक्त हैं। इसमें वेद पाठियों की एक नई परम्परा स्थापित हुई। देवताओं की संख्या 33 वेद में कही गई है, परन्तु यहां नवें सूक्त में वह 3339 हो गई। इसी से प्रसिद्ध है कि विश्वामित्र ने नए देवता बनाए थे। विश्वामित्र ने 'एकेश्वरवाद' भी इसी मण्डल (54-8) में घोषित किया है, जो आर्यों के लिए नई वस्तु है। इसी में सब देवताओं को भारतवासी कहा है (54-7) तथा अपने को कुशिक कहा है (26-1)। वशिष्ठ पुत्र शक्ति से विश्वामित्र की घोर शत्रुता भी इस मण्डल में व्यक्त है।[41]

10. वेद-वेदांग

वेद चार हैं, ऋक्, यजुष्, साम और अथर्व। सबसे अधिक महत्वपूर्ण ऋग्वेद है। उसी पर विद्वानों ने अधिक मनन किया है। वेदों के अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रन्थ हैं, जो वेदांग कहे जाते हैं। अब ये केवल सत्तर की संख्या में उपलब्ध हैं। कहा जाता है कि कुछ लुप्त हो गए हैं। ब्राह्मणों के अंतर्गत ही उपनिषदों को माना जाता है, परन्तु उनका विषय ब्राह्मणों से पृथक है। उपनिषद् 1194 है, जिनमें 125 केवल अथर्व से सम्बन्धित हैं। कुल 150 उपनिषद् प्राचीन और महत्वपूर्ण हैं, इनमें भी 10 प्रधान

हैं। वेद केवल संहिता भाग ही है। पहले तीन ही वेद प्रधान थे, अथर्व की गणना वेदों में पीछे की गई है।[42] वेद वर्तमान रूप में जन्मेजय के काल में व्यास द्वारा सम्पादित किए गए हैं।[43] वेदों के चार विभाग करके व्यास ने चार शिष्यों को एक-एक वेद दिया।

पैल को ऋग्वेद, वैशम्पायन को यजुर्वेद, जैमिनी को सामवेद तथा सुमन्त को अथर्ववेद। कालान्तर में इन चार शिष्यों की परम्परा में अनेक भेद हो गए। जिससे वेदों की अनेक शाखाएं हो गईं। वेदों और ब्राह्मणों के अतिरिक्त चार उपवेद, छै वेदांग और अनेक उपांग भी हैं। ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गन्धर्व वेद और अथर्व का अर्थशास्त्र है। छै वेदांगों में शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, कल्प, ज्योतिष और छन्द हैं। पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र, ये चार उपांग कहाते हैं। शिक्षा से उच्चारण की शुद्ध रीति ज्ञात होती है। व्याकरण से शब्दों और वाक्यों के प्रयोग की विधि जानी जाती है। 'निरुक्त' से वेदों में प्रयुक्त शब्दों की व्युत्पत्ति और अर्थ का पारिभाषिक ज्ञान होता है। 'कल्प' में वेद-कर्मों के क्रम का ज्ञान है। कल्प की मुख्य तीन शाखाएं हैं (1) श्रोत सूत्र, (2) गृह्यसूत्र, (3) धर्मसूत्र। 'ज्योतिष' से समय का समुचित ज्ञान होता है। छन्द को पिंगल भी कहते हैं, इससे वेद में प्रयुक्त छन्दों का ज्ञान होता है।

वेदों के शब्द हजारों वर्षों से जैसे के तैसे चले आते हैं। उनमें एक मात्रा भी नहीं बदली गई। इन्हें स्थिर रखने की अनेक युक्तियां की गई हैं। वेद की अंतिम पाठ शुद्धि ई. पू. छठी शताब्दी में हुई। पुराणों के अनुसार ऋग्वेद की 16, यजुर्वेद की 101, सामवेद की 1000 और अथर्ववेद की 9 शाखाएं हैं। ऋग्वेद-अथर्ववेद और शतपथ ब्राह्मण इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। ऋग्वेद में दशमण्डल हैं, प्रत्येक मंडल में बहुत से सूक्त हैं। प्रत्येक सूक्त में बहुत सी ऋचाएं हैं। ये सूक्त छन्दों में लिखे गए हैं।

यजुर्वेद में यज्ञ संबंधी ज्ञान है। इसके कृष्ण और शुक्ल दो विभाग हैं। 40 अध्याय और 2000 छन्द हैं। कुछ भाग गद्य हैं। इसका बहुत सा भाग ऋग्वेद का है, कुछ अथर्व का है। अथर्व ऋग्वेद काल से बहुत बाद तक बनता रहा है तथा वेदों में बहुत पीछे इसकी गणना हुई है। इसमें 20 काण्ड, 760 सूक्त और 6015 छन्द हैं, जिनमें 1200 ऋचाएं ऋग्वेद की हैं।

11. वेद और इतिहास

सभी पाश्चात्य जन और नव्य भारतीय पुराविद् भी यह मानते हैं कि वेद में पुरातनकालीन ऐतिहासिक वर्णन है। परन्तु निरुक्तकार और उनके अनुयायी भारतीय वेदाचार्य वेदों को अपौरुषेय कहते हैं तथा उन्हें दिव्यज्ञान का स्रोत मानते हैं। परंतु वेदों में ऐसे पुरुषों-स्थानों और नदी नगरों के विवरण हैं, जिनका समर्थन पुराणों के वृत्त से होता है। इतिहासज्ञों ने ऐतिहासिक राजाओं की पौराणिक वंशावली निश्चित करते हुए 20-28 वर्ष की एक पीढ़ी मानी है तथा इस काल की ज्योतिष के साथ तुलना करके वेदकाल निर्णीत किया है। श्री विलसन वैवस्वत मनु के पुत्र इक्ष्वाकु का काल ई. पू. 3500 वर्ष मानते हैं। चाक्षुष मनु का समय ई.-पू. 4000 वर्ष माना गया है। पौराणिक विवरणों से वैदिक विवरणों को मिला कर देखा जाय तो वेद में ई. पू. चार हजार वर्ष तक की कथाएं हैं। पौराणिक वंशावलियों उन्हीं प्रसिद्ध राजाओं की नामावलियां हैं, जो एक के बाद दूसरे के उत्तराधिकारी हुए, इनमें भाई और परिजन भी हैं, सब पुत्र ही नहीं हैं। इससे वेदों से वेदों का काल निर्णय नहीं हो सकता। तिलक ने ज्योतिष के आधार पर वेदों ही से वेद-काल का निर्णय किया है। परन्तु वेद में भी ज्योतिषीय घटना उल्लेखित नहीं है। अतः केवल पुराणों ही का सहारा लेकर वेदकाल का निर्णय किया जा सकता है। परन्तु वेदकाल के निर्णय का एक और ऐतिहासिक आधार वेदों के ऋषियों की परम्परा का है, जिस पर किसी विद्वान ने ध्यान नहीं दिया। प्रत्येक वेद-मंत्र का एक ऋषि है।[44] मंत्र निर्माता ही ऋषि कहाता था। उन ऋषियों की यदि सूची बनाई जाय और वह सूची उनके काल के अनुक्रम से हो, तो वेद निर्माण के काल संबंधी निर्णय की एक नई परिपाटी का प्रकटीकरण हो जाता है। हमने इसी परिपाटी का आश्रय लिया है। हमें वेद का प्रथम ऋषि चाक्षुष मन्वन्तर में मिला[45], और अंतिम ऋषि महाभारत से सौ वर्ष पूर्व। अतः हमारा यह निश्चित मत है कि चाक्षुष मन्वन्तर से महाभारत के 100 वर्ष पूर्व तक वेद निर्माण होता रहा

तथा वेदों की ऋचाओं के निर्माता ऋषि कहाते रहे। पीछे जब व्यास ने वेदों का महाभारत काल में सम्पादन कर उनका विभक्तिकरण किया, उसके बाद वेद की ऋचाओं का बनना बन्द हो गया। फिर वेद की व्याख्या ब्राह्मण ग्रंथों द्वारा करनी आरम्भ की गई, जिसका प्रारम्भ याज्ञवल्क्य ने किया, तब से ऋषियों की जाति भी ब्राह्मण बन गई जबकि ऋषि ऋचानिर्माता थे व ब्राह्मण वेद व्याख्याता। पीछे यज्ञ कर्म में पुरोहित बनने से ब्राह्मणों का कार्य पौरोहित्य भी हो गया। यज्ञ क्षत्रियजन राजनैतिक दृष्टि से करते थे। अतः ब्राह्मण और क्षत्रिय दो बन गये, जो आर्यों के प्रमुख दल हुए। वेदों के कुछ मंत्र ऐसे हैं जिनसे वेद के निर्माण-काल पर थोड़ा प्रकाश पड़ता है। ऋग्वेद के 62वें सूक्त में कुछ ऐसे ही संकेत हैं। एक मंत्र में प्राचीन मंत्रकारों का संकेत है। जिसमें ध्वनित होता है कि कुछ मंत्र पहिले बने कुछ बाद में। इसके अतिरिक्त हजारों स्थानों पर मनुष्यों और घटनाओं से संबंधित संकेत हैं।

महाभारत में लिखा है कि 'इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुप वृंहयेत्' अर्थात् इतिहास पुराण से ही वेदार्थ का पता लगता है। वेद में पुरूरवस, उर्वशी, आयु[46], अनु, नहुष[47], ययाति, वशिष्ठ[48], जमदग्नि[49], इक्ष्वाकु[50], दिवोदास, सुदास[51], यदु[52], तुर्वसु[53], पुर[54], द्रुह्यु[55], गंगा[56], यमुना[57] आदि नाम आए हैं। राजाओं के युद्धों का भी वर्णन है। अनार्यों में वृत्र, दनु, विप्र, सुश्न, सम्बर, वंगुद, बलि, नमुचि, भृगम्, अर्वुद आदि नामों का उल्लेख हुआ है। इन्द्र ने वृत्र के 99 दुर्ग जय किए और संवर या सम्बरा और वंगृद या वंगुद के सौ दुर्ग ध्वस्त किए, सुश्न का चलने वाला किला तोड़ा, पिप्र के 60 हजार योद्धा मारे। दिवोदास और सुदास के वर्णन भी क्रमबद्ध हैं। इस सम्बन्ध में वशिष्ठ का सातवां मंडल और विश्वामित्र का तीसरा मंडल घटनाओं से परिपूर्ण है। प्रमुख युद्धों के वर्णन वाला वेद का तीसरा मंडल घटनाओं से परिपूर्ण है। प्रमुख युद्धों का वर्णन वेद में है।[58]

12. सायण-प्रसिद्ध वेद भाष्यकार

सायण का असल नाम माधव है। सायण उपनाम है।[59] द्राविड़ ब्राह्मण थे, और कर्नाटक की प्रसिद्ध राजधानी विजयनगरम् के निवासी तथा विजयनगरम् के राजा बुक्कराय के प्रधान मंत्री थे। राजा बुक्कराय के अनुरोध से ही इन्होंने वेदभाष्य की रचना की थी। इनकी माता का नाम श्रीमती सुकीर्ति तथा पिता का नाम मायण था। वे भारद्वाज गोत्री थे, सूत्र बोधायन शाखा तैत्तिरीय थी।[60] इनके विद्यागुरु श्रृंगेरीमठ के तीसवें मठेश भारतीतीर्थ थे। जैमिनी न्यायमाला (पूर्वमीमांसा) तथा वैयासिक न्यायमाला (उत्तरमीमांसा) में भारती तीर्थ तथा विद्यातीर्थ नाम से सायण ने इनका उल्लेख किया है।[61] विद्यारण्य भी माधव का ही नाम था। यह व्यास-सूत्र वृत्ति के कर्ता रंगनाथ के एक पद्य से भी प्रमाणित है।[62] यह प्रतीत होता है कि माधव ने दर्शन शास्त्र का अध्ययन सर्वज्ञ विष्णु से किया था।[63] विजयनगरम् के राजा वीर बुक्कराय का समय 1366 ई. है[64] और यही काल माधवाचार्य का भी है। वीर बुक्कराय की मृत्यु के बाद हरिहरदेव के राज्यकाल में भी माधव प्रधान मंत्री थे। अथर्व का भाष्य उन्होंने इसी समय किया। बाद में शृंगेरीमठ के 31वें मठेश बने तथा 90 वर्ष की आयु में इनका शरीर-पात हुआ। माधव उद्भट विद्वान पुरुष थे। सब मिलाकर उनके 109 ग्रंथ अभी प्राप्त हैं।[65] कुछ ग्रंथ लुप्त हो गए हों, यह संभव है।[66] संस्कृत साहित्य का कोई विषय उनसे अविदित न था। वेदांगों का उन्हें अविकल ज्ञान था। इसी से वेदों की, विशेषकर ऋग्वेद की वे अनुपम व्याख्या कर सके। ऋग्वेद पर सर्वप्रथम उन्हीं की कलम उठी। ऋग्वेद भाष्य में माधव ने अपना अभूतपूर्व पाण्डित्य प्रकट किया है। अर्वाचीनकाल में इतने ग्रन्थों का कर्ता कोई दूसरा पुरुष नहीं हुआ। माधव की प्रतिभा अलौकिक थी। वे बड़े भारी राज्य के महामात्य थे। उन्होंने महाराज्य का प्रबन्ध भार संभालते हुए तथा अनेक युद्धों में तलवार चलाते हुए ऐसे अनुपम ग्रन्थों का भण्डार निर्मित किया, जिनकी जोड़ के ग्रन्थ संस्कृत क्या संसार की किसी भी भाषा में नहीं थे।

उनकी भाषा प्राञ्जल है, वर्णन सम्पूर्णता लिए है। उनकी व्याकरण की योग्यता अपरिसीम थी। वेद के जिन शब्दों का अर्थ दुर्बोध था, उनके धातु प्रत्ययों को विभक्त करके सूत्र वार्तिक भाष्यों तक को उद्धृत कर उन्होंने अभीष्ट अर्थ स्पष्ट किया है। पूर्वाचार्यों के स्वरपाठ को न बिगड़ने देना, साथ ही मंत्रों का एक सम्मिलित अर्थ निकालना तथा उसका ब्राह्मण ग्रंथों और

निरुक्त से सामंजस्य स्थापित करना, माधव ही के बूते का काम था। उन्होंने वेदों की स्वर प्रक्रिया के भी मार्मिक ज्ञान का परिचय दिया है जो जरूरी था क्योंकि वेद का अर्थ स्वर पर ही अवलम्बित है। सायण से पूर्व लोग वेद पाठमात्र करते थे, अर्थ नहीं समझते थे और केवल ब्रह्मयज्ञ में ही उसका प्रयोजन मानते थे, सायण ने अपनी ऋग्संहिता भाष्य में वेद प्रमाण से ही इस धारणा का खण्डन किया तथा यास्क, पतञ्जलि, कुमारिल, शंकर आदि के मत का लाभ उठाया।

13. वेद का रावण भाष्य

वेद का सबसे बड़ा शब्द 'यज्ञ' है। यज्ञ का माहात्म्य भी बहुत है।[67] रावण ने यज्ञदीक्षा में पशु वध, गौ वध, नरवध, लिंगपूजन आदि दैत्य दानवों की प्रथाओं का समावेश किया। यह स्वाभाविक ही था कि रावण के मन में आर्य, देव, दैत्य सभी दायाद बान्धवों को एक संस्कृति में ले आने की इच्छा उत्पन्न हो। सभी संकर जाति के बालकों की भांति रावण अत्यंत चैतन्य और उदग्र तरुण था। फिर उसका नाना सुमाली दैत्य महातेजस्वी और महारणनीति-विशारद वृद्ध नरपति था। देव-दैत्य संग्राम में वह अपना सर्वस्व स्वाहा कर चुका था। उसके सान्निध्य में रावण के मन में बड़ी-बड़ी महत्वाकांक्षाओं के बीज अंकुरित हुए। उसके तरुण और राज्य भ्रष्ट मामा सब एक से एक बढ़कर थे। सबके ऊपर उसके सौतेले भाई कुबेर का प्रताप था। यह सब देखकर उसका मन महत्वाकांक्षा से भर गया। अपनी विद्या, बुद्धि और बाहुबल पर उसे बहुत गर्व था, भरोसा था। बस उसने असाध्य साधन की ठान ली। उसका सबसे जबर्दस्त काम था समूची नृजाति में सांस्कृतिक ऐक्य स्थापित करना। सो उसने इस काम में जैसा उन्मुक्त उपयोग अपने परशु का किया, वैसा ही अपने अध्ययन का भी। उसने उस समय तक उपलब्ध सब वैदिक ऋचाओं को एकत्र किया। उनमें कुछ अपनी ओर से मिलाया। उन पर भाष्य रचा, और उन्हें ऐसा रूप दिया कि वेद देव, दानव, दैत्य आर्य, व्रात्य सभी के लिए सांस्कृतिक मध्य बिन्दु बन जाय। तब तक देव दैत्यों में कदाचित उशना-काव्य का नीति ग्रन्थ तथा वृहस्पति का नीति ग्रन्थ ही प्रचलित थे। ये दोनों कुलगुरु दैत्य-देव पूजित थे। रावण ने अकेले ही दोनों की श्रेष्ठ मर्यादा स्वयं ग्रहण करनी चाही और उसने इसके लिए किसी नए शास्त्र का नहीं, वेद ही का आश्रय लिया।[68]

रावण ही की भांति कुछ और लोग भी उस समय वेद मत को भिन्न-भिन्न संस्कृतियों में ढाल रहे थे। उस काल का काव्य, वेद ही था। जो भी कोई सुभाषित, चाहे भी जिस विषय पर बोलता, वही काव्य अर्थात वेद काव्य बन जाता था और उसका कर्ता या कवि ऋषि कहाने लगता था। वामदेव, नारद ने उसमें वाम विधि स्थापित की थी जिसका अभिप्राय था खाओ, पीओ मौज करो। वृहस्पति का भी यही मत था और रावण के भाई यक्षपति कुबेर ने भी इसी को अपनाया था। परन्तु वशिष्ठ ने जो नई वेद विधि स्थापित की थी वह आर्यों में बद्धमूल हो चुकी थी। दैत्य इससे वंचित थे। इसी से रावण ने यह कार्य हाथ में लिया। और अपने बाहुबल के जोर पर वह सारे नृवंश का महिदेव, इन्द्र या जगदीश्वर बन गया।

14. वेदों के अन्य भाष्यकार

निघण्टु पर टीका करते हुए देवराज यज्वा ने आठ वेद भाष्यकारों का उल्लेख किया है– 1) स्कन्द स्वामी, 2) भव स्वामी, 3) राह देव, 4) श्रीनिवास, 5) माधव देव, 6) उव्वट भट्ट, 7) भास्कर मित्र, 8) भरत स्वामी।

यज्वा ने इन आठ भाष्यकारों के अतिरिक्त अन्य भाष्यकारों का भी संकेत किया है। परन्तु प्रसिद्ध वेद भाष्यकार सायण और महीधर का उल्लेख नहीं किया। जिन माधव देव का उल्लेख किया है वह सायण या माधवाचार्य नहीं हैं, दूसरा व्यक्ति है। यह संकेत सत्यव्रत सामश्रमी ने निघण्टु की टीका का संपादन करते हुए अपनी टिप्पणी में किया है।[69] सायण ने स्वयं भी ऋग्वेद के एक मंत्र 'विहिसोतोः' (8।4।1।11) के भाष्य में किसी माधवभट्ट विवरणकार का उल्लेख किया है।[70] श्री यज्वा ने जो आठ वेद-भाष्यकार गिनाए हैं उनमें से उव्वट को छोड़ और किसी का वेद भाष्य अभी तक उपलब्ध नहीं है।

उव्वट ने शुक्लयजुर्वेद संहिता पर भाष्य किया है, तथा वेदों के प्रातिशाख्य ग्रन्थों की व्याख्या की है। ये दोनों ही ग्रन्थ उपलब्ध हैं। उव्वट के शुक्ल यजुर्वेद भाष्य के अंत में दिए संकेत के अनुसार उव्वट अवन्ती के राजा भोज के दरबार में थे। उनके पिता का नाम वज्रट था तथा उनका निवास आनन्दपुर में था। भोज का

समय 1018 से 1060 ई. निश्चित है। यही समय उव्वट कृत भाष्य का होना चाहिए।

उव्वट के बाद भाष्यकर्त्ताओं में महीधर का नाम है, पर उनका कोई परिचय नहीं मिलता। परन्तु महीधर का वेद भाष्य अब उपलब्ध है। उन्होंने उव्वट और माधव के भाष्य को देखकर भाष्य रचना की थी। परन्तु ये माधव, माधव भट्ट हैं या माधव सायण हैं, यह संदेहास्पद है। देवराज यज्वा तथा महीधर दोनों का ही समय अनिश्चित है। परन्तु दोनों ने उव्वट का उल्लेख किया है। इससे यह तो प्रमाणित है कि यज्वा और महीधर दोनों उव्वट से अर्वाचीन हैं। महीधर भाष्य अन्य भाष्यों से बड़ा है। परन्तु एक बात और है, महीधर ने शुक्लयजुर्वेद पर भाष्य किया है, किन्तु सायण ने कृष्ण यजुर्वेद पर, शुक्ल पर उन्होंने कुछ नहीं लिखा। अतः अनुमान होता है कि महीधर द्वारा उल्लिखित माधव, सायण नहीं, माधवभट्ट ही हैं। देवराज ने भी उव्वट के बाद माधव ही का नाम लिया है। एक और पुराने वेद भाष्यकार का उल्लेख हलायुध ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ ब्राह्मण सर्वस्व में किया है, जिसका नाम 'नुगड़ाचार्य है।[71] यह हलायुध भी एक वेदभाष्यकर ही है।' इसका ब्राह्मण-सर्वस्व शुक्लयजुर्वेद के कुछ मंत्रों की टीका है। यह बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के दरबारी, राज-पण्डित तथा मंत्री और धर्माधिकारी थे। लक्ष्मणसेन को ई. स. 1199 में बख्तियार खिलजी ने राज्यच्युत किया था। हलायुध ने उव्वट के नाम का भी उल्लेख किया है।[72]

आधुनिक काल में स्वामी दयानन्द ने वेद भाष्य किया। उनका ऋग्वेद भाष्य अपूर्ण रहा, जिसे आर्य मुनि ने सम्पूर्ण किया।

15. ब्राह्मण ग्रंथ और निरुक्त

वेदों के बाद ब्राह्मण ग्रन्थ और निरुक्त ही प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। गोपथ ब्राह्मण कहता है–'अधो खल्वाहुः गाथा एवैताः कारव्या राज्ञः परीक्षित इति', इसी तरह निरुक्त भी 'इत्यैतिहासिकाः' कहता है। इससे समझा जा सकता है कि निरुक्त और ब्राह्मण ग्रन्थों से पूर्व वेदों का ऐतिहासिक आधार मानने वाले विद्वान थे। पीछे उन्हें अपौरुषेय घोषित किया गया।[73] श्री मैकडानल का कहना है कि ब्राह्मण ग्रन्थों का निर्माण मंत्रद्रष्टा ऋषियों के बहुत समय बाद हुआ। इससे ब्राह्मण ग्रन्थों के निर्माता वैदिक ऋचाओं के वास्तविक अर्थों को भूल गए। तिलक भी कहते हैं कि तैत्तिरीय संहिता और ब्राह्मणों के निर्माण काल में संहिताएं पुरानी हो चुकी थीं और उनका अर्थ समझना कठिन हो गया था। निरुक्तकार यास्क ने अपने पूर्व के सत्रह टीकाकारों का उल्लेख किया है, जिनकी टीकाएं अब उपलब्ध नहीं हैं इससे वेदों के प्रति धार्मिक श्रद्धा मनुष्य मस्तिष्क में तथा 'ईश्वर' की एकाकी सार्वभौम सत्ता स्थापित हो जाने से वेदमंत्रों में वर्णित देवताओं के स्थान पर और उन सब ऋषियों के स्थान पर जिन्होंने मंत्र या स्तुति रचना की, एक समष्टीभूत 'ईश्वर' ही वेदों का कर्ता-धर्ता हो गया। चूंकि ईश्वर का कोई इतिहास, अस्तित्व कहीं था ही नहीं, इसलिए वह अनादि अनन्त कहा गया और इसके साथ ही वेद भी अनादि अनन्त और ईश्वर की वाणी हो गए।

16. पाश्चात्यों का वेदाध्ययन

18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक पाश्चात्यों को संस्कृत साहित्य एवं वेदों के संबंध में कुछ भी ज्ञान न था। उन दिनों जो-जो योरोपियन विद्वान भारत में आए, उन्हें भी वेदों के विषय में कुछ ज्ञान न हो पाया। क्योंकि हिन्दू पंडित, जो बहुत कम वेदों के यथार्थ ज्ञाता थे– वेदों को खूब छिपाते और कथित म्लेच्छों से उन्हें बचाते रहते थे। सर विलियम जान्स ने कलकत्ता में एशियाटिक सोसाइटी कायम करके पाश्चात्यों का ध्यान भारतीय प्राचीन साहित्य की ओर आकर्षित किया। इसके बाद प्रसिद्ध गणितज्ञ श्री कार्लब्रुक ने योरोप को वेदों से परिचित कराया, परन्तु वेदों का मूल्य वे न जान सके, उन्होंने लिखा है–'अनुवाद कर्ता के श्रम का फल तो दूर रहा, पाठकों को उनके श्रम का फल भी मिलना कठिन है।' इसके बाद एच. एच. विलसन ने ऋग्वेद का अंग्रेजी भाष्य किया। इसी समय प्रसिद्ध भाषाशास्त्री फ्रेंच विद्वान बनर्फ ने जैन्दाबस्ता और वेदों का तारतम्य मिलाया तथा एक तारतम्यात्मक व्याकरण भी बनाया। उन्होंने ऋग्वेद की व्याख्या करके उससे आर्यों के इतिहास पर प्रकाश डाला। इनके शिष्यों श्री राय और श्री मैक्समूलर ने बाद में वेदों का योरोप को विस्तृत परिचय दिया। इस बीच जर्मन पण्डित भी वेदाध्ययन की ओर

आकृष्ट हुए। श्री रोजन ने ऋग्वेद के प्रथम अष्टक का लैटिन में अनुवाद किया। इनके बाद सर्व श्री बॉप, ग्रिम और हमवोल्ट जैसे विद्वानों के अथक परिश्रम से युगान्तरकारी भाषा सम्बन्धी तत्व प्रकट हुए और योरोप को मनवा दिया गया कि संस्कृत, जेन्द, ग्रीक, लैटिन, स्लेव, ट्यूटन और केल्टिक भाषाओं में परस्पर तारतम्य है और उनका मूल एक है। इस आविष्कार से संस्कृत संसार की सब भाषाओं की माता और वेद संसार के साहित्य के पिता प्रमाणित हुए। श्री राय ने यास्क के निरुक्त पर मूल्यवान टिप्पणी लिखी। श्री वाल्हिक ने संस्कृत भाषा का एक कोष ही तैयार कर डाला। इसके बाद श्री लेसन का वृहत् ग्रन्थ Indische Alterthum-skunde प्रकाशित हुआ। श्री वेवर ने भी शुक्लयजुर्वेद और उसके ब्राह्मणों और सूत्रों को प्रकाशित किया तथा अपने Indische Studien में बहुत से संदिग्ध विषयों की व्याख्या की। फिर श्री वेनथी ने सामवेद का बहुमूल्य संस्करण प्रकाशित किया। अंत में श्री मैक्समूलर ने समस्त प्राचीन संस्कृत साहित्य को समय के क्रम से सन् 1859 में क्रमबद्ध किया, साथ ही सायण भाष्य के साथ ऋग्वेद का भी एक संस्करण प्रकाशित किया। पीछे डॉ. हांग ने ऐतरेय ब्राह्मण का अनुवाद प्रकाशित किया।

17. आधुनिक भारतीय वेदाध्ययन

आधुनिक काल में स्वामी दयानन्द ने वेदों की ओर भारतीय जनता को उन्मुख किया। उन्होंने ऋग्वेद और यजुर्वेद का हिन्दी अनुवाद किया। बंगाल के पंडित सत्यव्रत सामश्रमी ने सायण के भाष्य सहित सामवेद का अच्छा संस्करण निकाला। उन्होंने महीधर के भाष्य सहित शुक्लयजुर्वेद को भी सम्पादित किया और निरुक्त का एक उत्तम संस्करण निकाला। इस प्रकार पाश्चात्यों और आधुनिक भारतीय विद्वानों के द्वारा दुर्धर्ष वेद सार्वजनिक होने की श्रेणी में आए। अब तक वेद और वैदिक साहित्य के सम्बन्धित योरोप और भारत में जो संस्करण प्रकाशित हुए हैं, उन सबकी सूची हम यहां देते हैं–

18. ऋग्वेद

(क) भाष्य :–

(1) सायण भाष्य, शब्दानुक्रमणिका प्रतीक सूची सहित, सम्पादक मैक्समूलर (प्रथम संस्करण 1859-75 द्वितीय सं. 1890-92 लंदन)।

(2) लैटिन अनुवाद (By Rosen 1830-38)।

(3) फ्रेंच अनुवाद (By Langlois 1848-51)।

(4) जर्मन अनुवाद (By A. Ludwig, 6 Vols. 1876-88, भूमिका, भाष्य और Index सहित)।

(5) जर्मन अनुवाद (By. H. Grassman. Leipzig 1876-77)।

(6) जर्मन प्र. संस्करण (By K. F. Geldner Tub-ingen 1908, दूसरा संस्करण Gottingen 1923)।

(7) अनुवाद by Rudolf Roth

(8) Roers edition of Text Translation in Bib-liotheca. Indica No. 1-4 (Calcutta 1849)।

(9) इंगलिश अनुवाद by Wilson.

(10) इंगलिश अनुवाद by Arrowsmith, Bostan 1886.

(11) इंगलिश अनुवाद R. H. T. Griffith 1889-92.

(12) आनन्द तीर्थ का भाष्य (सम्भवतः एक विशेष भाग पर), इसके प्रथम अष्टक के दूसरे और तीसरे भाष्य पर जयतीर्थ की टीका है, जो इण्डिया हाउस लंदन के पुस्तकालय में है।

(13) सायण भाष्य, Bombay Theosophical Publication Fund, Bombay.

(14) स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत भाष्य (अपूर्ण), शेष आर्य भाष्य– (म. म. पं. आर्य मुनि कृत)।

(15) स्कन्द स्वामी भाष्य।

(16) वेंकट माधव भाष्य।

(17) सायण भाष्य, पूना संस्करण।

(ख) ब्राह्मण :–

(1) ऐतरेय ब्राह्मण-सायण भाष्य सहित। सम्पादक-काशीनाथ शास्त्री, आनन्द आश्रम। पूना, सन् 1896 खण्ड 1 व 2।

(2) ऐतरेय ब्राह्मण सायण भाष्य सहित। सम्पादक-सत्यव्रत सामश्रमी, ऐशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता, सम्वत् 1952-62 (खण्ड-I.IV)।

(3) ऐतरेय ब्राह्मण का इंग्लिश अनुवाद। अनुवादक-A. B. Keith Harward Oriental Series. Vol..25. 1920.

(4) ऐतरेय ब्राह्मण Martin Hung द्वारा सम्पादित, प्रकाशक–बम्बई सरकार 1863।

(5) Das Aitareya Brahman सम्पादक Theodor Aufrecht Bom. 1879.

(6) शांखायन का इंग्लिश अनुवाद। अनुवाद- A. B. Keith, Harward Oriental Series vol.25. 1920.

(7) कौषीतकि ब्राह्मण। सम्पादक B. Lindner, Gena. 1881.

(8) शांखायन ब्राह्मण। सम्पादक : गुलाबशंकर-जयशंकर, आनन्द आश्रम, संस्कृत ग्रन्थावली, पूना 1911.

(ग) शिक्षा :–

(1) ऋग्वेद प्रातिशाख्य, जर्मन अनुवाद सहित, सम्पादक Mex Muller, Leipzig 1856-69।

(2) शिक्षा संग्रह। बनारस संस्कृत सिरीज।

(3) शौनक प्रातिशाख्य–चौखम्बा संस्कृत सिरीज बनारस।

(प्र) प्रातिशाख्य, डॉ. मंगलदेव शास्त्री।

(घ) श्रौत सूत्र–

(1)आश्वलायन श्रौतसूत्र Bibliotheca Indica कलकत्ता।

(2) आश्वलायन श्रौतसूत्र, Harward Oriental Series vol. 25.

(3) शांख्यायन श्रौतसूत्र सम्पादक- A. Hillebrand. Bibli-otheca Indica 1888.

(4) शांशायन श्रौतसूत्र, सम्पादक–Kieth. Journal of the Royal Asiatic Society. 1907 P. P. 40 F. F.

(5) शांखायन श्रौतसूत्र, सम्पादक– Harward Oriental Series vol. 25. P. P. 50 F.

(ङ) गृह्यसूत्र :–

(1) आश्वलायन गृह्य सूत्र सटीक, गार्ग्य नारायण कृत टीका। Bibliotheca Indica 1879

(2) आश्वलायन गृह्य सूत्र सटीक, हरदत्ताचार्य कृत टीका सहित, सम्पादक गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम संस्कृत सिरीज नं. 78,1923.

(3) आश्वलायन गृह्य सूत्र सटीक, जर्मन अनुवाद सहित अनुवादक- A. B. Stenzler, Indische Hausuage Germany. 1865.

(4) आश्वलायन गृह्य सूत्र का इंग्लिश अनुवाद, अनुवादक–H. Oldenberg. Sacred Books of the East vol. 29.

(5) शांखायन गृह्यसूत्र, संस्कृत और जर्मन By H. Oldenberg Indische Studien, Heraus Gegebren a welne.

(6) इंग्लिश अनुवाद (Sacred Books of the East vol 29).

(7) कौषीतकी गृह्यसूत्र, सम्पादक रत्नगोपाल भट्ट, बनारस संस्कृत सिरीज 1908।

(8) आश्वलायन सूत्र प्रयोग दीपिका टीका, मंजनाचार्य भट्ट कृत, चौखम्बा संस्कृत सिरीज, बनारस, 1907।

(9) शांखायन गृह्य सूत्र संग्रह, वासुदेव कृत।

(च) परिशिष्ट–

(1) चरण व्यूह सभाष्य, शौनकीय परिशिष्ट।

(छ) व्याकरण-पाणिनीय स्वर वैदिक प्रक्रिया।

(ज) निरुक्त।

(1) निरुक्त भाष्य (दो भाग)। गुरुकुल कांगड़ी।

(2) निघण्टु।

(झ) छन्द : पिंगल छन्द सूत्र (हलायुध भाष्य सहित)।

(ञ) ज्योतिष–लगध की।

(ट) अनुक्रमणिका :-

(1) सर्वानुक्रमणिका	कात्यायन कृत।
(2) आर्षानुक्रमणिका	शौनक कृत।
(3) छन्दोनुक्रमणिका	शौनक कृत।
(4) अनुवादानुक्रमणिका	शौनक कृत।
(5) पादानुक्रमणिका	शौनक कृत।
(6) सूक्तानुक्रमणिका	शौनक कृत।
(7) देवतानुक्रमणिका	शौनक कृत (अनुपलब्ध)।
(8) ऋग्विधान	शौनक कृत।

19. यजुर्वेद

(क) संहिताएं तथा भाष्य :-

(1) काठक संहिता Edited by L. V. Schroeder, Leipzig. 1900-1910.

(2) काठक संहिता Text & its iriterpretation S. Keith. Ournal of the Roayl Asiatc Society, 1910-18.

(3) काठक संहिता by Caland Z. D. M. g. 72, 1918.

(4) कपिष्ठल कठ संहिता Dr. Raghubir.

(5) मैत्रायणि संहिता, सम्पादक L. V. Schroeder.

Leipzig 1881-86.
(6) तैत्तिरीय या आपस्तम्ब संहिता by A Weber, Ind Stud. (रोमन अक्षर) vols. 11-12.
(7) तैत्तिरीय सायण भाष्य सहित Bibi, Ind, 1860. 1899.
(8) तैत्तिरीय सायण भाष्य सहित, आनन्द आश्रम पूना नं. 42.
(9) तैत्तिरीय इंग्लिश अनुवाद A. B. Keith, Harward. Oriental Series vols. 18.19, 194.

शुक्ल यजुर्वेद :-

(10) वाजसनेय संहिता, महीधर भाष्य सहित A.B. Keith, Birline- London 1852.
(11) वाजसनेय संहिता इंग्लिश अनुवाद Griffith बनारस 1899.
(12) वाजसनेय संहिता इंग्लिश महीधर भाष्य Weber, London- Berline 1852.
(13) वाजसनेय संहिता उव्वट महीधर भाष्य (निर्णय सागर प्रेस)।
(14) तैत्तिरीय संहिता, भट्ट भास्कर मिश्र का भाष्य।
(15) शुक्ल यजुर्वेद संहिता, पं. ज्वाला प्रसाद मिश्र कृत भाष्य सहित।
(16) कृष्ण यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता।
(17) यजुर्वेद भाष्य, स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत, अजमेर।

(ख) ब्राह्मण :-

(1) तैत्तिरीय ब्राह्मण, सायण भाष्य सहित, सम्पादक राजेन्द्रलाल मित्र Asitic Society of Bengal कलकत्ता।
(2) तैत्तिरीय ब्राह्मण सायण भाष्य सहित, सम्पादक नारायण शास्त्री 1–3, आनन्दाश्रम पूना, सन् 1899।
(3) तैत्तिरीय ब्राह्मण, भट्ट भास्कर भाष्य सहित, सम्पादक महादेव शास्त्री तथा श्रीनिवासाचार्य, सन् 1908, 21-21 मैसूर।
(4) शतपथ ब्राह्मण–(माध्यन्दिनीय), सम्पादक A. Weber (reprint), Leipzig 1224.
(5) माध्यन्दिनीय शतपथ ब्राह्मण, अजमेर सम्वत् 1959।
(6) शतपथ ब्राह्मण सायण भाष्य सहित-काण्ड 1-3, 5-7-9. संपादक सत्यव्रत सामश्रमी, सन् 1903-11 Asitic Society of Bengal कलकत्ता।
(7) शतपथ का इंग्लिश अनुवाद, अनुवादक Julius Eggeling, Sacred Book of the East Vol.12, 26, 41, 45.
(8) काण्वीय शतपथ ब्राह्मण (लाहौर), डी. ए. वी. कालेज।

(ग) शिक्षा

(1) तैत्तिरीय प्रातिशाख्य सूत्र इंग्लिश अनुवाद सहित- Journal of the American Oriental Society vol. 9, New Havan 1871.
(2) वाजसनेय प्रातिशाख्य सूत्र, सम्पादक-पी. वी. पाठक, बनारस 1883-1890।
(3) वाजसनेय, वेवर कृत जर्मन अनुवाद सहित Ind : Stud. 4. 65-160, 177-33।
(4) प्रतिज्ञा सूत्र, सम्पादक A. Weber 17-69 ff.
(5) कात्यायन शुक्ल यजुः प्रातिशाख्य भाष्य सहित।

(घ) कल्प :- (कृष्ण यजुर्वेद के श्रौत सूत्र)

श्रौत सूत्र :-

(1) कात्यायन श्रौत और शुल्व सूत्र कर्काचार्य कृत सहित, सम्पादक-मदनमोहन पाठक, विद्या विलास प्रेस, काशी।
(2) कात्यायन श्रौत सूत्र सभाष्य, विद्याविलास प्रेस, काशी।
(3) कात्यायन श्रौत सूत्र, सम्पादक A. Weber.
(4) बौधायन श्रौत सूत्र, सम्पादक W. Caland Bibliotheca. Ind. 1904-26.
(5) आपस्तम्ब श्रौत सूत्र, सम्पादक R. Gorbe Bibl. Ind.1882-1903.
(6)हिरण्यकेशी श्रौत सूत्र सटीक, आनन्दाश्रम, संस्कृत ग्रन्थावली, पूना।
(7) मानव श्रौत सूत्र Books 1-V edited by F. Knauer St., Pitersburg 1900.
(8) मानव श्रौत सूत्र चयन प्रकरण By J. M. Van. Gelder Leyden 1921.

गृह्यसूत्र (शुक्ल यजुर्वेद) :-

(1) पारस्कर गृह्यसूत्र कात्यायन सूत्रीय सूत्र, विद्या विलास प्रेस काशी।

(2) पारस्कर गृह्य सूत्र हरिहर भाष्य सहित। लक्ष्मी वेंकटेश्वर बम्बई 1890।

(3) पारस्कर गृह्य सूत्र, जर्मन अनुवाद सहित। सम्पादक- लाधाराम शर्मा। अनुवादक A. F. Stezner Indische. Haurege In A. K. M. VI 2 & 4 1876-8.

(4) इंग्लिश अनुवाद H. Oldenbery. S. B. E. vol. 29.

(कृष्ण यजुर्वेद) :-

5. आपस्तम्बीय गृह्य सूत्र- सम्पादक M. Winternity, Vienna 1887.

6. अनुवाद आपस्तम्ब परिभाषा सूत्र सहित S. B. E. Vol. 30.

7. हिरण्यकेशी गृह्य-सूत्र, सम्पादक J. Krist, Vienna 1889.

8. इंग्लिश अनुवाद S. B. E. Vo. 30.

9. बौधायन गृह्य सूत्र-सम्पादक श्रीनिवासाचार्य मैसूर 1904. (Bibl. Othica Sanskrita No. 32)।

10. भारद्वाज गृह्य सूत्र-सम्पादक Henrieg G. W. Salomons. Leyden 1913.

11. मानव गृह्य सूत्र-सम्पादक F. St., Petersburg 1897.

12. काठक गृह्य सूत्र-सम्पादक W. Caland. D. A. V. College, Lahore.

13. वैखानस गृह्य सूत्र–Leipzig 1896.

14. वाराह गृह्य सूत्र सम्पादक R. शाम शास्त्री, गायकवाड Orietal Series No. 18-Baroda 1921.

15. अग्निवेश गृह्यसूत्र, त्रिवेन्द्रम।

धर्मसूत्र :-

(1) आपस्तम्ब धर्मसूत्र, (2) बौद्धायन धर्मसूत्र
(3) वशिष्ठ धर्मसूत्र, (4) गौतम धर्मसूत्र
(5) वैखानस धर्मसूत्र, (6) हिरण्यक धर्मसूत्र
Leipzig 1896.

शुल्व सूत्र :-

(1) आपस्तम्बीय शुल्व सूत्र- जर्मन अनुवाद सहित, by Albet Burk. Leitschriftder. Deutschen Morgen Landischen Gesellschat (Z.D.M. SG.) 12.1218.

(2) बौधायन शुल्व सूत्र इंग्लिश अनुवाद सहित G. Thilbaut पण्डित Vol. IX.

(3) कात्यायन शुल्व सूत्र (काशी से श्रौत्र सूत्र के साथ-साथ छपा)।

(4) हिरण्यकेशी शुल्व सूत्र।

श्राद्ध कल्प :-

(1)मानवश्राद्ध कल्प, सम्पादक W. Caland. Altindischer Ahmencult P. P. 228 ff.

(2) शौनकीय श्राद्ध कल्प P. P. 240।

(3) पिप्पलाद श्राद्ध कल्प के कुछ अंश। P. P. 243 F.

(4) कात्यायन श्राद्ध कल्प P. P. 245.

(5) गौतम श्राद्ध कल्प S. Caland in Bijdnagen tol de toal, London. Vol-ken kunde Vonued Indica, bc. vol. I 1894.

पितृमेध सूत्र :-

(1) बोधायन पितृ मेध सूत्र	सम्पादक :–
(2) हिरण्यकेशी मेध सूत्र	W. Caland A. K. M X. 3
(3) गौतम मेध सूत्र	1896.

परिशिष्ट :-

(1) कर्म प्रदीप, दोनों भाग, जर्मन अनुवाद सहित Q. S. 1889. 1900.

(ङ) अनुक्रमणि :-

1. कात्यायन शुक्ल यजुः सर्वानुक्रम सूत्र सभाष्य, काशी।
2. निगम परिशिष्ट
3. प्रवराध्याय।
4. यजुर्वेदीय चरण व्यूह।
5. कृष्ण यजुर्वेदीय आत्रेयानुक्रमणि।
6. कृष्ण यजुर्वेदीय नारायणीयानुक्रमणि।

20. सामवेद

(क) संहिता :–

1. नारायणीय संहिता, संपादक और अनुवादक G. Stevenson London 1842.

2. कौथुमस संहिता, जर्मन अनुवाद सहित By Sh. Benfey. Leipzig. 1848.

3. कौथुमस सायण संहिता डत्र सत्यव्रत सामश्रमी Bibl. Ind. 1871.

4. जैमिनीय संहिता by W. Caland (Indische Forschunin 2 Breslaue. 1907.

5. सामवेद संहिता इंग्लिश अनुवाद Griffith बनारस 1893.

6. तुलसीराम स्वामी कृत।

(ख) सामवेदीय ब्राह्मण :–

1.ताण्ड्य महाब्राह्मण सायण भाष्य सहित, सम्पादक-आनन्दचन्द्र वेदान्त वागीश, Asiatic Society of Bengal, Calcutta 1870.

2. दैवत ब्राह्मण तथा षडविंश ब्राह्मण सायण भाष्य सहित, सम्पादक-जीवानन्द विद्यासागर कलकत्ता सन् 1881।

3. षडविंश ब्राह्मण विज्ञान भाष्य सहित, सम्पादक H. F. Ealsingh, Leyden 1908.

4. षडविंश ब्राह्मण सायण भाष्य सहित प्रथम प्रपाठक, सम्पादक Kurt Klemn Guteslah 1898.

5. मंत्र ब्राह्मण, सम्पादक सत्यव्रत सामश्रमी कलकत्ता संवत 1947.

6. मंत्र ब्राह्मण, (प्रथम प्रपाठक) सम्पादक Heinrich Stonner Halle 1901.

7. संहितोपनिषद ब्राह्मण भाष्य सहित, सम्पादक A. G. Burnell मंगलोर 1877.

8. आर्षेय ब्राह्मण, सम्पादक A. g. Burnell. मंगलोर 1876.

9. वंश ब्राह्मण सायण भाष्य सहित, सम्पादक-सत्यव्रत सामश्रमी कलकत्ता, सम्वत 1959।

10. सामविधान ब्राह्मण सायण भाष्य सहित, सम्पादक A. C. Burnell, London. 1873.

11.सामविधान ब्राह्मण सायण भाष्य सहित, सम्पादक सत्यव्रत सामश्रमी कलकत्ता सम्वत् 1951.

12.जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण, सम्पादक Hausdertel, देवनागरी संस्करण, लाहौर 1921।

13. जैमिनीय आर्षेय ब्राह्मण, सम्पादक A. C. Burnell मंगलोर सन 1878।

14. जैमिनीय ब्राह्मण अथवा तलवकार ब्राह्मण, वेद व्यास, डी. ए. वी. कालेज लाहौर। (डॉ. रघुवीर द्वारा प्र.)।

(ग) शिक्षा :–

1. साम प्रातिशाख्य, सत्यव्रत सामश्रमी द्वारा 'उषा' कलकत्ता में 1890 में सम्पादित।

2. पुष्प सूत्र अजातशत्रु कृत टीका सहित, सम्पादक लक्ष्मण शास्त्री, काशी।

3. पुष्प सूत्र जर्मन अनुवाद सहित, सम्पादक R. Siuon A. Bay A. 1909 P. P. 48-780।

4. पञ्चविधि सूत्र जर्मन अनुवाद सहित by R. Roston. 1903. (Indische Feorschuglety.)।

(घ) कल्प :–

(1) श्रौतसूत्र–

1. मशक कल्प सूत्र, सम्पादक W. Caland; Abhand. cangen Fur die kunde des Morgiwlandis heransg. Vondor Dentochen Morgen Indischen Gesellschat XII 3 Leipzig 1988.

2. लाट्यायन श्रौत सूत्र, सम्पादक Bibliothieca, Indica कलकत्ता।

3. द्राह्यायण श्रौत सूत्र, सम्पादक G. N. Reuter, Part I London 1908.

4. जैमिनीय श्रौत सूत्र (अग्निष्टोमाध्याय) Leyden 1906.

गृह्य सूत्र :-

1. गोभिल-गृह्य-सूत्र सटीक, सम्पादक चन्द्रकांत तर्कालंकार, द्वितीय संस्करण Bibl. Ind. कलकत्ता 1906, 1908.

2. गोभिल गृह्य सूत्र जर्मन अनुवाद सहित By Kannon 1884-6.

3. इंग्लिश अनुवाद Sacred Books of the East, 13.29.

4. खदिरगृह्य सूत्र, इंग्लिश अनुवाद सहित S. B. E. vol. 29.

5. जैमिनीय गृह्यसूत्र, संपादक और अनुवादक W. Cold, लाहौर 1922 पंजाब संस्कृत सिरीज नं. 2।

परिशिष्ट :-

1. गोभिल गृह्य सूत्र संग्रह परिशिष्ट By M. Bloomfield Z. F. D. M. Q. Vol. 35.

2. गोभिल गृह्य सूत्र संग्रह परिशिष्ट By चन्द्रकांत तर्कालंकार Bibl. Ind. 1019.

3. गोभिलकीय परिशिष्ट (संन्ध्याध्याय, स्नानसूत्र, श्राद्ध कल्प आदि) Bibl. Ind. 1909.

(ङ) अनुक्रमणिका :–

1. सामवेदीय आर्षोनुक्रमणिका।

2. सामवेदीय देवतानुक्रमणिका।

21. अथर्व वेद

(क) भाष्य :-

1. इंग्लिश अनुवाद By Griffith (Benares 1895).

2. इंग्लिश अनुवाद By W. P. Whitney, edited by G. R. Lanman (H. O. S. vol. 7 & 8 Cambridge Mss. 1905).

3. क्षेमकरणदास कृतभाष्य।

(ख) अथर्ववेदीय ब्राह्मण :-

1. गौपथ ब्राह्मण, सम्पादक हरचन्द्र विद्याभूषण कलकत्ता 1870।

2. गोपथ ब्राह्मण, सम्पादक Dr. Dieuke Gastra, Lyden 1919.

(ग) शिक्षा :-

1. अथर्व वेद प्रातिशाख्य, संपादक- विश्वबन्धु विद्यार्थी शास्त्री, प्रथम भाग पंजाब यूनीवर्सिटी।

(घ) कल्प :-

श्रौत सूत्र :-

1. वैतायन श्रौत सूत्र जर्मन अनुवाद सहित, अनुवादक R. Garbe London & Starasburg 1878.

गृह्यसूत्र :-

1. कौशिक गृह्यसूत्र, सम्पादक M. Bloomfield, New Haven 1890.

परिशिष्ट :-

1. अथर्ववेद परिशिष्ट-सम्पादक G. M. Bolling & G. Von Negelien. Leipzig 1909-10.

2. अथर्ववेद शान्ति कल्प Translations of the American Philogical Association vols. 35. 1904. 77ff.

3.अथर्ववेद शांति कल्प Journal of the American Oriental Society 33. 1913. 265.ff.

4.अथर्व प्रायश्चित्तानि सम्पादक J. V. Negelinn. New Haven. 1915.

(ङ) अनुक्रमणिका :-

1. अथर्ववेदीय चरण व्यूह। (पं.रामगोपाल शास्त्री द्वारा सं.)।

संदर्भ

1. नारायणं पद्मभवं वशिष्ठं शक्तिञ्च तत्पुत्र पराशरञ्च।
व्यासं शुक गौड़पद महान्तं गोविंद योगीद्रमयास्य शिष्यम्।

2. 'आते पितु मरुतां सम्नये' (ऋग्वेद, 2।33।1)।

3. देखिए, ऋग्वेद का 8वें मण्डल का 76वां सूक्त।

4. कपर्दिनोधिया धीवन्तो असपन्त तृत्सवः (ऋ 7।83।8)।

5. हे रुद्र, तेरे क्रोध को नमस्कार। तेरे वाण को नमस्कार। धनुष-धारण करने वाले तुझको नमस्कार। तेरे बाहुओं को नमस्कार। तेरे वाण सुखकारक हों। तेरा धनुष सुखकारक हो। तेरा जो तूणीर है, उससे हमारी रक्षा कर। हे नीलग्रीव-सहस्राक्ष तुझे नमस्कार। हिरण्यबाहु को, सेनापति को, दिशाओं के स्वामी को नमस्कार। उन्नत को, चोरों के अधिपति को, धनुर्योद्धा को नमस्कार। वाणों का तूणीर धारण करने वाले को नमस्कार। डाकुओं के अधिपति को नमस्कार। 'भव को नमस्कार, रुद्र को नमस्कार। पशुपति को नमस्कार। नीलकण्ठ को नमस्कार, श्वेतकण्ठ को नमस्कार, उग्र को, भीम को नमस्कार' (यजु. तैत्तिरीय संहिता चौथा काण्ड पांचवां प्रपाठक)।

6. **ग्यारह रुद्र :** अज-एकापात-अहिर्वध्न्य-विरूपाक्ष-त्वष्टा-वीरभद्र-हर-बहुरूप-त्र्यम्बक-सावित्र-शम्भु-शर्व।

7. **रुद्र स्थान :** (i) मूजवन पर्वत हेमकूट, हिन्दुकुश का प्रत्यंत्त-पर्वत है, यहां सोम होता था जो पश्चिम के कोह सुलेमान से बहुत उत्तर-श्वेत गिरि (सफेद कोह) से भी उत्तर में है। इससे पूर्व की ओर क्रोंचगिरि (काराकुरम) है, जहां कार्तिकेय का जन्म हुआ। उमा वन और शरवन इसी स्थान के आसपास हैं। इससे आगे की वायु बहुत विकृत है।

8. भद्रवट, कैलाश के पूर्व की ओर लौहित्यगिरि के ऊपर है, उसके नीचे ब्रह्मपुत्र नदी बहती है।

9. भारत की वायव्य सीमा के लोग जैसे आज भी चोरी डकैती का पेशा करते हैं, उस समय भी करते होंगे। उन्होंने भव शर्व को अपना इष्ट बनाया। आगे अथर्व में इनका महत्व बढ़ा। अथर्व वेद के चतुर्थ काण्ड में अट्ठाइसवें सूक्त में भव-शर्वो की प्रार्थना है–'भव शर्वौ मन्वे वां तस्य वित्तं ययोर्वामिदं प्रदिशि यद्विरोचते। यावस्येशाथे द्विपदो यो चतुष्पदस्ती नो मुञ्चत्वंहसः।। ग्यारहवें काण्ड के दूसरे सूक्त में भी-'भव शर्वो मुडतं माभि यातं भूतपती पशुपती नमो वाम्। प्रतिहितामावतां मा विस्राष्टं मानो हिंसिष्ठं द्विपदो मा चतुष्पदः।"

10. बुद्ध के जीवन काल में ही काबुल कन्धार के सीमाप्रान्त का एक राजकुमार 'महाकप्पी' श्रावस्ती से आए हुए व्यापारियों से बुद्ध की कीर्ति सुनकर भिक्षु बनने के लिए उद्यान से चलकर आमात्यों तथा पटरानी अनोजा देवी सहित श्रावस्ती। आया तथा भिक्षु हुआ। (देखिए, मनोरथपूरणई तथा सारत्य-पकासनी अट्ठकथा तथा संयुत निकाय मूलसुत्त)

11. मत्स्य पुराण। श्रीमद्भागवत-स्वायंभुव वंश।

12. विष्णु पुराण। तथा H.P. Vol. 1, 103.

13. देखिये, पर्शिया का प्राचीन इतिहास, पहली जिल्द पृष्ठ 107।

14. देखिए, पर्शिया का इतिहास, दूसरी जिल्द पृष्ठ 146, 147।

15. Romulus of Rome invited the people of the Sabines to witness the Consualia or games to be celebrated in honour of God Consus. Traditional History attributes the conquest of Rome to a Sabine tribe who bore the name of sabine. Their religion was Sabine and most of their institutions were called Sabine. (History of Rome. Liddel, 14,2).

16. सिर काट कर बकरे का सिर जोड़ना कल्पित है। यह कल्पना अमरत्व कायम रखने को की गई है।

17. तथैव मलय द्वीपमेवमेव सुसंवृतम्।
नित्ये प्रमुदिता स्फीता लंका नाम महापुरी (ब्राह्माण्ड पुराण)।

18. भविष्यन्ति कलौ काले दरिद्रा नृप मानवाः तेऽत्र स्वर्णस्य लोभेन देवता-दर्शनाय च। नित्यं चैवागमिष्यन्ति त्यक्त्वा रक्षः कृतं भयम्। (नारद खण्ड)।

19. 'यत्नवन्तोयवद्वीपः सप्त सप्तराज्योपशौभितः' (वाल्मीकि)। अंग द्वीपं यव द्वीपं मलय द्वीपमेव च। शंखद्वीपं कुशद्वीपं वराहद्वीपमेव च। एवं षडेते कथिता अनुद्वापा समन्ततः भारतं द्वीपदेशो वै दक्षिणे बहु विस्तरः (वायु पुराण)।

20. इंग्लैंड में Pig Island, Hog Island, Boar, Hog head, Hog hill. नारवे-स्वीडन और स्कन्डिनेविया में Hogen, Hogby. Hogsby. Hysuna,

Hogdalen (जर्मनी में) Schweina.

21. Kola Peninsula, Kola Town, Kola Bay, Kola river, Kolgnev Island.

22. देखिए योरोप का फिजिकल मानचित्र।

23. ऋग्वेद, मण्डल 7,33,11।

24. भविष्य पुराण। श्री उमेशचन्द्र विद्यारत्न मग ब्राह्मणों को मंगोलिया निवासी मानते हैं। (देखिए, मानवेर जन्मभूमि पृष्ठ 13)।

25. भविष्य पुराण।

26. H.P. vol. 1. The Mego.

27. H.P. vol. 1. 166. 180.188 .

28. कर्निंघम vol. 2. 30.

29. सुषा नगरी की खुदाई हुई है। आरकोलोजी को वहां आठ हजार वर्ष पुरानी वस्तुएं प्राप्त हुई हैं।

30. 'Water preceded. Light descended when orderd by the Spitit of the Creator.' (Moses).The next act of the Deity was to make a division (ordeal). This operation divided the waters into two parts as well as into two states. (Genesis Ch. 1. Verse 6, Turners History P. 25). Ordeal = Proper divison by Ur. Trial by fire and water (अंग्रेजी कोष).

31.आदित्यश्चादि भूतत्वात ब्रह्मा ब्रह्म पठन्नभूत। दिवंभूमि-सममकरोत्तद्दण्डशकल द्वयम्-मत्स्य पुराण अ.1।

Elohim said-Let there be a firmament in the midst of waters and let it divide the waters from the waters. (Genesis Ch. 1, Verse 6. Turner's History, P.30) Elohim said---Let the waters under the Heavens be gathered together into one place and let the dry land appear. (Turner's HIstroy Ch. I, Genesis.) God made man out of water. (Turner's History). The earth was without form and void and darkness was upon the face of the deep ocean. the Spirit of God (Elohim) moved upon the surface of the waters (Mosaic Narrative).

32. देखिए विष्णु पुराण में चाक्षुष मन्वतर की कथा का प्रसंग। Tapuria (mazanderan) H. P. Vol. I, 285.

33. Mount Demaband (The Modern Elburz the Iranian Paradise.) H. P. Vol. I, 117-123. etc.).

34. वायु पुराण 99, 157।

35. महा. भा. आदि पर्व 79, 23।

36. वा. पु. 91, 63 और हरिवंश 27, 1426, 30।

37. महाभारत शान्तिपर्व।

38. वायु 88. 78, 116। हरिवंशः 717 से 3, 13, 753 तक। विष्णु. पांचवां 3, 13, 4, भागवत 57, 5, 6। म. भा. xiii, 137. 625।

39. वायु पु. 88, 86।

40. ऋषभ (दो सूक्त), उत्कील (दो सूक्त), कठ (दो सूक्त), गाथिन (4 सूक्त), देवश्रवस (दो सूक्त), देवात (1 सूक्त), प्रजापति (4 सूक्त)।

41. पुराणों के अनुसार इस शक्ति को विश्वामित्र ने कल्माषपाद के द्वारा मरवा डाला था।

42. ऐतरेय ब्राह्मण, ऐतरेय आरण्यक, वृहदारण्यक तथा शतपथ में तीन ही वेद मान्य हैं। छान्दोग्य अथर्व को इतिहास मानता है।

43. विष्णु पुराण चतुर्थ खण्ड।

44. ऋषियो मंत्रद्रष्टारः।

45. वैदिक ऋषियों में प्राचीनतम ध्रुव, पृथु वैन्य, चाक्षुषमनु, वेन पूरूरवस, ययाति आदि हैं और सबसे नए व अंतिम यधुष्ठिर के समकालीन, खाण्डव दाह से बचे हुए जरितर, द्रोण तथा नारायण हैं।

46. 'उर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवा असि' (यजुर्वेद 5।2)।

47. आ यातं नहुष स्यर्यान्त रिक्षात्...(ऋग्वेद 8।8।3) अधग्मन्ता नहुषो हवं सूरेः..(ऋग्वेद 1।122।11) स निरुध्या नहुंषो यह्वो...(ऋ. 7।6।5) यदिन्द्र नाहुषीष्वाअग्रे विक्षु प्रदीद्यत (ऋ. 8।6।24) शमी नहुषी अस्य बोधतम् (ऋ. 10।92।12)।

48. अग्ने अंगिरस्वत अंगिरो ययातिवत्। (ऋ. 1।31।17)।

49. अन्तरिक्षप्रांरजसो विमानी मुतशिक्षाम्युर्वशी वशिष्ठः (ऋ. 10।95।17)।

50. कणववत जमदग्निवत्, (अथर्व 2।32।3)। विश्वामित्र जमदाग्ने वशिष्ठ भरद्वाज गौतम वामदेव (अथर्व 18।3।16)।

51. यस्येक्ष्वाकु रुपव्रते रेवान् मराय्येघते (ऋ.10।60।4)।

52. यन्नासत्या परावति यद्वा स्यो अधि तुर्वशे... (ऋ. 1।47।7)।

53. अग्निना तुर्वशं युदं परावत उग्रादेवं हवामहे (ऋ. 1।36।18)।

54. समुद्रमतिसूर पर्षि पारयं तुर्वशं यदुं..., (ऋ. 1।174।9)।

55. हव्यवाहं पुरुप्रियम...(ऋ. 1।12।2। अथ. 20।10।12)।

56. यदिन्द्राग्नी यषुतर्वेशेषु यद् द्रुह्युष्वनुषु पूरूषु स्थः (ऋ. 1।108।8)।

57. इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि तोंमं सचता परुष्ण्या (ऋ. 10।75।5)।

58. इन्द्राविष्णु दंहिताः शाम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम्। शर्त वर्चिनः सहस्रं च साकं हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान। ऋ. 799।5) अध्वर्यवो यः शतं शम्वरस्य पुरो विभेदाश्मनेव पूर्वीः। यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपावपद्भरता सोममस्मै। (सेना वर्णन) (ऋ. 2।14।4।6)। इन्द्र आलां नेता वृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः। देवसेनानामभि भञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम। (ऋ. 10।10।3।8)।

59. कुछ विद्वानों का मत है कि सायण माधवाचार्य से भिन्न व्यक्ति हैं। अपने समर्थन में ये प्राचीन लेखमाला के ये श्लोक उद्धृत करते हैं–

तत्कटाक्षेण तद्रूयं दधद् बुक्क महीपतिः
अन्वशान्माधवाचार्य वेदार्थस्य प्रकाशने।
सप्राह नृपति राजन् सायणाचार्यो ममानुजः
सर्व वेत्येष वेदानां व्याख्यातृत्वे नियुज्यताम।
इत्युक्तोमाधवार्येण वीर बुक्क महीपतिः
अन्वशात्सायणाचार्य वेदार्थस्य प्रकाशने।

ये ये श्लोक ऋग्संहिता-भाष्य तथा यजुर्वेद-भाष्य के आरम्भ में नीचे टिप्पणी में दिए हुए हैं, पर मूलभाष्य में कहीं नहीं मिलते। मूलभाष्य में लिखा है–

पूर्वोत्तरे मीमांसे ते व्याख्यायातिसंग्रहात्।
हद्यन्तुमाधवाचार्यो वेदार्थवक्तुमुद्यतः। (ऋ. सं. भा. 4)।

इससे माधवाचार्य ही वेदभाष्यकर्त्ता प्रमाणित होते हैं, ताण्ड्य ब्राह्मण के भाष्य में भी माधव ने अपने को वेद-भाष्यकार कहा है–

व्याख्यातावुग्यजुर्वेदो सामवेदोऋऽपि संहिता। व्याख्यता ब्राह्म्मण व्याख्यां करोम्यद्गात्र वुद्धये।

60. श्रीमती जननी यस्य सुकीर्तिर्मायणः पिताः.... बौधायनै यस्य सूत्रं शाखा यस्य च याजुषी।

तेन मायण-पुत्रेण सायणेन मनीषिणा (पाराशर भाष्यम्)
व्याख्याय माधवीयं तु धातुवृत्तिर्विरच्यते (धातुवृत्ते)।

61. सवन्द्यात्भारती तीर्थ यतीन्द्र चतुराननात्।
कृपामव्याहतां लब्ध्वा पराध्यप्रतिमोऽभवत्। (न्या. मा. 7)
प्रणम्य परमात्मानं श्रीविद्यातीर्थरूपिणम्।
वैयासिकी न्यायमाला श्लोकैः संगृह्याते स्फुटम। (वै. न्या.)

कुछ विद्वानों का मत है कि विद्यातीर्थ स्वामी भारतीतीर्थ के गुरु थे। पर शंकर दिग्विजय में माधवाचार्य के मंगलाचरण से प्रतीत होता है कि भारती तीर्थ ही विद्यातीर्थ हैं। प्रणम्य परमात्मानं...। यह श्लोक शंकर दिग्विजय में भी है। 'शंकर दिग्विजय' के कर्ता भी माधवाचार्य ही हैं। –इतिश्री माधवीये तच्छारदापीठवासगः (शं. वि.)।

62. विद्यारण्यकृतैः श्लोकैर्नृसिंहाश्रमसूक्तिभिः। संरब्धा भाष्यसूत्राणां वृत्तिर्भाष्यानुसारिणी। (व्या. सू. वृ.)।

63.पारंगतं सकल दर्शन-सागराणामालोचितार्थ-चरितार्थितसर्वलोकम। श्रीशार्ङपाणि-तनयं निखिलागमज्ञं सर्वज्ञविष्णुगुरुमन्वहमाश्रयेऽहम।।(सर्वदर्शन संग्रह)

64. देखिए, 1877 की इण्डियन एंटेक्वेरी, पृष्ठ 162।

बुक्क के प्रपौत्र राजा विजय का एक दानपत्र मिला है, जो प्राचीन लेखमाला में उद्धृत है। उसका अंतिम श्लोक है–'सोऽयं विजय भूपालो हम्पलाययिधीमते। स्वदेशेचेष्टपेटाख्यं ग्रामं मान्यं प्रदत्तवान्।' इसमें हम्पलाचार्य को वह गांव दान में देने का उल्लेख है, जो आज मद्रास के विलारी जिले में (अब कर्नाटक में) हम्पी के नाम से प्रसिद्ध है। यह दानपत्र शक 1338 (सन् 1416 ई.) का है। वीर बुक्क के बाद उनका पुत्र हरिहर देव और उनके बाद प्रतापराय राजा हुआ। प्रतापराय के बाद विजय का काल है। यदि इन दो राजाओं का काल 50 वर्ष मान लिया जाय, तो वीर बुक्कराय का समय 1366 ई. निकलता है। यही इंडियन ऐटेंक्वेरी का भी निर्णय है। रामानुजाचार्य के विशिष्ट द्वैतदर्शन का परिचय माधव ने अपने सर्वदर्शन संग्रह में दिया है। इससे रामानुज माधव के पूर्ववर्ती प्रमाणित होते हैं। रामानुज का जन्म सं. 1073 (1016 ई.) है। बम्बई शाखा के रायल एशियाटिक सोसायटी के जर्नल, भाग चार में श्री जेकब द्वारा प्रकाशित दानपत्रों से प्रकट है कि भारत के अनेक देशों के अतिरिक्त कोकण की राजधानी गोवा को भी माधव ने जय किया था तथा कोचार परगने के 25 गांव ब्राह्मणों को दान कर दिए थे। पीछे कोचार का नाम माधवपुर रखा गया। यह समय वास्कोडिगामा के भारत भ्रमण से 107 वर्ष पूर्व का है। इससे भी यह समय चौदहवीं शताब्दी की समाप्ति का काल निश्चित होता है।

65. देखिए, थ्योडोर आफ्रेट द्वारा प्रकाशित 'ग्रंथ और ग्रन्थकर्ताओं के नाम।'

66. वैदिक साहित्य की व्याख्या-रूप में माधव ने जो ग्रन्थ रचे, वे निम्नलिखित हैं– चारों वेदों की संहिताओं के भाष्य, तैत्तिरेय आरण्यक भाष्य, तैत्तिरेय ब्राह्मण भाष्य, साम ब्राह्मण भाष्य, ताण्ड्य-ब्राह्मण भाष्य, काठक भाष्य, शतपथ ब्राह्मण भाष्य, षड्विंश ब्राह्मण भाष्य, आर्षेय ब्राह्मण भाष्य। इनके अतिरिक्त अनेक आरण्यकों, उपनिषदों, श्रोतसूत्रों पर भी उनके भाष्य उपलब्ध हैं। पूर्व मीमांसा के प्रसिद्ध ग्रन्थ अधिकरणमाला, न्यायमाला विस्तर, प्रमेय सार संग्रह हैं। वेदान्त के पंचदशी, अनुभूति प्रकाश, अपरोक्षानुभूति, आत्मानात्म विवेक, पञ्चीकरण आदि हैं। 'सर्वदर्शन संग्रह' माधव का बेजोड़ ग्रन्थ है। शंकर दिग्विजय सम्भवतः उनकी वृद्धावस्था की कृति है। धर्मशास्त्र के भी उन्होंने पाराशर, माधवीय, कालनिर्णय आदि बहुमूल्य ग्रन्थ रचे।

67. यज्ञेन वाचं पदवीयमानम्। यज्ञेन यज्ञम अयजन्तदेवाः (ऋग्वेद)।

68. रावण का यह भाष्य अब वस्तुतः उपलब्ध नहीं है। रावण के नाम से एक भाष्य का अंश मिलता है, पर वह असल में रावण कृत नहीं है। पर द्रविड़ों में जो 'कृष्ण वेद' प्रचलित है– वह रावण कृत वेद का कुछ विकृत रूप है। 'कृष्ण वेद' का पृथक भाष्य नहीं है। परन्तु उसमें रावण कृत वे स्थापनाएं हैं, जिनका हमने अभी उल्लेख किया है, 'बलि' और 'लिंग-पूजन' ये दोनों उनमें मुख्य हैं।

69.सायण माधवात प्राचीनोऽयं माधवः। रजोजुषेजन्मनि सत्यवेधसे इत्यादि मंगलाचरण पूर्व विवरण ग्रन्थ कारः।

70. 'माधवभट्टास्तुविहिसोतोरित्येषाऋगिन्द्राण्यवाक्यमितिमन्यते।'

71. किन्त्वस्मिम् नुगडेन वत्र्म रचितं प्रागेव चेद्विद्यते। व्याख्यानं कियदेकवेद-वचसां तेनेदमारभ्यते। (ब्राह्मण सर्वस्व)

72. उव्वट प्रभृतिभिर्भाष्य...।

73. देखिए गोपथ ब्रा. 2।6।12 में अथर्व 20। 12। 127 मंत्र की व्याख्या।

■

ग्यारहवां प्रकरण

1. वैदिक संस्कृति

प्राक्वेदकालीन भारतीय संस्कृति

वेदों के निर्माण से पूर्व भारत में एक सुसंस्कृत समाज था। उसकी संस्कृति मिस्र और इराक के पुरातन धर्मों के समान थी। भारत की प्राचीन प्राक् वेदकालीन संस्कृति एशिया माइनर और भूमध्य सागरीय प्रदेशों की संस्कृतियों से अधिक समानता रखती है। मिस्र, क्रीट, सुमेर, असीरिया, बैबिलोनिया और खाल्डिया की संस्कृति में और मानव वंश की संस्कृति में बहुत समानता है। इन देशों में भी प्राचीन काल में शिव, विष्णु और काली पूजा होती थी। नाग पूजा, पितृ पूजा, लिंग पूजा तथा ग्रह पूजा भी प्रचलित थी। देवदासी पद्धति, मूर्ति पूजन, मुहूर्त फल, ज्योतिष, पुजारी आदि प्राचीन भूमध्यसागरीय संस्कृति के अंग हैं। नील, युफ्राटिस-तैग्रिस (दजला-फरात) और सिन्धु नदियों के तीर पर विकसित हुई प्राचीन संस्कृति का उत्तराधिकार हमारी हिन्दू संस्कृति को मिला है।

वैदिक संस्कृति पर बैबिलोनियन संस्कृति का प्रभाव

अब इस बात में संदेह करने की कोई गुंजाइश नहीं रह गई कि प्राचीन वैदिक संस्कृति पर बैबिलोनियन संस्कृति का भारी प्रभाव है। ऋग्वेद की अनेक ऋचाएं बैबिलोनियन भाषाओं से मिलती हैं। जिन ऋचाओं का अर्थ सायण आदि भाष्यकार नहीं लगा सके, उन पर बैबिलोनियन ऋचाओं से काफी प्रकाश पड़ता है।[1]

आर्यों की अग्निपूजा, वेदों के अग्निसूत्र, और इन्द्र के स्थापित तथा परीक्षित और जनमेजय के पशुयज्ञ

प्राचीन आर्य अग्नि पूजक थे। वेद के अग्नि सूक्तों में बैबिलोनियन देव 'य', 'दमुत्सि' आदि का मिश्रण मिलता है। एक बार क्रुद्ध होकर इन्द्र ने यतियों को कुत्तों को खिला दिया था। बौद्ध जातकों में इन यतियों के सम्बन्ध में लिखा है कि वे जंगलों में आश्रम बना कर रहते थे। संभव है कि इन्द्र के कोप से भयभीत हो, ये यति राजनीति से दूर रह यज्ञ-याग में ही संतोष मानने लगे हों। पीछे इन्हीं ने इन्द्र की स्तुति की। ये यति किस प्रकार वैदिक संस्कृति का प्रचार करते थे, इसकी एक झलक हमें बौद्धों के सुत्तनिपात में दीख पड़ती है। वहां लिखा है कि 'बावरी नाम के एक यति ने कौशल देश से आकर गोदावरी के तट पर एक आश्रम स्थापित किया। धीरे-धीरे आश्रम के आसपास बस्ती बढ़ने लगी। उन लोगों की सहायता से वह यति यज्ञ करने लगा।' यह कथा तो बुद्धकालीन है। इससे पूर्वकाल में भी ऐसा ही होता था।

मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के नगरावशेषों में मन्दिर समझी जाने वाली इमारतों के ध्वंस मिले हैं। परन्तु इनमें कोई देवमूर्ति नहीं है। एक स्थान पर लिंग के आकार का स्तम्भ अवश्य मिला है। पर इससे यह नहीं कहा जा सकता कि ये दास लोग लिंग पूजन करते थे। पर उनका एक पूजा स्थल तो होता ही था। इन्द्र ने मण्डप बना कर यज्ञ प्रथा जारी की थी। शतपथ में एक स्थान पर कहा गया है कि 'यज्ञ विष्णु था, और वह वामन (बौना) था, धीरे-धीरे वह बढ़ता चला गया।[2]' पुराणों में वामन अवतार बलि-बन्धन की कथा का आधार यहीं से प्रतीत होता है, परन्तु इसका यह स्पष्ट अर्थ ध्वनित है कि यज्ञ संस्था साधारण अग्निहोत्र से बढ़कर कैसे पुरुषमेध तक बढ़ गई।

पुरुषमेध के रूप में नर बलि तक इन यज्ञों में होती थी। धीरे-धीरे सब संस्कारों और गृह्य कृत्यों में यज्ञ प्रविष्ट हो गया। इसने पुरोहितों का महत्व भी बढ़ाया। जब दासों और आर्यों का युद्ध हुआ, तो बलिदान वाले यज्ञों का विरोधी देवकी-पुत्र कृष्ण उठ खड़ा हुआ। उसने इन्द्र का विरोध तो किया, परन्तु यज्ञों के भड़कीले प्रदर्शनों के सम्मुख उसकी गोपूजन संस्कृति टिक न सकी। अन्ततः परीक्षित राजा के समय में यज्ञ परिपाटी खूब विकसित होकर यमुना तट तक आ पहुंची, जिसका वर्णन हम अथर्व वेद में इस प्रकार पाते हैं–

'सारे मर्त्यलोक में श्रेष्ठ सार्वभौम वैश्वानर परीक्षित की स्तुति सुनो। पति पत्नी से कहता है– इस कौरव ने राजा होकर अंधकार को बांध कर लोगों के घर सुरक्षित किए। पत्नी पूछती है–तुम्हारे लिए दही लाऊं या मक्खन? परीक्षित के राज्य में पका हुआ बहुत सा जौ का दलिया यों ही मार्ग में पड़ा रहता है। (इस प्रकार) परीक्षित के राज्य में सुख की वृद्धि हो रही है।'

इन मंत्रों से हम देख सकते हैं कि परीक्षित द्वारा किए जाने वाले यज्ञों से लोग प्रसन्न थे। ऐसी स्थिति में घोर आंगिरस द्वारा श्रीकृष्ण को बताई गई सीधी-सादी यज्ञ विधि भला क्या काम कर सकती थी? इन यज्ञों के स्वरूप का एक वर्णन बौद्ध ग्रंथ 'सुत्त निपात' के ब्राह्मण धम्मिक सुत्त में मिलता हैः–

'..... इन ब्राह्मणों ने लोभवश ओक्काक राजा को गोमेध करने के लिए प्रवृत्त कर गोवध किया। जब गायों पर शस्त्र चलाया गया तो देव-पितर, इन्द्र, असुर और राक्षस सब ने कहा–'अच्छा हुआ। इससे पहले इच्छा, भूख और वृद्धावस्था ये तीन रोग थे– अब पशु-यज्ञ के कारण वे अट्ठानवे हो गये।'

यह ओक्काक कौन था, यह कहना अशक्य है। पर यह प्रकट है कि गंगा-यमुना के प्रदेश में परीक्षित और जनमेजय ने ही यज्ञों की धूम मचाई, जिनमें पशु-वध किया जाता था। इन्हीं से ब्रह्मावर्त की आर्य संस्कृति में हिंसक यज्ञों का प्रचलन हुआ। इससे ब्रह्मावर्त की कोई अवनति हुई हो, यह तो नहीं कहा जा सकता परन्तु इतना अवश्य हुआ कि ब्राह्मणों का समाज पर श्रेष्ठत्व स्थापित हो गया। यज्ञ होने से पौरोहित्य उनके हाथ में आ गया, कहा जाने लगा– 'जिस राजा के यहां पुरोहित नहीं होता, उसका अन्न देवता नहीं खाते। पुरोहित प्राप्त करके राजा स्वर्ग को ले जाने वाली अग्नि को प्राप्त करता है। इससे उसका क्षात्रबल, तेज और राष्ट्र बढ़ता है। पुरोहित की वाणी, पाद, चर्म, हृदय और गुप्तेन्द्रिय में पांच क्रोधाग्नि होती हैं जो उनकी अभ्यर्थना करने, पाद्य, वस्त्रालंकार और धन उनको दान देने तथा महलों में ऐश (स्त्री-भोग) कराने से शांत रहती हैं।'

यज्ञों के विस्तार के लिए ही ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना हुई। परंतु जब ब्राह्मण ग्रंथों की रचना हो रही थी, तभी

कुछ ऐसे सम्प्रदाय भी भारत में उत्पन्न हो रहे थे– जो यज्ञ कर्म से श्रद्धा रहित थे। उपनिषद तो यज्ञ की निन्दा करते ही हैं, कुछ श्रुतियां भी ऐसी हैं जो इनके आडम्बरमय कर्मकाण्ड की घर्षणा करती हैं। सांख्य दर्शन के निर्माता कपिल ने तीव्र उक्तियों से कर्मकाण्ड का विरोध करके ज्ञान ही को मुक्ति का उपाय बताया। गीता भी वेदों की निन्दा करती है। श्रीमद्भागवत में भी हिंसावर्जित कर्मविधि को सात्विकी कहा है। वास्तव में देखा जाय तो यज्ञों का और उसकी पद्धतियों का ऋग्वेद में बहुत ही कम तथा अस्पष्ट उल्लेख है। यज्ञों का जोर तो बाद में यजुर्वेदकाल में हुआ, जो निस्संदेह भारत संग्राम (महाभारत) के बाद का काल है। यजुर्वेद में यज्ञ विधि का पूरा वर्णन है। शुक्ल यजुर्वेद का तो पृथक्करण ही यज्ञ के लिए हुआ। सच तो यह है कि–

1.'प्लवाह्यते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशौक्त मवरं येषुकर्म।
एतच्छेयोयेऽभिनन्दन्ति मूढाः जरामृत्युते पुनरेवापियन्ति।'
(मुण्डकोपनिषद 1,200।)

2. न तं विदाथ य इमा जजान अन्यद युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जलप्या असुतृप उक्थ शासञ्चरन्ति।
(ऋ. 10, 82, 7)

3. द्रव्य मज्ञैर्यक्ष्यमाणं दृष्ट्वा भूतानि विम्यति।
एष माकरुणो हन्यादज्ज्ञो ह्यसुतृष्ध्रुवम्।
(श्रीमद्भागवत)

किसी हद तक ऋग्वेद देवताओं की तथा यजुर्वेद आर्यों की सभ्यता का द्योतक है।

यजुर्वेद के काल में आर्यों के बड़े-बड़े राज्य फैल रहे थे। नगर व्यवस्था सुगठित हो चुकी थी। वर्णों का संगठन हो गया था, ब्राह्मण और क्षत्रिय ये दो वर्ण बड़ी तेजी से संगठित हो रहे थे। ऋग्वेद के सूक्त और यजुर्वेद तथा उसके शतपथ आदि ब्राह्मण-ग्रन्थों को गम्भीरता पूर्वक मनन करने से पता लगता है कि यजुर्वेद के काल में आर्यों का मुख्य धर्म (अग्निहोत्र जो प्रातःसायंकाल के साधारण नित्य कृत्य से लेकर बड़े-बड़े वैधानिक राजसूय यज्ञों और अश्वमेध यज्ञों, जो कई-कई वर्षों में समाप्त होते थे) का रूप में बन गया था। यज्ञों के नियम, छोटी-छोटी बातों का गुरुत्व, उद्देश्य और तुच्छ याज्ञिक रीतियां, ये ही अब लोगों के धार्मिक विश्वासों में भर गए थे। ये ही थोथे विचार अब राजाओं और राजगुरुओं में विचार के विषय थे। इन्हीं का ब्राह्मणों की अनथक गाथाओं में उल्लेख है।

यजुर्वेद, जो यज्ञों का मूल स्तम्भ है, उसका नवीन संस्करण जनक के दरबारी विद्वान याज्ञवल्क्य वाजसनेय ने शुक्ल-यजुर्वेद-वाजसनेयी नाम से किया तथा शतपथ ब्राह्मण रच कर मंत्रों को व्याख्या से पृथक किया। सम्भवतः यह कार्य याज्ञवल्क्य के जीवन काल में पूरा नहीं हुआ, उनके बाद अनेक विद्वानों ने बहुत दिनों में इसे पूर्ण किया जिससे उसका एक सम्प्रदाय बन गया। इस प्रकार वैदिक यज्ञों का आरम्भ उस काल का है जब सुदास के युद्धों के बाद कुरु पांचालों के प्रबल राज्य दिल्ली और कन्नौज तक फैल चुके थे, और काशी-कोशल तथा विदेहों के राज्य भी विस्तार पा चुके थे।

ये यज्ञ राजाओं को किस तरह उपाधि दान देते थे- इसका वर्णन ऐतरेय ब्राह्मण के एक वाक्य से देते हैं– 'तब पूर्व दिशा में विदेहों ने सारे संसार का राज्य पाने के लिए 31 दिन तक इन्हीं तीनों ऋक्, यजु की ऋचाओं और गम्भीर शब्दों से इन्द्र का प्रतिष्ठापन किया। इसीलिए पूर्वी जातियों के सब राजाओं को देवताओं के दस आदर्शों के अनुसार सारे संसार के महाराजा की भांति राजतिलक दिया जाता है और वे इसके बाद सम्राट कहलाते हैं।'

कभी-कभी राजाओं और पुरोहितों में कर्म-काण्ड के विषय पर भी विवाद होता था जिसका एक मनोरंजक उदाहरण शतपथ ब्राह्मण में है– 'विदेह जनक की भेंट कुछ ऐसे ब्राह्मणों से हुई, जो अभी आए थे। ये श्वेतकेतु आरुणेय, सोमशुष्क सत्ययज्ञि और याज्ञवल्क्य थे। उसने उनसे पूछा– *'तुम लोग अग्निहोत्र जानते हो?'*

तीनों ब्राह्मणों ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर दिया। पर किसी का उत्तर ठीक न था। याज्ञवल्क्य का उत्तर यथार्थ बात के बहुत निकट था, परन्तु वह भी पूर्णतया ठीक नहीं था। जनक ने उनसे कहा–तुम लोग कुछ नहीं जानते और वह रथ पर चढ़ कर चला गया।

ब्राह्मणों ने कहा– 'इस राजन्य ने हमारा अपमान किया है।' याज्ञवल्क्य रथ पर चढ़कर राजा के पीछे गया, और उसकी शंका निवारण की। तब से जनक ब्राह्मण कहा जाने लगा।

वास्तव में निरर्थक अग्निहोत्रों का वर्णन ऐसा विस्तृत हो गया था, और क्रियाएं इस तरह बढ़ गई थीं कि याज्ञवल्क्य जैसे ब्राह्मण को भी याद न रहीं– शायद इसी

गड़बड़ी को मिटाने के लिए उसे शुक्ल यजुर्वेद का सम्प्रदाय बनाना पड़ा, और अपना स्वतंत्र ब्राह्मण शतपथ बनाने में तमाम जीवन नष्ट करना पड़ा।

पुरोहितों में दक्षिणा का लालच बढ़ रहा था, वे धन, सोना, चांदी, जवाहरात, घोड़ा, गाड़ी, गाय, खच्चर, दास, दासी, खेत, घर और हाथियों को ठाट से रखते थे।[3] यज्ञ में सोना दान करना उचित समझा जाता था। चांदी दान देने का बहुत ही निषेध था। ब्राह्मण-ग्रन्थों में इसका भी अनोखा कारण बताया जाता है :-

'जब देवताओं ने अग्नि को सौंपा हुआ धन उससे फिर मांगा-तो अग्नि रोई और उसके जो आंसू बहे वे चांदी हो गए। इसी कारण यदि चांदी दक्षिणा में दी जाय तो उस घर में रोना मचेगा।'

बड़े-बड़े यज्ञ प्रायः वसन्त ऋतु (चैत्र-वैशाख के महीनों) में होते थे। ऐतेरेय ब्राह्मण के चौथे भाग को पढ़ने से इस विषय का अधिक स्पष्टीकरण हो जाता है।

2. यज्ञों में पशुवध

ऐतरेत ब्राह्मण[4] में लिखा है कि किसी राजा या प्रतिष्ठित अतिथि के सत्कार के लिए तो बैल या गाय को मारा जाना चाहिए। आधुनिक संस्कृत में 'अतिथि' का एक पर्याय 'गोघ्न' (गाय को मारने वाला) भी है। कृष्ण यजुर्वेद के ब्राह्मण में यह व्योरेवार लिखा है कि छोटे-छोटे यज्ञ में विशेष देवताओं को प्रसन्न रखने के लिए किस प्रकार का पशु मारना चाहिए। गोपथ ब्राह्मण में बताया गया है कि यज्ञ में बलि दिए पशु का कौन सा भाग किसे मिलना चाहिए। पुरोहित लोग जीभ, गला, कन्धा, नितम्ब, टांग इत्यादि पाते थे। यजमान पीठ का भाग लेता था और उसकी स्त्री को पेडू के भाग से संतोष करना पड़ता था।[5] शतपथ ब्राह्मण में इस विषय पर एक मनोहर विवाद है कि पुरोहित को बैल का मांस खाना चाहिए या गाय का? अंत में परिणाम निकाला गया है कि दोनों ही मांस न खाने चाहिए। फिर भी याज्ञवल्क्य कहते हैं कि 'यदि नर्म हो तो हम उसे खा सकते हैं।'[6] शतपथ ब्राह्मण में पशु का यज्ञ में बलिदान देने के विषय में एक अद्‌भुत वाक्य है :– 'पहले देवताओं ने मनुष्य को बलि दिया। जब वह बलि दिया गया तो यज्ञ का तत्व उसमें से निकल गया, और उसने घोड़े में प्रवेश किया। तब उन्होंने घोड़े को बलि दिया। जब घोड़ा बलि दिया गया तो यज्ञ का तत्व उसमें से निकल गया और उसने बैल में प्रवेश किया। तब उन्होंने बैल को बलि दिया। यज्ञ का तत्व उसमें से निकल गया और उसने भेड़ में प्रवेश किया। जब भेड़ की बलि दी गई तो यज्ञ का तत्व उसमें से भी निकल कर बकरे में प्रविष्ट हो गया। तब उन्होंने बकरे को बलि दिया। जब बकरा बलि दिया गया तो यज्ञ तत्व उसमें से भी निकल गया और तब उसने पृथ्वी में प्रवेश किया। तब उन्होंने पृथ्वी को खोदा और उसे यज्ञ तत्त्व को चावलों और जौ के रूप में पाया।... जो मनुष्य इस कथा को जानता है उसे चावल आदि द्रव्य यज्ञ में हवि देने से उतना ही फल होता है जितना कि इन पशुओं की बलि करने से।[7]

पूर्व मीमांसा में लिखा है कि बड़े-बड़े यज्ञों में कार्यकर्ता लोगों की पूरी संख्या 17 होती है– 1 यजमान 16 पुरोहित। परन्तु छोटे यज्ञों में केवल चार ही ब्राह्मण होते हैं।

बलिदान के पशुओं की संख्या यज्ञ के अनुसार होती थी। अश्वमेध में सब प्रकार के बलि- पशु अर्थात् पालतू और जंगली जानवर, थलचर, जलचर, उड़ने वाले, तैरने वाले, रेंगने वाले जानवरों को मिलाकर 309 से कम न होने चाहिए।

ऐसा प्रतीत होता है कि ज्यों-ज्यों हिंसा बढ़ी त्यों-त्यों यज्ञ की हिंसा का विरोध और उसके प्रति घृणा का प्रदर्शन भी होने लगा था। महाभारत में लिखा है :– 'वेद में जो लिखा है कि अज से यज्ञ करें, सो अज का अर्थ बीज है– बकरा नहीं।[8]' 'गायें अवध्य हैं, इन्हें नहीं मारना चाहिए।'[9] 'हिंसा धर्म नहीं है।'[10] 'वह कोई धर्म ही नहीं, जहां पशु मारे जायें।'[11]

चार्वाक् सम्प्रदाय वालों ने– जिनका प्रादुर्भाव उन्हीं दिनों हुआ था जब खूब पशु-हिंसा चल रही थी–उपहास से लिखा था, 'पशु को मारने से यदि स्वर्ग मिलता है तो यजमान अपने पिता को ही मारकर हवन क्यों नहीं कर डालता?'[12]

मत्स्यपुराण में यज्ञ के विषय में मनोरंजक वर्णन पाया जाता है- 'ऋषि पूछने लगे कि स्वायंभुव मनु के समय वेदोक्त मंत्रों से यज्ञ प्रचार किस ढंग से आरम्भ हुआ?'

'यह सुनकर सूत जी बोले– वैदिक मंत्रों का विनियोग यज्ञ कर्म में करके विश्व-भुक् इन्द्र ने यज्ञ का प्रचार किया, देवताओं का संगठन किया, सब यज्ञ के साधन

इकट्ठे किए और अश्वमेध का आरम्भ हुआ। इसमें महर्षि भी आए थे। इस यज्ञ में अनेक ऋत्विज अनेक प्रकार के हवि अग्नि को अर्पण करने लगे। जब सस्वर सामगान होने लगा और पशुओं का आलम्भन होने लगा, यज्ञ का सेवन करने वाले देवगण जब आहूत हुए– उस समय दीन पशुगणों का अवलोकन करके महर्षिगण उठे और इन्द्र से पूछने लगे कि तुम्हारी यज्ञ-विधि क्या है?' यह तो बड़ा अधर्म है, धर्म के नाम से अधर्म हो रहा है। यह पशु-हनन विधि तो अनुचित है। तूने धर्म का नाश करने के लिए ही पशु मार कर यह अधर्म करना शुरू किया है।

'यह धर्म नहीं है–अधर्म है। तुझे यज्ञ करना है तो यज्ञीय धान्य के बीजों से ही यज्ञ कर।' इस प्रकार ऋषियों ने कहा, परन्तु इन्द्र ने नहीं माना। तब इन्द्र और ऋषियों में बड़ा विवाद छिड़ गया कि यज्ञ जंगम सचल,जीव वस्तुओं से हो या स्थावरों (अचल, अजीव) से? यही विवाद था। जब ऋषि थक गए तब वे दुखी होकर सम्राट वसु के पास गए।'

'ऋषि बोले– हे उत्तानपाद के वंशधर! तूने कैसी यज्ञ-विधि देखी है, सो कह!'

'राजा वसु बोले– द्विजों को मेध्य पशुओं से तथा फलमूलों ही से यज्ञ करना उचित है। यज्ञ का स्वभाव ही हिंसा है। यह मैंने देखा है।'

राजा का यह भाषण सुनकर ऋषियों ने उसे श्राप दिया–'तेरा अधःपात हो।' इससे उसका अधःपतन हुआ।

यही कथा कुछ अन्तर से वायुपुराण में भी है। इससे पता लगता है कि कुछ विद्वान लोग यज्ञ में पशु-वध से अत्यंत घृणा करने लगे थे।

महाभारत के शान्तिपर्व में भी एक ऐसी ही कथा है- 'इन्द्र ने भूमि पर आकर यज्ञ किया। जब पशु की आवश्यकता हुई, तब वृहस्पति ने कहा–पशु के लिए आटा लाओ– यह सुनकर मांस के लालची (पशुगृद्धाः) देवता बारम्बार वृहस्पति से कहने लगे कि बकरे के मांस से हवन करो।'

ऋषि बोले– यज्ञों में बीजों से (धान्यों से) यज्ञ करना चाहिए। 'अज' बीज का नाम है। बकरा मारना सज्जनों का काम नहीं। यह श्रेष्ठ कृतयुग है। इसमें पशु कैसे मारा जायेगा?

'तब सबने सम्राट उपरिचर वसु को मध्यस्थ कर कहा–हे महाराज! यज्ञ बकरे के मांस का करना चाहिए; या कि वनस्पतियों का? कृपा करके आप फैसला कीजिए।' राजा बोला–पहले यह बताओ किसका क्या मत है?

'ऋषि बोले–धान्य हवन हमारा पक्ष है, और पशु-हनन देवों का।' 'वसु ने कहा–तब बकरे के मांस से ही हवन करना चाहिए। इस पर ऋषियों ने उसे श्राप दिया और उसका अधःपतन हुआ।'

'अब वसु ने यज्ञ ठाना। उसमें वृहस्पति उपाध्याय था। प्रजापति के पुत्र सदस्य थे। एकत, द्वित्, त्रित, धनुष, रैम्य, अर्णवसु, परावसु, मेधातिथि, ताण्ड्य, शान्ति, देशाशिरा, कपिल, आद्यकठ, तैत्तिरी, कण्व, देवहोत्र ये सोलह ऋत्विज थे। इस यज्ञ में पशुवध नहीं किया गया। यह यज्ञ अहिंसक और शुद्ध था। इससे फिर उसका अभ्युदय और उन्निति हुई।'[13]

महाभारत में इस बात पर भी प्रकाश डाला गया है कि यज्ञों में पशुहिंसा वैदिक काल से बहुत बाद में पीछे चली थी। 'यह कृतयुग है, इस यज्ञ में पशु अहिंस्य हैं। क्योंकि इसमें चारों कलाओं से पूर्ण धर्म है। इसके बाद त्रेतायुग होगा, उसमें त्रयीविद्या होगी और यज्ञ-पशु प्रोक्षित होकर मारे जायेंगे।[14]'

श्रीमद्भागवत् में यज्ञ के विषय में लिखा है–'हे राजन्! तेरे यज्ञ में जो सहस्रों पशु तेरी निर्दयता से मारे गये वे तेरी उस क्रूरता का स्मरण करते हुए क्रोधित होकर तीक्ष्ण हथियारों से तुझे काटने को बैठे हैं।'

'इस दयाहीन ने यज्ञ में जो पशु मारे थे, वे ही क्रूद्ध होकर, उसका यह अयोग्य कर्म स्मरण करते हुए, उसको कुल्हाड़ों से छिन्न-भिन्न करने लगे।[15]'

सप्तसिंधु देश के यज्ञों में कदाचित गोवध होता था। परन्तु गंगा-जमुना की ओर गोवध का बहुत विरोध था।[16] कृष्ण बड़े भारी गोरक्षक तथा गोवध विरोधी थे, संभवतः देवेन्द्र से झगड़े का एक बड़ा कारण यह भी था कि वे देवेन्द्र की रुचि के विपरीत यज्ञ में गोवध पसन्द नहीं करते थे।[17] यदि कृष्ण भी इन्द्र के अनुकूल रह कर गोवध कर यज्ञ करते तो कदाचित वह भी ऋग्वेद के प्रसिद्ध देवता हो जाते। महाभारत में भी पशुवध का विरोध है।[18] यज्ञ में दो वेदियां बनाई जाती थीं। एक पूर्ववेदी-दूसरी उत्तरवेदी। उत्तरवेदी पूर्ववेदी से दूर रहती थी, वहीं पशु वध होता था, तथा वहीं यूप (स्तम्भ) गाड़ा

जाता था।[19] इस संबंध में तैत्तिरीय संहिता में महत्वपूर्ण संकेत है—ऋग्वेद दूध की, यजुर्वेद घृत की, सामवेद सोम की और अथर्व मधु की आहूतियों की विधि बताता है। परन्तु ब्राह्मण-इतिहास-पुराण-कल्प-गाथा नराशांसी मेद (चर्बी) की आहूति कहते हैं।[20]

बुद्ध ने पशुवध के विरोध में बड़ी ऊंची आवाज उठाई थी। उसने कहा— पहले ब्राह्मण अन्न-बल-कान्ति और सुख देनेवाली मान कर गाय का वध नहीं करते थे, परन्तु आज घड़ों दूध देनेवाली, बकरी के समान सीधी गाय को गोमेध में मारते हैं।[21]

इस बात के यथेष्ठ प्रमाण हैं कि ब्रह्मावर्त में सर्वप्रथम परीक्षित और उसके पुत्र जनमेजय ने यज्ञ की धूम मचाई। इसी से इन दोनों राजाओं का अथर्ववेद में काफी महत्व है।[22] ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्धकाल में यज्ञों का बहुत जोर था पर जनता को यज्ञों से घृणा थी। राजा और धनी ब्राह्मण कृषि के उपयोगी पशु, किसानों से जबर्दस्ती छीन लाते थे और यज्ञ-यूपों में बांधकर उनका वध कर डालते थे। ऐसा संकेत हमें 'कोशल संयुक्त सुत्त' में मिलता है–

'बुद्ध तब श्रावस्ती में रहते थे। उस समय कौशल राजा पसेनदि का महायज्ञ आरम्भ हुआ। पांच सौ बैल, पांच सौ बछड़े, पांच सौ बछिया, पांच सौ बकरे और पांच सौ भेड़े यज्ञ में वध करने के लिए यूपस्तम्भों से बंधे थे। राजा के दास-दूत और कर्मचारी दण्डभय से रोते हुए यज्ञ के सब काम कर रहे थे। इसकी सूचना भिक्षुओं ने भगवान को दी।' 'तब भगवान् ने कहा— अश्वमेध, नरमेध, सम्यक, पाश वाजपेय और निरर्गल यज्ञ बहुत खर्चीले हैं; पर महत्फलदायक नहीं। जिस यज्ञ में भेड़, बकरे, गाय, बैल आदि विविध प्राणी मारे जाते हों उसमें संत ऋषि नहीं जाते। पर जिसमें प्राणियों की हिंसा नहीं होती उसमें संत महर्षि जाते हैं।[23]

इस उदाहरण से यज्ञ विरोधी भावना प्रकट होती है। और भी एक उदाहरण है—

'कूटदन्त ब्राह्मण ने एक बड़ा यज्ञ करना आरम्भ किया। गाय, बैल आदि सैकड़ों प्राणी वध के लिए खम्भे (यूप) से बंधे थे। बुद्ध की कीर्ति सुन वह बुद्ध के पास आया। उसकी विनती पर बुद्ध ने उसको प्राचीन काल में महाविजित राजा ने निरामिष यज्ञ किस प्रकार किया-यह बात बताई। सुनकर ब्राह्मण बुद्ध का उपासक बन गया और बलिदान के पशुओं को छोड़ दिया।[24]'

वैदिक आर्यों का श्रौत-स्मार्त धर्म तथा वैदिक संस्कृति का व्यापक विस्तार

वैदिक आर्यों ने प्रथम पंचसिंधु प्रदेश (सिन्ध पंजाब) में प्रवेश किया— धीरे-धीरे शेष भारतीय अवैदिक प्रजा पर भी उनका प्रभाव फैल गया। इस प्रभाव का विस्तार दो रूपों में हुआ, राजसत्ता के बल पर और ब्राह्मण पुरोहितों के द्वारा। इस संस्कृति की मूलभूत वस्तु थी– निसर्ग शक्तियों में भूतपूर्व जनों के कल्पित चेतन देवों की यज्ञ द्वारा आराधना या उपासना। ऐहिक जीवन की आवश्यकताओं और भौतिक साधनों की उपलब्धि ही इन यज्ञों का ध्रुव ध्येय था। राजा राजासूय करके महाराज, और महाराज अश्वमेध करके सम्राट बन जाता था। पुरोहित ब्राह्मण अनगिनत धन, दास-दासी आदि दान-दक्षिणा में पाकर तथा राजाओं से संत्कृत और पूजित होकर खूब संपन्न और अधिकार पूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। इन पुरोहितों को प्रसन्न करने, राजाओं के निकट पहुंचने तथा विविध भौतिक अभिलाषाओं के लिए जन साधारण भी यज्ञ करते थे। काम्येष्टि यज्ञ से और अथर्व वेद में वर्णित प्रयोगों से तो ऐसा प्रतीत होता है कि यातु (जादू) भी यज्ञों का एक अंग था।

वेद में सूर्य, सविता, पूषन्, मित्र, भग, वरुण, विश्वकर्मन, अदिति, त्वष्टा, उषस्, अश्वी, इन्द्र, ब्रह्मणस्पति, मरुत्, रुद्र, पर्जन्य, अग्नि, सोम, यम, पितर आदि जिन देवों का सूक्तों में ऋषियों ने वर्णन किया है, उन सूक्तों में उन्हें सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ बताने की चेष्टा की गई है। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक देवता परमेश्वर बनने लगा और उसकी मूल भिन्न शक्तिमत्ता लुप्त हो गई। यजुर्वेद में यज्ञों में अवश्य देवों की पृथक् शक्तिमत्ता वर्णित की गई है। अथर्ववेद में तो ये देवता जादू के माध्यम हैं, विशेषकर भृगु-अंगिरस और अथर्वन तो बड़े भारी जादूगर प्रतीत होते हैं। ऋग्वेद के वशिष्ठ भी जादू में दखल रखते हैं। वैदिक देवता, जो अति प्राचीन आर्य पुरुष ही हैं, वेदों में भौतिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाली भौतिक शक्तियों में कल्पित किए गए हैं। अग्नि और सूर्य शुद्ध भौतिक चमत्कृति-जनक

चेतन शक्ति की भांति कल्पित किए गए। मित्र और वरुण क्रमशः दिन और रात के स्थान पर आरोपित हुए। सवितृ वर्षा ऋतु से पृथक सूर्य के रूप में परिचित हुआ। पूषण धान्य और वनस्पतियों का पोषण करने वाले वसन्तकालीन सूर्य में आरोपित हुआ। उषस् प्रभात की देवी और इन्द्र लड़ाकू, विजयी, अधिक मात्रा में सोम पीने वाला, समूचे बैल को भूनकर खानेवाला आकाश का देव हुआ। मरुत (मारने) वाला इन्द्र का सहचर हुआ। ऋग्वेद के बुध-सूक्त इन्द्र के रचे हुए हैं। ऋषि जब सूक्त रचने लगा तो इन्द्र ने उसमें प्रविष्ट होकर सूक्त रचे। रुद्र पहले तूफान का देवता था, तथा अदिति अखण्ड आकाश का। यद्यपि सभी देवताओं पर भौतिक अधिष्ठान को पूरी तौर पर नहीं बिठाया जा सका, किन्तु भौतिक जीवन की भौतिक आकांक्षाएं पूरी करने के लिए साधन प्राप्त करने की रीति यही हो सकती थी कि इन देव पुरुषों में भौतिक शक्ति को आरोपित किया जाय। पहले अग्नि और सूर्य पर ही बहुत सी भौतिक आवश्यकताएं अलम्बित थीं, इसलिए वैदिक ऋषि और गृहस्थों में अग्निहोत्र का प्रचलन हुआ। पीछे पशुपालकों में दर्श पूर्णमासेष्ठि विधि में गोपालन को प्रधान अंग बनाया गया, और इस विधि का फल स्वर्ग प्राप्ति बताया गया। वैदिक मंत्रों की प्रार्थनाओं में अन्न, पशु, धन, शरीरबल, पत्नी, दास, पुत्र, शत्रु, नाश, रोगनिवारण तथा तेज वर्चस्व आदि भौतिक इच्छाओं की ही मांग है। पीछे स्वर्ग की अवधारणा को ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रविष्ट किया गया। यद्यपि वैदिक कर्मकाण्ड में मरणोत्तर पारलौकिक गति का विचार है अवश्य, परन्तु उसका ठीक-ठीक विवरण वहां नहीं मिलता। देवयानगति, पितृयानगति, अंधतमस, देवलोक, पितृलोक आदि के उल्लेख वेद में हैं, परन्तु उनकी विशेष चर्चा उत्तर वैदिक साहित्य में, विशेषकर उपनिषद में ही है। यह एक बड़ी ही चमत्कारिक बात है कि वेद में इन वस्तुओं की कल्पना मरणोत्तर नहीं है, यहां तक कि यम जो नरक के अधिपति देव कहे जाते हैं, वास्तव में सूर्य-पुत्र और वैवस्वत मनु के भाई थे। ये ऋचाओं के कर्ता भी हैं। ये अपवर्त, जो वर्तमान ईरान का एक भाग है, के राजा थे। इस प्रदेश को ही मृत्युलोक या दोजख कहते थे। आप उपनिषद में इसी यम और नचितेता का वार्तालाप देख सकते हैं। नचिकेता मृत्यु के भेद को जानना चाहता था, परन्तु यम उसे बताना नहीं चाहता था। संभव है कि यह कोई राजनीतिक या कूटनीतिक विषय हो, परन्तु यम और मृत्यु का जिन अर्थों में हमें ज्ञान है, उसने इस वार्तालाप को कुछ और ही रंग दे दिया है। यद्यपि इस रंग में उपनिषद की उस बातचीत का कुछ भी अभिप्राय व्यक्त नहीं होता।

ऋग्वेद काल में ब्रह्मचर्य और गृहस्थ दो ही आश्रम विकसित थे। चार आश्रमों का उल्लेख उपनिषदों में प्रथम बार आया है। गौतम धर्मसूत्र[25] में तो यह स्पष्ट लिखा है कि वेद केवल एक गृहस्थाश्रम ही को मान्यता देता है। अथर्ववेद और ब्राह्मणों में ब्रह्मचर्याश्रम का, विशेषतः उपनयन का विधान विस्तार से है, परन्तु छान्दोग्य उपनिषद में चार आश्रमों का उल्लेख है। सच पूछा जाय तो वैदिक आर्यों ने वानप्रस्थ और सन्यास को अवैदिक संस्कृति से बहुत पीछे लिया है।

संस्कारों की कल्पना भी उत्तर साहित्य में है। गौतम धर्मसूत्र में[26], जो सब स्मृतियों से प्राचीन है, यज्ञ को भी संस्कारों में गिना गया है। वह चालीस संस्कार बताता है तथा अग्याधान, दस पूर्णमासेष्ठि, सोमयाग, पशु-वध आदि को संस्कारों में गिना है। गर्भाधान आदि सोलह संस्कारों का वर्णन अथर्ववेद में है। अथर्ववेद के कौशिक सूत्र एवं गृह्यसूत्रों में यह संस्कार विधि वर्णन की गई है। बहुत करके स्वामी दयानन्द ने वहीं से संस्कार विधि को ग्रहण किया है। परन्तु प्राचीन गृह्यसूत्रों में 'सोलह संस्कार', ऐसा वर्गीकरण कहीं नहीं है।

वर्ण विभाजन और ब्राह्मण-क्षत्रियों का गठबन्धन

यज्ञों ही से वर्ण-विभाजन का प्रारम्भ हुआ। ब्राह्मण अपनी स्थिति को जानते थे कि ब्राह्मण राज्य नहीं कर सकता।[27] ब्राह्मण क्षत्रिय की सहायता के बिना कुछ नहीं कर सकता क्योंकि उसकी शक्ति केवल मुख में है।[28] 'जबकि क्षत्रियों की शक्ति भुजाओं में है, अतः उनसे मिल कर चलना। अच्छा है।'[29] इसीलिए ब्राह्मण राजा की प्रशंसा में कहता है– 'राजा साक्षात् प्रजापति है, इसीसे वह बहुतों पर राज्य करता है।[30]' 'ऐन्द्राभिषेक से वह इन्द्र हो जाता है।' अभिषेक के बाद गर्जना होती थी– 'इसे साम्राज्य मिला, स्वराज्य मिला, वैराज्य मिला, यह स्वयं परमेष्ठ हुआ, सारे संसार का स्वामी, पुरन्दर और धर्मरक्षक हुआ।[31]'

इस प्रकार ब्राह्मणों और क्षत्रियों का गठबन्धन होने पर वैश्यों और शूद्रों की स्थिति बहुत गिर गई। पुरुष सूक्त में वैश्य की उत्पत्ति जंघा से बताई गई है, परन्तु ताण्ड्य ब्राह्मण में उसकी उत्पत्ति जननेंद्रिय से कही गई है और कहा गया है कि उसके पास बहुत पशु हैं, इसलिए वह ब्राह्मणों और क्षत्रियों का भक्ष्य है,... उसे कितना भी खाया जाय, वह नहीं घटेगा।[32]...'वैश्य गधा है, सदा दबा हुआ...।' [33]

शूद्र के लिए कहा गया, 'शूद्र के पास कोई देवता नहीं, धर्मकृत्य नहीं, इसलिए वह अन्य जातियों की चरण सेवा करे।' 'उसे सदा इधर-उधर दौड़ाओ और चाहे जब निकाल बाहर करो। इच्छा हो तो पीट दो, चाहो तो मार भी डालो।'[34] उसे किसी को दान देने या बेचने में हानि नहीं। 'वह चलता-फिरता श्मशान है, इससे उसके इतने निकट वेद न पढ़ो कि वह सुन सके।'[35] यदि वह जान-बूझकर श्रुति (वेद) सुन ले तो लाह या सीसा गलाकर उसके कान में डाल दो।[36]

दसवें मंडल में चार वर्णों का उल्लेख ऋग्वेद में उत्तरकालीन है। 'ब्रह्माण' और 'क्षत्र' शब्द अवश्य प्राचीन हैं, पर वे वर्ण के वर्तमान अर्थों में नहीं। 'आर्य वर्ण' और 'दास वर्ण' शब्द भी आए हैं। इससे यह प्रकट होता है कि आर्यों की भांति दासों का वर्ण भी महत्वपूर्ण था। प्रकट है कि आर्यों से विजित होने पर दासों को किस प्रकार आधीन होना पड़ा। वैदिकेतर भारतीय प्रजा को आर्यों द्वारा आधीन करने में यज्ञ धर्मसंस्था ने बहुत मदद दी। 'प्रजापति ने यज्ञार्थ ही धन निर्माण किया है,'[37] ऐसा कहकर खास-खास अवसरों पर वैश्यों और शूद्रों का धन अपहरण करना धर्मानुमोदित ठहराया गया। शूद्र प्रजा को चाहे जो दण्ड देने तथा उसे समाज से निकाल बाहर करने का किसी भी वैदिक आर्य का अधिकार था।[38]

स्मृतियों के कायदे कानून के अनुसार वैदिक आर्य व्याज, मुनाफा या लगान शूद्रों या कनिष्ठों से, उच्च वर्णों की अपेक्षा बहुत अधिक लेते थे। शूद्रों के हाथ में कृषि, पशु-पालन और सेवा के कार्य थे। शिल्प और कृषि अच्छे धन्धे थे, परन्तु उनकी आय का अधिकांश भाग राज्य द्वारा ले लिया जाता था। शूद्रों से वार्षिक साठ टका ब्याज लेने का हक उच्चवर्गियों को था।

श्रौत-स्मार्त धर्म के अनुयायियों ने खूब कसकर वैदिकेतर जनों को दासता में रक्खा, और इसे वैदिक संस्कृति की पवित्रता के लिए जरूरी बताया। वैदिक धर्माचरण करने का ब्राह्मणों-क्षत्रियों ने दूसरों को अधिकार ही नहीं दिया, खासकर पुरोहित का धन्धा तो दूसरा कर ही न पाता था। क्षत्रिय विश्वामित्र को पुरोहित का कार्य करने के कारण बड़े-बड़े लांछनों और कष्टों का सामना करना पड़ा। 'व्रात्यस्तोम' विधि सामवेद के ताण्ड्य ब्राह्मण में है, तथा कात्यायन के श्रौत सूत्र में भी है। इसका उद्देश्य अवैदिकों को वैदिक बनाने का था, परन्तु इसका उपयोग बहुत कम था।

वेदों का विषय देवताओं का स्तवन, ब्राह्मण ग्रंथों का यज्ञीय कर्मकाण्ड और उपनिषदों का ब्रह्मविद्या का व्याख्यान है। परन्तु वर्णाश्रम धर्म का विस्तृत प्रतिपादन सूत्र ग्रन्थों और स्मृतियों में है। यह श्रौत और स्मार्त धर्मशास्त्र वैदिक आर्यों के समाज में धार्मिक रीति-रिवाजों तथा कायदे कानून का शास्त्र है। वैदिक काल में जो कायदे कानून तथा रीति-रस्म रूढ़ होते गए, उन्हीं को ग्रन्थ रूप में सूत्रों और स्मृतियों में संग्रह किया गया है। स्मृति का अर्थ है—वैदिक आर्यों के रीति-रिवाज और सामाजिक तथा धार्मिक नियमों की स्मरणपूर्वक की गई नोंध, याददाश्त और सूचनाएं। इसी से मनु आदि जोर देकर यह कहते हैं कि स्मार्त धर्म वेदमूलक है। वेदोत्तर काल में जो नई बातें समाज में प्रविष्ट हुई उनका समावेश भी इन स्मृतियों में है। इन स्मार्त ग्रन्थों में गौतम, आपस्तम्ब, वशिष्ठ, शंख, लिखित, मनु, याज्ञवल्क्य, नारद, वृहस्पति आदि सब एक-सी ही समाज संस्था का प्रतिपादन करते हैं, जिसमें मूलतः ब्राह्णों की श्रेष्ठता और शूद्रों की हीनता प्रदर्शित है।

वेदोत्तर काल में क्षत्रियों में, ब्राह्मणों की श्रेष्ठता के विपरीत आंदोलन उठ खड़ा हुआ था। यह आन्दोलन दो रूपों में खड़ा हुआ। एक तो यह कि कुछ क्षत्रिय ब्राह्मणत्व के अधिकार मांगने लगे। विश्वामित्र और वशिष्ठ के झगड़ों का मुद्दा यही था, और भी कई कुल विश्वामित्र की भांति ब्राह्मण हो गए।[39] दूसरा आंदोलन क्षत्रियों की अपेक्षा ब्राह्मणों के अधिक अधिकारों के विपरीत था। एल, पुरूरवा, नहुष, वेन, हैहय सहस्रार्जुन, वैतहव्य, सृंजय आदि राजा और राजवंश ब्राह्मणों के श्रेष्ठत्व के विरुद्ध लड़े। वेन ने यज्ञ और ब्राह्मणों की दक्षिणा का विरोध किया।

ब्राह्मणों के कर माफ थे। यह रियायत हैहय और चीतहव्य राजाओं ने रद्द कर दी।[40] उन्होंने ब्राह्मणों की गौओं की जबरदस्ती कुर्की कर ली। परशुराम ने ब्राह्मणों के इस अधिकार के लिए संगठित युद्ध किया। अंत में ब्राह्मणकुल, राजकुल, राजसंस्था और पुरोहित के महत्व आदि झगड़ों का निर्णय महाभारत संग्राम में ही हुआ। उसमें क्षत्रिय वर्ग नष्ट हो गया और ब्राह्मणों का स्थान समाज में फिर दृढ़बद्ध हुआ। परन्तु इसी बीच क्षत्रियों ने एक और दृढ़ कदम बढ़ाया और उपनिषदों के रूप में ब्रह्मतत्त्व स्थापित कर उस ब्रह्मज्ञान से ब्राह्मणों को वंचित करने की भरपूर चेष्टा की। इस ब्रह्मवाद ने कर्मकाण्ड और यज्ञ संस्था को दुर्बल कर दिया, उसमें जीर्ण होने के लक्षण व्यक्त होने लगे। यज्ञ धर्म का निर्वाह कठिन हो गया और वैराग्य, गम्भीर विचार, सदाचार, सत्य, अहिंसा और अपरिग्रह के आधार पर अवैदिक धर्मो के संगठन बनने लगे।[41]

3. शिश्न देवाः

ऋग्वेद में शिश्नदेव का उल्लेख है।[42] उसी को आधार मानकर लिंग-पूजन प्रचलित हुआ। अथर्व वेद में 'वृहच्छेप' और ऋग्वेद में 'सप्तबधि' तथा 'शिपिविष्ठ' का उल्लेख है। ऋग्वेद में यम-यमी सूक्त में भाई-बहिन के तथा पिता-पुत्री के काम सम्बन्ध वर्णित हैं।[43] ऋग्वेद में तथा अन्य वेदों में भी और ऐसे वर्णन हैं।[44]

इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्राचीनकाल में असुरों में भाई-बहिन और माता-पुत्र के विवाह होते थे[45] जिनके कारण सम्पत्ति विषयक होते थे, जिससे सम्पति घर से बाहर न जा सके। यम यद्यपि आदित्य थे, परन्तु उनकी पारिवारिक संस्कृति अनार्य थी। इससे संभव है कि परम्परानुसार बहिन यमी ने ऐसा प्रस्ताव किया, जिसका यम ने विरोध किया।[46] वशिष्ठ ने अपनी बहिन अरुन्धति से विवाह किया था।

4. यौन अभिव्यक्ति

मंदिरों की दीवारों पर कलापूर्ण अभिव्यक्ति का एक अच्छा उदाहरण पुरी के मंदिर में है। इसके अतिरिक्त भुवनेश्वर के लिंगराज मंदिर में, कोणार्क के सूर्य मंदिर में, खजुराहो के राधाकृष्ण मंदिर में, और अन्यान्य अनेक मंदिरों की दीवारों पर यौन-अभिव्यक्ति की मूर्तियां तक्षित हैं। देवालयों में यौन अभिव्यक्ति की यह अनिवार्यता – जो तत्कालीन राजा या समाजपतियों की सहमति से श्रेष्ठ शिल्पियों द्वारा तक्षित की गई थी– उसे एकाएक विकृत मन की अभिव्यक्ति नहीं कहा जा सकता। भारतीय धर्म भावना के अनुसार देवस्थान अत्यंत पवित्र और सर्व पापनाशक होते हैं। इसलिए वहां अशौचाचार की सम्भावना हो ही नहीं सकती। मैं यदि यह कहूं कि प्राचीन मानव के जीवन-बोध में यौन-जीवन को गर्हित नहीं माना गया था, न उसमें लज्जा की या गुप्त रखने की कोई बात समझी गई थी, तो अत्युक्ति नहीं होगी। महाभारत के आदि पर्व में यौन भावना की आकांक्षा और तृप्ति सम्बन्धी ऐसी कहानियां हम पाते हैं जिनसे प्राचीन भारतीयों की यौन भावना पर प्रकाश पड़ता है। अनेक ऋषियों और देवताओ की मुक्त यौन कामना, शुक्रस्खलन, प्रणय याचना और सम्भोगों की अनगिनत कहानियां महाभारत और पुराणों में हैं, जिन्हें अकारण कल्पित नहीं कहा जा सकता। ऐसी यौन अभिरुचि रखने पर भी ये लोग न देवत्व से और न ऋषित्व से पतित हुए। यह एक महत्वपूर्ण बात है कि हिंदू धर्म इह लोक के प्रति विमुख नहीं है। 'रूपंदेहि, जयंदेहि, मनोरमा भार्यादेहि, जैसी प्रार्थनाएं यही अभिव्यक्त करती हैं। उपनिषद में सृष्टि के मूल में ब्रह्मा रति की कामना करता है। वृहदारण्यक और छान्दोग्य उपनिषदों में संभोग ही को यज्ञ कहा गया है। तथा वामदेव्य गान को मैथुन में ओत-प्रोत बताया गया है। यहां शंकराचार्य जैसे यति ने भी यह भाष्य किया है कि–'समागम चाहने वाली जो स्त्री शैया पर आवे उसे न छोड़े। 'प्रतिस्त्री सहशेते' 'अथ यस्य जायायैजार...' इत्यादि वाक्यों को हम आज की भाषा में अश्लील कह सकते हैं, परन्तु यह त्रैत्य एक मार्के की बात है। (1) शिश्न को देवता मानना, (2) संभोग को यज्ञ स्वीकार कर लेना (3) और संभोग याचना करने वाली स्त्री को अस्वीकार न करना, ये तीन ऐसी भावनाएं थीं, जिन्होंने उस काल की सम्पूर्ण विकसित जातियों में मुक्त सहवास की प्रथाएं प्रचलित करा दीं। इसी से देवता ही नहीं ऋषि मुनियों तक के जीवन, मुक्त सहवास से लिप्त पाए जाते हैं और इसके लिए उन्हें कोई दोषी नहीं ठहराता। आर्यों

में जहां पृथक परिवार प्रथा थी, और प्रत्येक पुरुष की अपनी पत्नी और प्रत्येक पत्नी का एक पति था, वहां भी ऐसे सहवासों का वर्णन मिलता है, विशेषकर देवता ऐसे अवसर नहीं चूकते थे, जैसा कि इन्द्र-अहल्या, चन्द्र-तारा, उतथ्य पत्नी और वृहस्पति के आख्यानों में वर्णन है। यद्यपि देवों में भी बड़े-बड़े लोग पृथक पत्नी रखते थे, पर बहुत कम। बहुधा देवों में मुक्त सहवास का ही प्रचलन था और अप्सराएं किसी भी देव के लिए एक रात्रि का श्रृंगार करती थीं। आज की वेश्यावृत्ति, इसी मुक्त सहवास की चली आती हुई पुरानी परम्परा का एक भ्रष्ट रूप है।

हिमाचल के कुछ प्रदेशों में सब भाइयों में एक ही पत्नी रखने की रीति प्रचलित है। इसे वे बहुत लाभदायक समझते हैं। उनके यहां परिवार की सम्पत्ति का बटवारा नहीं होता। पुत्र, स्त्री और भूसंपति सभी की संयुक्त ही रहती है। देवों में भी ऐसा ही था। स्त्री-पुत्र-धन सम्पत्ति सभी की संयुक्त होती थी, वैयक्तिक नहीं।

प्रसिद्ध है कि देवताओं को यज्ञ भाग मिलता था। इसका मैं तो यह अर्थ समझता हूं कि देवलोक की कुल आय का परस्पर बटवारा होना ही यज्ञ भाग कहाता था। जिसे अपराधी समझा जाता था, उसे 'यज्ञ भाग' (आय का हिस्सा) नहीं मिलता था। इस प्रकार 'स्त्री' सहवास के संबंध में आज जो हमारी नैतिक धारणाएं हैं वे प्राचीनकाल में नहीं थीं। मुक्त सहवास कोई दोष नहीं माना जाता था। आर्यों में यही रिवाज आपद्धर्म के रूप में–नियोग कह कर बहुत बाद तक प्रचलित रहा।

इन आधारों पर हिन्दू धर्म (चाहे वैदिक, चाहे अवैदिक) सांसारिक स्थूल जीवन को स्वीकार करता रहा है। इसी से भारतीय शिल्प में और कला में यौन जीवन का समावेश किया गया और संसार के अन्यान्य देवालयों की भांति प्राचीन भारतीय मन्दिर-शिल्प में मिथुन मुद्राओं का तक्षण हुआ। पुरी और कोणार्क के तक्षण में, गान्धार शिल्प में, अजन्ता-एलौरा में, एवं परवर्ती आबू के मन्दिरों में सर्वत्र ही प्रवेश द्वार पर या मन्दिर की दीवारों पर मिथुन मूर्तियां अंकित की गईं। पुरी, भुवनेश्वर और कोनार्क के तक्षण में प्रत्यक्ष संभोग तक्षित हुए अन्यत्र स्वस्थ नर-नारी प्रेम मिलन मात्र तक्षित किए गए।

इसका आधार वह प्राचीन भावना है कि जिस भूमि में किसी प्राणी ने प्रेम किया है, वह भूमि ही देवता के वासस्थान के उपयुक्त हो जाती है। इसी भावना से देव मंदिर के द्वार या दीवारों पर यौन अभिव्यक्ति चित्रित की जाती थी और इसे भूमि का दोष दूर करना शिल्पी मानते थे। यद्यपि यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि पुरी, खजुराहो, कोणार्क और भुवनेश्वर के मंदिरों में यौन अभिव्यक्ति का जो चरम विकास हुआ है, उसमें शिल्प शास्त्र के किस नियम का पालन किया गया है। परन्तु यह तो स्पष्ट दीख पड़ता है कि मिथुन चित्र भारतीय मंदिर शिल्प के अविच्छिन्न अंग मान लिए गए थे। ऐसा प्रतीत होता है कि यौन अनुभूति की तीव्रता और यौन आनन्द की गम्भीरता किसी भी धार्मिक और आध्यात्मिक भावना द्वारा दबाई नहीं जा सकती, यह स्वीकार कर लिया गया। अतः यौन अभिव्यक्ति को स्पष्टतः स्वीकार कर लिया गया। बेबिलोनिया, मिस्र और चीन में भी ऐसा ही हुआ है। वहां के ईस्वी सन से पूर्व और अनेक वर्ष बाद तक पूजन में यौन अभिव्यक्ति प्रधान मानी गई थी।

उन्नीसवीं शताब्दी में हम जिन ईसाई धर्म भावनाओं से प्रभावित हुए हैं, यहां हम उसका भी उल्लेख अवश्य करेंगे। मध्ययुग के अंधकार में ऐसा समय आया था, जब कि योरोप में ईसाई पादरियों के प्रभाव से यौन निग्रह एक चरम आदर्श बन गया था। यहां तक कि तब स्वर्ग प्राप्ति के लिए शल्य क्रिया द्वारा नपुंसक बन जाने में भी कोई बाधा नहीं मानी गई थी। स्त्री दर्शन पाप माना जाता रहा। नए ज्ञान के प्रकाश से परवर्ती योरोप के आलोकित होने पर भी पादरी और गिरिजाघरों में ये यौन निग्रह के संस्कार ज्यों के त्यों बने रहे। हमारे देश में आधुनिकता का प्रथम स्पर्श ईसाई पादरियों के माध्यम से ही आया। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि 19वीं शताब्दी में जिस नई भारतीय संस्कृति का जन्म हुआ– उसमें यौन निग्रह का ईसाई आदर्श हमारे सम्मुख रहा।[47] ईसाई प्रचारक अपने इसी यौन निग्रह के आदर्श को सामने रख कर हिन्दू देवताओं, समाज और संस्कृति की खिल्ली उड़ाते, उन्हें अनाचार कहते रहे और नई सभ्यता की भावना में जागृत हिन्दू उनसे सहमत होते रहे। कालिदास और दूसरे संस्कृत कवियों

ने इसका परिवेशन करने के लिए यौन अभिव्यक्ति का जो रस रूप चित्रण किया, उसे भी अश्लील समझा गया। इस प्रकार रस की अपेक्षा हमारे लिए यौन नीति ही प्रमुख हो गई।

निस्संदेह हम पर प्रभाव था– जैन और बौद्धधर्म के संयम का भी। दोनों ही धर्मों ने स्त्री को त्याज्य कहा था। परंतु पीछे दोनों ही धर्म अनेक शाखा-प्रशाखाओं में घूमते हुए, यौन अभिव्यक्ति के द्वार पर आ टकराए और फिर बौद्ध वामाचार शैव तन्त्राचार में मिल जुलकर वाममार्ग का धार्मिक रूप ग्रहण कर गया। अलबत्ता इसी काल में–जब शैव और बौद्ध धर्मों में यौन अभिव्यंजना प्रामुख्य प्राप्त कर रही थी, नाथ सम्प्रदाय-अलख-निरंजन के तत्व को लेकर स्त्री तत्व का प्रबल विरोध कर रहा था। इन सब अनुकूल प्रतिकूल, मिश्रित और गड़बड़ धर्म भावनाओं के ऊपर ईसाई धर्म के यौन निग्रह ने सदाचार, ब्रह्मचर्य और संयम के तत्वों को एक बार हिन्दू समाज में फिर से अधिष्ठित कर दिया।

5. सतयुग

(3921 ई.पू. से 2661 ई. पू. तक–1260 वर्ष)

सतयुग की सभ्यता पर तीन आधारों से प्रकाश डाला जा सकता है–

(1) मन्वन्तरों की काल गणना से।
(2) वेदोदय काल को प्राग्वैदिक काल से पृथक करके।
(3) ऐतिहासिक और पुरातत्त्व अनुसंधान के सूत्रों से। यहां मूल विवेचन चार बातों का है– सतयुग भोगकाल। ऐतिहासिक दृष्टि। सांस्कृतिक दृष्टि। सतयुग की मुख्य 2 घटनाएं।

6. सतयुग का भोगकाल

3921 ई. पू. से 2661 ई. पू. तक, छै मन्वन्तरों और 45 प्रजापतियों का 1260 वर्षों का भोगकाल, सतयुग का भोग-काल है।[48]

7. ऐतिहासिक दृष्टि

सतयुग को ऐतिहासिक दृष्टि से दो भागों में विभक्त किया जाता है–

1. प्रियव्रत शाखाकाल, जिसमें 35 प्रजापति और 5 मनु हुए।
2. उत्तानपाद शाखाकाल, जिसमें चाक्षुषमनु और 10 प्रजापति हुए।[49]

सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी इस काल के दो विभाग किए जाते हैं–

1. प्राक्वैदिक काल।
2. वेदोदय काल।

इस प्रकार–

1. स्वायंभुव मन्वन्तर काल।		
2. स्वारोचिष मन्वन्तरकाल	प्रियव्रत शाखा	35 पीढ़ियां
3. उत्तम मन्वन्तर काल।	प्राग्वेद काल	980 वर्ष
4. तामस मन्वन्तर काल।		
5. रैवत मन्वन्तर काल।		
6. चाक्षुष मन्वन्तर काल-	उत्तानपाद शाखा	10 पीढ़ियां
	वेदोदय काल	280 वर्ष
	कुल	1260 वर्ष

8. सतयुग की मुख्य-मुख्य ऐतिहासिक घटनायें

प्रियव्रत शाखा राज्यकाल में– भूमि का बटवारा हुआ, भूसंस्कार हुआ, भूमि को साफ करके, वनों को जला कर, भूमि को कृषि के योग्य बनाया गया। कृषि की उन्नति हुई। राज्य स्थापना की गई।[50]

उत्तानपाद शाखा राज्यकाल में ईरान पर विजय, प्रलय, वैकुण्ठ का निर्माण, राजा की मर्यादा, तथा राज्य व्यवस्था जैसी बड़ी-बड़ी ऐतिहासिक घटनाएं चाक्षुष मन्वन्तर में ही हुईं।[51]

महाराज अत्यराति ने अपने पांचों भाइयों और भतीजे सहित ईरान विजय कर चक्रवर्ती जानन्तपति का पद पाया। जिससे भरतों का वंश ईरान और एशिया में विस्तार पा गया। पृथु वैन्य ने राजा की मर्यादा स्थापित की।

9. प्रलय

प्रलय इस युग की सबसे बड़ी ऐतिहासिक घटना है। इसका वर्णन संसार की प्रायः सभी प्राचीन पुस्तकों में है। यह प्रलय वर्तमान मेसापोटामिया और एशिया के

उत्तर-पश्चिम प्रदेश में हुई थी। पर्शिया का यह भाग दक्षिण में फारस की खाड़ी और उत्तर में काश्यप सागर से दबा हुआ है। पर्शिया के पच्छिमोत्तर कोण में जो आरमीनिया प्रदेश है– वहां के बर्फीले पर्वतों से फरात नदी निकलकर मेसापोटामिया में आई है। यह मेसापोटामिया की खास नदी है। यह नदी बहुत बड़ी और विस्तार वाली है। संभवतः बर्फ का बांध टूटने से इसी दजला-फरात नदी में बाढ़ आई और उस प्रदेश को जो फारस की खाड़ी और काश्यप सागर के बीच है, समूचा डूबा दिया। इस भूस्थल में कुछ ऐसे स्थल हैं जो समुद्रतल से अट्ठारह हजार फुट तक ऊंचे हैं। अतः वहां संभवतः जल नहीं पहुंचा, परन्तु वृक्ष, वनस्पति, मनुष्य, पशु, पक्षी इस देश के भी नष्ट हो गए। पैलेस्टाइन का वह भाग- जो फारस की खाड़ी के पश्चिम-दक्षिण में है, समुद्र तल से केवल छह हजार फुट ऊंचा है, वह सर्वथा जलमग्न हो गया और वह स्थान मृत्युलोक बन गया।

इस प्रलय का कारण वहां के किसी ज्वालामुखी का विस्फोट था। जिससे बर्फ की चट्टानें टूट गईं जिससे दजला नदी की बाढ़, काश्यप सागर और फारस की खाड़ी, इन सबने मिलकर समूचे प्रदेश को जलमग्न कर दिया था।[52]

10. वैकुण्ठ

वैकुण्ठ का निर्माण भी इसी चाक्षुष मन्वन्तर में हुआ। भारत की सीमा को जो पर्शिया का पूर्वी प्रान्त छूता है, उसे सत्यगिदी कहते हैं। उस काल में यह सत्यलोक नाम से विख्यात था। उसी के सामने सुमेरू के निकट वैकुण्ठ बसाया गया था, जो देमावन्द-एल-बुर्ज पर्वत पर था। ईरानी लोग इसे आज भी 'पैराडाइज' कहते हैं। देमावन्द तपोरिया प्रान्त में है। इसी प्रान्त के तपसी विकुण्ठा और उनके पुत्र वैकुण्ठ थे। वैकुण्ठ उन्हीं की राजधानी थी।[53]

11. राजा की मर्यादा

राजा की मर्यादा भी इसी काल में पृथु वैन्य ने स्थापित की। इससे पूर्व प्रजा के मुखिया प्रजापति कहाते थे। वैन्य ने अपने को राजा घोषित कर राजा-सेना परिच्छद धारण किए, राज्य व्यवस्था को राजा आधारित किया। इसी के नाम पर भूमि का नाम पृथ्वी पड़ा।[54]

12. वेदोदय

वेदोदय इस युग की सबसे बड़ी सांस्कृतिक घटना है। पृथु वैन्य ही प्रथम वेदर्षि हुआ। उसी ने सबसे प्रथम पहली ऋचा बनाई।[55]

13. सूर्य-विष्णु-विवस्वान्-आदित्य-मित्र

मारीचि कश्यप और दक्ष पुत्री अदिति के कनिष्ठ पुत्र थे सूर्य। इनके पुत्र मनु वैवस्वत ने आर्य जाति की स्थापना की, तथा सूर्यवंश चलाया। भारत में सूर्यवंश का राज्य समूह सूर्यमंडल का विष्कम्भ (विस्तार) कहाता था।[56] सूर्य की चार राजधानियां थीं। इन्द्रवन-मुण्डार-कालप्रिय आदित्यपुर और काश्यपनगर।[57] एलाम और पर्शिया के लोग मित्र और वरुण की पूजा करते थे। मित्र का अर्थ सूर्य है। सूर्य की उपासना उस काल के सभी लोगों में प्रचलित थी। सूर्य की पत्नी संज्ञा के पिता त्वष्टा-पुत्र विश्वकर्मा उत्तर कुरु के अधीश्वर थे।[58] ये शिल्प के आचार्य और गान्धार नरेश नग्नजित के गुरु थे।[59] इनकी राजधानी का नाम 'वन' था।[60] सूर्य कुछ काल वन में रहे थे।[61] मिस्र के ऊपर दमित्र (Damitra) विष्णुपुर था।[62] Druid निर्मित सूर्य देव की मूर्तियां और मित्र के मन्दिर, जिनको योरोप में Mithraea कहते हैं ग्रीस-रोम-जर्मनी-यार्क व चेष्टर तक थे।[63] स्केन्डीनेविया के Gaeto-Syrus सूर्यवंशी थे। जेठ का दशहरा मित्र (सूर्य) का नौद्वीपों के इन्द्र का उत्सव है।

अरब में 'यारव' Edom Erythros व 'आद' नाम सूर्य ही के हैं। Red Sea का नाम पहिले Edom था। पर्शियन गल्फ का नाम Erythrian Sea था।[64]

अदन का 'आद' का मंदिर सोने-चांदी की ईंटों का था। मुलतान (मूलस्थान) में सूर्य (मित्र) ने स्वयं तप (राज्य) किया था।[65] सेमेटिक और सुमेरियन जातियों में जो नरेश, शुशिनाक, उरवंशी, कुदुर, नृगटो, सगरटी, द्रोपनी, किश व कासाहट थे, उनका प्रत्यक्ष था अप्रत्यक्ष सम्बन्ध-सूर्यवंश से था। नृग व नृसिंह (Negrito) सूर्यवंशी थे।

अमेरिका के 'रेड इण्डियन्स' भी सूर्यवंशी हैं। वे सूर्य की पूजा करते हैं और पवित्र अग्नि को कभी नहीं बुझने देते। कृषि का उत्सव मनाते और पितरों का आवाहन करते हैं। इनका कथन है कि उनका जन्म आदिकाल में एक नीली झील के किनारे हुआ था और

उन्होंने 'ताओस' में अपना नगर बसाया था। उनका नेता 'पोसीयोमो' (यम) सर्व प्रथम ताओस में अनाज लाया था। वह बहुत लम्बा आदमी था।[66]

14. सुषा

यह संसार की प्राचीनतम नगरी थी, जो सुमेरु प्रान्त में अंबुद (एशिया की खाड़ी) पर अब तक है। कुछ समय पूर्व वहां खुदाई हुई है, आर्कियोलोजी को वहां 8 हजार वर्ष पूर्व की पुरानी वस्तुएं प्राप्त हुई हैं। अर्जनेम (Arzanem) में अभिमन्यु (Abhimanyu) दुर्ग के निर्माता (Memnon), ट्रापयुद्ध के नायक मेमनन की प्राचीन पुरी मयुपुरी या सुषा थी।

15. सत्यलोक

पुराणों में लिखा है कि चाक्षुष मनु के काल में सुमेरु के निकट 'सत्यलोक' के सामने वैकुण्ठ बनाया गया। यह सत्यलोक पर्शिया का पूर्वी प्रान्त सत्यगिदी है।

16. सुमेरु

यह पर्शिया की राजधानी थी। पर्शिया की खाड़ी के ऊपर के देश का नाम भी सुमेरु था। इसी को जेनिसिस में 'शीनार भूमि' कहा गया है। जेनिसिस, अवेस्ता व पुराणों के संयुक्त पाठ से निश्चय होता है कि सुमेरु पर्शिया की खाड़ी के ऊपर का प्रदेश था। सुमेरु का प्राचीन नाम 'भूमि' था। इसे ही श्रीनगर या शीनार भूमि कहते थे।

17. क्षीर सागर

The Ocean of Siri = The Persian Gulf. The sea of Ormaj ब्रह्मसागर Shrinar श्रीनार।

18. स्वर्ग

(Surg. अजरवेजान ईरानियों का वहिश्त)

त्रेता युग-मनु रामकाल। ई. पू. 1900 से 1250 तक

चाक्षुष मनवन्तर के बाद मनु वैवस्वत और बुध ने भारत में सूर्यवंश और चन्द्रवंश के राज्य साथ-साथ स्थापित किए। दोनों श्वसुर दामाद थे। मनु ने अयोध्या में सूर्यवंश और बुध ने प्रतिष्ठान में चंद्रवंश की स्थापना की। मनु की मुख्यता थी, उन्हीं के नाम पर मन्वन्तर चला। इक्ष्वाकु मनु के ज्येष्ठ पुत्र थे। वे अयोध्या के राजा हुए। ऐक्ष्वाकु पुरंजय काकुत्स्थ (4) इन्द्र के मित्र थे। इनके समकालीन चन्द्रवंश में पुरूरवस (4) और नहुष (5) महान् हुए। नहुष को इन्द्र पद मिला पर पदच्युत हुए। नहुष पुत्र ययाति (6) परम विजयी हुए। इनके पांच पुत्र हुए जिनमें कनिष्ठ पुरु सम्राट बना। चारों ज्येष्ठों को प्रान्त राज्य मिले।

सूर्य और चन्द्रवंश के इस काल में अनेक राज्य स्थापित हुए। दोनों वंशों में छठी पीढ़ी से बीसवीं पीढ़ी तक प्रायः ढाई सौ वर्ष पर्यन्त कोई विशेष पुरुष नहीं हुआ। सुदास (36) के समय तक भारी-भारी अनार्य राजा भारत में थे (ऋग्वेद)। 20वीं पीढ़ी में यादव शशिविन्दु (20) ने पराक्रम प्रकट कर पौरवों को परास्त किया, अनेक यज्ञ किए। इनके बाद इनके दामाद सूर्यवंशी मान्धाता (21) प्रबल पराक्रमी हुए। इन्होंने अनु, द्रुह्य और तुर्वशों को परास्त किया तथा पुरुवंश को राज्यच्युत किया। कुछ समय बाद तुर्बशु वंशी मरुत प्रबल सम्राट हुए, और उनके दत्तक पुत्र दुष्यन्त पौरव ने परम प्रतापी हो पुनः पौरव राज्य स्थापित किया। सूर्यवंशियों के पराभव तथा मरुत की वैभव वृद्धि का कारण यह था कि सूर्यवंशी नृपति द्रुति वंशियों से उलझ कर गांधार तक प्रभुत्व जमाने का प्रयत्न करते रहे। इधर मध्यदेश में उनका केन्द्र कमजोर हो गया। इसी से पौरव राज्य अयोध्या की आधीनता से निकल गया। मान्धाता के पौत्र त्रसदस्यु ने संधि करके पौरव राज दुष्यंत संतुष्ठ कर दिया, तथा गान्धारों को पराजित किया। फिर दिलीप (34) तक अयोध्या में कोई महत्ता न रही। नाभाग और अम्बरीष ने यश प्राप्त किया, पर अयोध्या का प्रभाव फीका रहा।

उधर दुष्यन्त पुत्र भरत (24) ने ऐन्द्रमहाभिषेक किया। यादव हैहय परम प्रतापी हुए। उनके दबाव से यादवों की दूसरी शाखा को विदर्भ (वरार) की ओर जाना पड़ा। पौरव हस्तिन् (30) ने हस्तिनापुर बसाया, उसे राजधानी बनाया। कुछ ही दिनों में इसके वंशधरों ने विदर्भ, उत्तर पांचाल, दक्षिण पांचाल, काशी और कान्यकुब्ज राज्य स्थापित कर लिए। उधर यादवों में हैहय बढ़ते गए। दूसरी यादव विदर्भ शाखा भी बढ़ कर मथुरा में स्थापित हुई। असुरों में भी तिम्ध्वज, शम्बर, वर्चिन, भेद के महाराज्य स्थापित हुए। रावण ने राक्षसों तथा कुबेर ने यक्षों की प्रतिष्ठा की। देवों ने इन्द्र के नेतृत्व में भारत प्रवेश कर सिन्ध जय किया। इससे देवलोक और आर्यावर्त में राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित हुए। आर्यों ने दक्षिण में उपनिवेश स्थापित किए। सूर्यवंशियों ने दक्षिण

कोशल और हरिश्चन्द्र तथा सगर शाखा के तीन नवीन राज्य स्थापित किए। मध्यभारत में निषध राजा नल (35) प्रतापी राजा हुए। हरिश्चन्द्र और रोहित ने अच्छे नाम किए। दक्षिण कौशल के ऋतुपर्ण नल के मित्र बने। विश्वामित्र कान्यकुब्ज राज्य छोड़ वेदर्षि बने। इनका वशिष्ठ से जो झगड़ा हुआ, उसका प्रभाव हरिश्चन्द्र, सुदास, संवर्ण तथा दक्षिण-उत्तर कोशल राज्यों पर पड़ा। इस काल में मध्य-भारत में भार्गववंश वृद्धिगत हुआ। हैहयों ने राज्यवर्द्धन चरम सीमा पर पहुंचाया। उन्होंने काशी, सगर, कान्यकुब्ज राज्यों तथा भार्गवों से विग्रह किए- और अंत में पराभव पाया। वैशाली और कान्यकुब्ज राज्य भी इसी विग्रह में खत्म हो गए।

जिस प्रकार स्वयंभुव मनु वंश का 6 मन्वन्तरों का भोग-काल सतयुग माना जाता है, इसी प्रकार वैवस्वत मनु का मनु से राम तक 39 पीढ़ियों का काल त्रेता युग है। अर्थात् स्वयंभुव मनु से वैवस्वत मनु तक सतयुग और वैवस्तमनु से राम तक का काल त्रेता युग है। सतयुग में 45 पीढ़ियां हैं। इसलिए उसका भोगकाल 1260 वर्ष है, और त्रेता में 39 पीढ़ियां हैं। अतः उसका भोगकाल 1092 वर्ष का है। इस बात के पुष्ट आधार हैं कि महाभारत संग्राम का काल ई. पू. तेरहवीं शताब्दी का है।[67] यही द्वापर का अंतकाल है। द्वापर का आरम्भ प्रायः चार शताब्दी प्रथम होने से 17वीं शताब्दी ई. पू. में पड़ेगा तथा त्रेता का अंत भी लगभग यहीं है।

19. समसामयिकजन

अब समसामयिकजनों पर जरा ध्यान दीजिए। मनु पुत्री इला का विवाह चन्द्र पुत्र बुध से हुआ। इन्हीं मनु और इला से सूर्य-चन्द्र वंश चले (महाभा.)। ययाति (6) के भाई यति सूर्यवंशी ककुत्स (4) की पुत्री से व्याहे थे, (हरि. 30।1601, वायु पु. 93।14), पौरव। मतिनार (20) की पुत्री गौरे ऐक्ष्वाकु मान्धाता (21) की माता थी (ब्रह्माण्ड 63।6,6,8। वायु पु. 88।64।7 ब्रह्म 790।2। हरिवंश 12, 709, 11 शिव. पु. 60, 74)। यादव शशिविन्दु (20) की पुत्री विन्दुमति मान्धाता को व्याही थी (वायु 88।77 ब्रह्माण्ड 63, 70) इन्होंने द्रुह्यु वंशी अंगार (21) से युद्ध किया था। (हरि. वं. 32, 1837, महा. 126, 10.465।)। कान्यकुब्ज के जह्नु (30) ने मान्धाता की पौत्री से व्याह किया। अतः जह्नु त्रसदस्यु (23) के समकालीन और बहनोई हैं। त्रसदस्यु मान्धाता के पौत्र थे। ऋचीक ऋषि ने गाधि पुत्री सत्यवती से विवाह किया जिससे परशुराम के पिता जमदग्नि उत्पन्न हुए। गाधि पुत्र विश्वामित्र जमदग्नि के समवयस्क और मामा थे। जमदग्नि का विवाह प्रसेनजित की कन्या रेणुका कामली से हुआ जिसकी बहिन का व्याह हैहय अर्जुन (34) से हुआ था। (हरिवंश। महाभारत)। विश्वामित्र कान्यकुब्ज (35) है। हयार्जुन (34) सुदास (39), त्रिशंकु (36), हरिश्चन्द्र (37), मित्रसहकल्माषपाद (39), राम (39) समकालीन थे। वशिष्ठ भी इसी काल में थे। हरिश्चन्द्र के यज्ञ में वशिष्ठ-जमदग्नि-विश्वामित्र, शुनःशेप मौजूद थे (ऐतरेय ब्रा.)। वशिष्ठ और विश्वामित्र ने ऋग्वेद के मंडल सात और तीन में सुदास को अपना समकालीन कहा है। रामायण में भी ऐसा ही है। अतः सुदास एक ही व्यक्ति है, पृथक्-पृथक् नहीं। भद्रशेण्य हैहय (30) ने काशीपति दिवोदास प्रथम (34) को हराया। तालजंघ हैहय (36) ने वाहु (38) को हराया। काशी के प्रतर्दन (38) ने वीतिहोत्र के वंशजों को नष्ट किया। सगर ने विदर्भराज की कन्या से व्याह किया। हैहयों ने काशी का राज्य जय किया। पीछे, परशुराम ने हैहय सहस्रार्जुन को मारा। अर्जुन के पौत्र तालजंघ ने म्लेच्छों की सहायता से कान्यकुब्ज राज्य नष्ट किया। बाद में प्रतर्दन और सगर ने हैहय और म्लेच्छ दोनों को नष्ट किया (महा. शान्तिपर्व)। उतरी बिहार के तुर्वशुवंशी मरुत (22) ने पौरव दुष्यंत (23) को गोद लिया इससे दुष्यन्त दोनों राज्यों के स्वामी बने। अंगिरस के तीन पुत्र थे– उच्चथ्य, वृहस्पति और सम्वर्त। मरुत ने सम्वर्त को ऋत्विज करके यज्ञ किया और अपनी पुत्री ममता भी व्याह दी। ममता में उचथ्य से दीर्घतमा या दीर्घतमस और वृहस्पति से भरद्वाज हुए। अंधे दीर्घतमा ने आनव वलि (24) की रानी में नियोग से नियुक्त होकर पांच पुत्र पैदा किए (महा. भा.)। पीछे वे नेत्रवान होकर गौतम कहाए (वायु. 99, 92, मत्स्य 48-83, वृहद्देवता vi 15)। फिर दीर्घतमस ने दुष्यंत पुत्र भरत (24) का ऐन्द्र महाभिषेक किया (एतरेय ब्राह्मण)। वृहस्पति इन्द्र के और देवताओं के पुरोहित हुए। इस प्रकार दुष्यंत, वृहस्पति, दीर्घतमस, भरद्वाज, भरत समकालीन हैं।

रामायण के अनुसार दशरथ (38), सीरध्वज (38), लोमपाद (40), ऋष्यशृंग, प्रमति, आनव केकय (37), पांचाल दिवोदास (38), तिमिध्वज शम्बर समकालीन हैं। दक्षिण कोशलेश्वर ऋतुपर्ण (36) नल (35) के मित्र थे। इनके प्रपौत्र मित्रसहकल्माषपाद राम के समकालीन हैं। काशीपति अलर्क (40) को अगस्त-पत्नी लोमामुद्रा ने आशीर्वाद दिया (वायु.

92।67) तथा राम से भेंट की (रामायण)। वशिष्ठ तपोभूमि में रहते थे जिसे हैहयार्जुन ने जलाया। तब वशिष्ठ पांचाल सुदास, पौरव संवर्ण, दक्षिण कौशल नरेश कल्माषपाद तथा दशरथ, राम के यहां अनुक्रम से रहे। सुदास के यहां से विश्वामित्र ने उन्हें हटाया और स्वयं उसके पुरोहित बने। ऋग्वेद के तृतीय और सप्तम मंडल इन्हीं दोनों के हैं। वशिष्ठ पुत्र शक्ति और पौत्र पराशर भी वेदर्षि हैं, तीनों ने मिल कर एक ऋचा बनाई। सुदास के यज्ञ में शक्ति ने विश्वामित्र को निरुत्तर कर दिया था; उसी का बैर लेने के लिए इन्होंने शक्ति को मरवा डाला (अनुक्रमणिका)। वृहद्देवता (पांचवीं शताब्दि ई. पू.) कहता है, वशिष्ठ बारुणि के सौ पुत्रों को राक्षस होने से सुदास ने मार डाला, परन्तु महाभारत के अनुसार कल्माषपाद ने ऐसा किया। यह कल्माषपाद कौशल नरेश (39) था जो सुदास और राम का समकालीन है। कल्माषपाद नरमांसभक्षी राक्षस हो गया था।

भृगु पुत्र (हरिवंश), शुक्राचार्य (काव्य-उशना), हिरण्यकशिपु और बलि के पुरोहित थे। जिनके पुत्र सन्द और मर्क हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद के शिक्षक थे। शुक्र पौरव ययाति (6) के श्वसुर वृषपर्वा के पुरोहित थे। (ऋग्वेद, महाभारत) वृषपर्वा की पुत्री ययाति की पत्नी थी (महा.)। ययाति पुत्र यदु और तुर्वश शुक्र के दौहित्र, और अनु-यदु-पुरु वृषपर्वा के दौहित्र हैं। इन पांचों के वंश वर्णन ऋग्वेद में हैं। शुक्राचार्य के बड़े भाई (सौतेले) च्यवन, आनव नरेश शर्याति के दामाद थे (महा.)। इन्होंने इन्द्र से युद्ध किया (ऋ., महा.), अश्विनीकुमारों ने इन्हें युवा किया (ऋग्वेद)।

वैशाली के मरुत (22) का पुत्र दम था। उसका 8वां वंशधर तृणविन्दु व्रात्य आन्ध्रालय (आस्ट्रेलिया) का राजा था। उसकी पुत्री इलविला पुलस्त्य को व्याही गई, जिससे विश्रवा का जन्म हुआ (वायु. 70, 29, 55। ब्रह्माण्ड III 8, 34, 62। महा.। लिंग पु. 63, 56, 63। कूर्म 9, 7, 15। पद्म 269, 15, 19। भागवत IX 2, 32। वाल्मीकि VII 2, 5 III 22।)। विश्रवा की कुलीन स्त्री से पुत्र कुबेर (शतपथ ब्रा. XIII 4, 3, 10)। और पौत्र नल कूबर। कुबेर सुमाली की उजाड़ लंका में बसे। विश्रवा की दूसरी पत्नी, दैत्य सुमाली की कन्या काकसी, जिसके पुत्र रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण और पुत्री सूर्पनखा (वा.)। परन्तु महाभारत के अनुसार माल्यवान, माली और सुमाली की पुत्रियां पुष्योकढ़ा, मालिनी और राका विश्रवा की पत्नियां थी। पहली के रावण और कुम्भकर्ण, दूसरी के विभीषण, तीसरी के खर और सूर्पनखा। सूर्पनखा के पति को रावण ने मारा (रा., महा.)।

निषध-विदर्भ, दक्षिण कौशल, चेदि और दशार्ण मिली हुई रियासतें थीं जिनमें प्रधान निषधराज वीरसेन का पुत्र नल वैदर्भ, भीमरथ (34) का दामाद था। भीमरथ और चेदिराज सुबाहु दोनों दशार्ण के राजा सुद्युम्न के दामाद थे (म. भा. वन पर्व) भीमरथ की पुत्री दमयंती भैमी नल की पत्नी थी। उत्तर पांचाल नरेश भृमश्व (35) का पुत्र वेदर्षि मुद्‌गल था जिसको नलायनी (निलपुत्री) इन्द्रसेना ब्याही थी (ऋग्वेद, महाभारत)।

सारांश

वैवस्वत मनु के वंश में अनेक सूर्यवंशी रियासतें स्थापित हुईं। जिनमें उत्तर कोशल, शर्यात, हरिश्चन्द्र, सगर, दक्षिण कोशल, वैशाली तथा मिथिला ये सात प्रमुख रियासतें थीं जिनका उल्लेख वाल्मीकि, महाभारत, हरिवंश, विष्णु पु., श्रीभागवत में है, वेद में भी है। सरयू वर्णन (ऋ. 4।30।18), कौशल राज्य (शतपथ ब्रा.), वैशाली (वा. रा. 47, 11, 12), मिथिला (वायु. 81।3।)। मनु वैवस्वत, शर्याति, त्रसदस्यु, अम्बरीष, मान्धातृ वेदर्षि थे। इच्क्षवाकु वर्णन (ऋ. 10।60।4 और अथर्व XIV 39, 9), मान्धातृ (गोपथ ब्रा.। 2, 10), पुरुकुत्स के वर्णन ऋग्वेद में अनेक हैं। ऋग्वेद I. 83, 7 व VI 20, 10। शतपथ ब्रा. XIII 5, 45 में ऐक्ष्वाकु वर्णन है। त्रसदस्यु पुरुकुत्स के पुत्र थे (ऋग्वेद मं. 4।38।1। मं. 7।39।3)। त्रैयारुण ऐक्ष्वाकु थे (ऋ. मं. 5।27 तथा पंचविंश ब्रा. XIII 3, 12)। त्रिशंकु, तैत्रिशेय। 30।10, 1। हरिश्चन्द्र, (ऐतरेय ब्राह्मण VII 13, 16।) रोहित, (ऐतरेय ब्राह्मण VII) भगीरथ (जैमिनीय उपब्राह्मण IV 2, 12), दशरथ (मं.1।11।4), राम (ऋग्वेद मं. 10।93।14)। पुरुकुत्स, त्रसदस्यु, हरिश्चन्द्र, रोहित आदि रामायण की अयोध्यावाली वंशावली में नहीं हैं, ये उत्तर कोशल से बाहर अन्य देशों के शासक थे। वर्तमान जनकपुर नेपाल राज्य में है। शतपथ के मत से विदेह राज्य माथव द्वारा स्थापित प्रमाणित है। वंश के हिसाब से रावण की 35वीं पीढ़ी होती है। रावण ने दक्षिण कोशल के अनरण्य (41) को मारा तथा राम (39) ने रावण को मारा। इससे समझा जा सकता है कि मुख्य सूर्यवंश (39) के निकट वैशाली का वंश (35) पड़ता है।

संदर्भ

1. यथा 'सृण्येव जर्फरी तुर्फरीतू', ऋग्वेद 10।106।6।

2. यज्ञमेवविष्णु पुरस्कृत्येयुः।...वामनोह विष्णुरास।...तेनेमां सर्वापृथिवीं समविन्दन्त, (शतपथ, ब्रा. 1।2।3।3-7)।

3. देखिए–छान्दोग्य उपनिषद-5, 13, 17, 19, 7.24। शतपथ ब्रा. 3, 2, 48। तैत्तिरीय उ. 1, 5, 12।

4. ऐतरेय 1, 15।

5.अथातः नवनीयस्यपशोर्विभागं व्याख्यास्यामः, उद्धृत्यावदानानि, 'हनुसजिह्वे प्रस्तोतुः, कण्ठः सककुदः प्रतिहतुः। श्येन पक्ष उदगातुर्दक्षिणां पार्श्व सांसमध्वर्योः, सव्यमुपगात्रीणां सव्योसः, प्रतिप्रस्थातुर्दक्षिणाश्रोणिरथ्यास्त्री ब्रह्मणऽवसक्थ्ये, ब्रह्माच्छासितः उरुः, पोतुः सव्याश्रोणि होतुरपरसकथं मैत्रावरुणस्योरुरच्छावाकस्य, दक्षिणदोर्नेष्टः सव्यान्सदस्य, सदञ्चानूकं च गृहपतेर्जाघ्नी पत्न्यास्तासां ब्राह्मणेन प्रतिग्राहर्यति, वनिष्ठुर्हदयं वृक्कौ चाङ्गुल्यानि दक्षिणोबाहुराग्नीधष्य सव्य आत्रेयस्य दक्षिणौ पादौ गृहपतेर्वतप्रदस्यसव्योपादौ गृहपत्न्या व्रत प्रदायाः...।' (गोपथ 3।18)

6.'...सघेन्वैचानडुहश्चनाश्नीयाद्वेनवनड्हो वा इदँसर्व विभ्रितस्ते देवा अब्रुवन घेनवनड्हो वा इदंसर्वं विभ्रितोहन्त यदन्येषा वयसां वीर्यतद्धेन्वनडुहयोर्दधामेति...तदुहोवाच याज्ञवल्क्योश्नाभ्येवाहं मांसलचेद्भवतीति' (शत. 3।1।2।21)

7. शतपथ ब्रा. 1, 2, 3, 7, 8।

8.अजैर्यज्ञेयु यष्टव्यमिति वै वैदिकी श्रुतिः। अज संज्ञानि वीजानि छागान्नो हन्तु मर्हथ। (महा. अनुशा.)

9. अघ्न्या इति गवां नाम, कस्तुतांहन्तुमर्हति।

10. न हिंसा धर्म उच्यते।

11 .नैषधर्मः सतां देवा यज्ञ वध्येत वै पशुः।

12. पशुश्चेन्निहतः स्वर्ग ज्योतिष्ठानं गमिष्यति स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते।

13. महा. शान्ति अ. 336।

14. महा. शान्ति अ. 340।

15. श्रीमद्भागवत 4, 25, 7, 8।

16. पशून पाहि गां मा हिंसी, अजां मां हिंसीः; अवि माहिंसीः; इमं मा हिंसीर्द्विपदं पशुं, मां हिंसीरेकशफं पशुं मां हिंस्यात् सर्वाभूतानि (यजुर्वेद) एतद् वा उ स्वादीयो यदधिगवं क्षीरं वा मांसे वा तदेव नाश्नीयात
(अथर्व 9।6।9)

17. इस देवकी पुत्र कृष्ण को घोर आंगिरस ने यज्ञ की नई विधि बताई थी, जिसकी दक्षिणा थी, तप, ज्ञान, आर्जव, अहिंसा और सत्य। (छा. उ. अ. 3, 17,4,6)

18. न तत्र पशुघातोऽभूत स राजैरस्थितो भवत् (म. शां. 336।10)

19. देखिए श्री डॉ. मार्टिनहाग कृत ऐतरेय ब्राह्मण भाष्य।

20. यद्दचोऽघ्यगीषत ताः पय आहुतयो देवानामभवन्। यद्यजूंषिघृताहुतयो यत्सामानि सोमाहुतयो यदथर्वागिंरसो मध्वाहुतयोयद्ब्राह्णानि इतिहासान् पुराणानि कल्पान गाथा नाराशंसीर्मेदाहुतयो देवनामभवन् (तैत्तिरीय प्र. 2 अ. 9 मं. 2)

21.अनन्दा बलदा चेता बण्णदा सुखदा तथा, एतमत्यवसंञ्त्वा नास्सुगावो हर्निंसुते। नपादा न विसाणेन नास्सु हिंसान्ति केनचि। गावो एलक समाना सोरता कुंभ दूहना। ताविसाणेगहेत्वान राजा सत्येन घातयि।

22. राज्ञो विश्वजनीनस्य योदेवो मर्त्या अति। वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा शृणोता परिक्षितः।[7] परिक्षिन्नः क्षेममकरोत्तम आसनमाचरन्। कुलायेकृणवन्कौरव्यः पतिर्वदति जायया।[8] कतरत्त आहराणि दधि मंथं परिस्त्रुतम्। जाया पतिं विप्रच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः।[9] अभीव स्वः प्रजिहीते यवः पक्वः परो विलम्। जनः सभद्रमेधते राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः।[10] (अथर्व. का. 20 सू। 127)।

23. कोशल सुयत्त सुत, नग्ग 1, सुत्त 9।

24. दीर्घनिकाय का कूटदन्त सुत्त।

25. गौतम धर्मसूत्र 8।8।

26. गौतम धर्मसूत्र 8।14।24।

27. न वै ब्राह्मणों राज्यायालम्, शतपथ ब्रा. 5।1।1।12।

28. 'ब्राह्मणो मुखतो हि वीर्य करोति मुखतो हि सृष्टः' (ताण्ड्य ब्राह्मण 6।1।6)।

29. वाहूवीर्यो राजन्यो बाहुभ्यो हि सृष्टः, ताण्ड्य ब्रा. 6।1।7।

30. एष वै प्रजापतेः प्रत्यक्षतमां यद्राजन्यतस्मादेकः सन्बहूनामीष्टे यद्वेव चतुरतरः प्रजापतिश्चतुरतरो राजन्यः। शत. ब्रा. 5।1।5।14।

31. ऐतरेय ब्रा. 38।1।

32. ऐ. ब्रा. 38।1।

33. शतपथ ब्रा. 11।2।3।16।

34. ऐ. ब्रा. 35।3।

35. आ. श्रौ.।

36. कात्या. श्रौ. तथा आप श्रौ।

37. कात्यायन स्मृति।

38. यथा कामोत्थाप्यः। यथा कामवध्यः, ऐतरेय ब्रा. 35।3।

39. हरिवंश पुराण।

40. अथर्ववेद।

41. हेमचन्द्र राय चौधरी का यह मत है कि गुणाख्य शांख्यायन बुद्ध का समकालीन था और उद्दालक आरुणि उसके गुरु का गुरु था, जो विदेह जनक का समकालीन था। शतपथ और वृहदारण्यक उपनिषद में वर्णित गुरु परम्परा के आधार पर वह सांजीवि पुत्र उद्दालक से पांच पीढ़ी बाद का ऋषि है। इस आधार पर शतपथ और वृहदारण्यक उपनिषद की रचना बुद्ध के बाद की प्रमाणित होती है।

42. मां शिश्नदेवाः अपि गुऋर्तं नः। ऋग्वेद 7, 21,5।

43. देखिए, यम-यमी सूक्त, ऋग्वेद 10, 10, और अथर्व 18,1। 'उत्तानयोश्चम्वोउर्योनिरन्तरत्रा पितादुहितुर्गर्भमाधात्।' (ऋ. 1।164।33)।

'पिता दुहितुः सेकमृंजन्' (ऋ. 3।31।1)। 'यस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राताभूत्वा पितेव च।' (अथर्व 8, 6,7।)। 'प्रजापतिः स्वां दुहितारमधिदध्यौ...स्वां दुहितरमस्माकं स्वसारं करोति'।

44. 'आरोह तल्पम्' (अथर्व. 14,2।31), 'समस्पृशन्ततन्वस्तनूभिः (अथर्व 14, 2,32), यानउरूउशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः, (अथर्व 14, 8, 38), आरोहोरुमुपधत्स्व' (अथर्व 14, 2, 39), उरुलोकं सुगमत्र पन्था कृणोमि (अथर्व 14, 1, 58)।

45. असभ्य छपिवेन लोग अपनी माता के साथ विवाह कर लेते थे। अर्धसभ्य अफ्रीका के गेबून प्रदेश की रानी के पति की जब मृत्यु हो गई और उसके हाथ से राज्य निकल जाने की आशंका होने लगी, तब उसने अपने बड़े लड़के के साथ विवाह करके सिंहासन पर अपना दावा कायम रखा। सुसभ्य प्राचीन मिस्र के फराओ (राजा) अपनी सगी बहिन के साथ विवाह करते थे। सभ्य पेरू देश के रोक्का इंका के वंशधर छठे अथवा सातवें इंका ने अपना आभिजात्य बनाए रखने के लिए अपने दूसरे पुत्र के साथ अपनी सबसे छोटी लड़की का विवाह करके उसे सिंहासन पर बैठाया था। लंका की असभ्य भेद्दा जाति के लोग अपनी छोटी बहिन के साथ विवाह करना सबसे अधिक गौरव की बात समझते हैं, इस अवस्था में वे अपने समाज में कुलीन समझे जाते हैं।

A Mapuchi widow by the death of her husband becomes her own mistress, unless he may have left grown up sons by other wife, in which case she becomes their common cancubine being regarded as a chatel naturally belonging to the heirs of the estate. (श्री शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय कृत-नारी का मूल्य)।

46. 'पापमाहुर्यः स्वसारंनिच्छात्, न यत् पुरा चक्रमा। अन्य मिच्छत्व सुभगे पर्ति मत्।' (ऋ.)।

47. टाल्सटाय का कहना है कि विवाह ईसाई संस्था नहीं है, ईसा ने विवाह नहीं किया, न उनके शिष्यों ने विवाह किया, न ईसा ने विवाह की स्थापना की। विवाह अपनी विषय-वासना के प्रशमन करने का एक साधन नहीं, प्रत्युत एक ऐसा पाप समझा जाय, जिससे मुक्त होना परम आवश्यक है।

48. पुराणों में इस युग का समय विभाग मन्वन्तरों में किया गया है। पूरा भूत भविष्यकाल 14 मन्वन्तरों में बांटा गया है। जिनमें 6 बीत चुके, 7वां चल रहा है। 7 आगे आने वाले हैं। एक मन्वन्तर में 71 चतुर्युगी से कुछ अधिक ही समय होता है। प्रत्येक चतुर्युगी में–सतयुग, त्रेता, द्वापर, और कलियुग होते हैं। सतयुग की संख्या 4000 वर्षों की है, तथा 4-4 सौ वर्षों की संध्या तथा संध्यांश हैं। त्रेता 3000 वर्षों का है, संध्या संध्यांश में 600 वर्ष लगते हैं। कलियुग में 1000 वर्ष और 200 वर्षों की संध्या संध्यांश हैं। इस प्रकार जितने हजार वर्षों का युग होगा, उतने ही सौ वर्षों की संध्या होगी। अतः एक चतुर्युगी में बारह हजार वर्ष होते हैं। ये वर्ष हमारे नहीं, देवताओं के हैं। देवताओं का एक वर्ष हमारे 360 वर्षों का होता है। अतः एक चतुर्युगी 4320000 वर्षों की हो जाती है। अब एक मन्वन्तर में ऐसी 71 चतुर्युगी हुईं, तो हिसाब लगाना ही असंभव हो जाता है (श्रीमद्भाग्वत, विष्णु पुराण, हरिवंश, दुर्गा सप्तसती)। अतः हमने इस प्रकार हिसाब लगाया कि स्वांयभुव मनु की 45 पीढ़ियों और 6 मन्वंतरों में एक पीढ़ी का काल 28 वर्ष लगाकर उसे 45 से गुणा करके सतयुग की आयु 45 x 28 = 1260 वर्ष मानी है।

49. विष्णु पुराण, हरिवंश, महाभारत (58।96-136)। जैमिनीय ब्राह्मण 1।186। (ऋग्वेद 10।90)।

50. स्कन्द पुराण, शतपथ ब्राह्मण, श्रीमद्भागवत।

51. हरिवंश पुराण, महाभारत (द्रोणपर्व 69।27)। विष्णु पुराण, वायु पु. 62।170।171।172 और 67।43।

52. शतपथ ब्रा.। मार्कण्डेय पुराण तथा ईसाई और मुस्लिम ग्रन्थ।

53. श्रीमद्भागवत। हरिवंश। वि.पु.। ब्राह्माण्ड पु. पूर्वभाग, पाद 2, 36।108। मत्स्य 10।3।

54. महाभारत शान्तिपर्व (58।121।122) हरिवंश। दुर्गा सप्तशती।

55. ऋग्वेद, भविष्य पु., पद्मपुराण (सृष्टिखण्ड), श्रीमद्भागवत, हरिवंश, शतपथ ब्राह्मण।

56. अस्य भारतवर्षस्य विष्कम्भातुल्य विस्तृतम। मंडलं भास्करस्याथ योजनैस्तन्निरोधत। (मत्स्य पु. 133 श्लो. 5)।

57. देखिए भविष्य पुराण (सूर्यकथा) और कर्निंघम Vol., v. sec. Multan.

58. Uttarcuras of the Greek Historians, modern Kurdistn...(Tod.).

59.विष्णुपुराण।

60. City of Van in Armenia.

61. भविष्य पुराण, सूर्य कथा।

62. Demeter व दमित्र विष्णु का नाम है (Greek Legends)।

63. Carneus or Sun God andDruidic monuments scattered throughout Europe (Tod's Rajsthan. 426) Mithraea or temples of Mitra have been founded all over Germany and so far away as York and Chester. H.P. vol. 1.419.

64. देखिए, डिक्शनरी।

65. भविष्य पुराण। तथा कनिंघम vol. v. मुस्लिम प्रसंग तथा पर्शिया का इतिहास जि. 1,420।

66. देखिए, नवभारत टाइम्स के 28 नवम्बर 1948 के रविवारीय अंक का लेख।

67. चन्द्रगुप्त मौर्य ई. पू. 322 में गद्दी पर बैठे। उनसे पूर्व महापद्म नन्द और उसके पुत्रों ने 80 वर्ष राज्य किया। अतः महापद्म 402 ई. पू. गद्दी पर बैठा। उसने सब क्षत्रिय राजाओं को परास्त किया। यदि यह 20 वर्ष भी राजा रहा हो तो उसका राज्यकाल ई. पू. 382 वर्ष निश्चित है। अब देखिए कि पुराणों के अनुसार पौरव अधिसीमकृष्ण, ऐक्ष्वाकु दिवाकर, और वार्हद्रथ सेनजित समकालीन हैं। अतः महाभारत संग्राम के पीछे अधिसीमकृष्ण तक 4 ऐक्ष्वाकु, 5 पौरव और 6 मगध नरेशों के नाम हैं।

इस काल में 100 वर्ष मान लीजिए। इसके बाद महापद्म द्वारा राज्य जय पर्यंत 24 ऐक्ष्वाकु, 27 पांचाल, 24 काशी, 28 हैहय, 32 कलिंग, 25 अश्मक, 26 कौरव-पौरव, 28 मैथिल, 32 सूरसेन और 20 वीतिहोत्र राजाओं की पीढ़ियां चलती है। इस प्रकार दस राज्यों में कुल 257 राजा होते हैं। अर्थात् प्रति राज्य 26 राजा। अब प्रति राजा का राज्य काल 28 वर्ष गिना जाय तो ई. पू. 382 से ई.पू. 628 वर्ष की काल गणना आती है। इस हिसाब से 382 अ 628 + 100 = 1110 ई. पू. महाभारत संग्राम काल निर्णीत होता है।

एक बात और है, पुराणों के कथनानुसार परीक्षित का जन्म महापद्म नन्द से 1050 वर्ष पूर्व हुआ। कौशीतकि सांख्यायन आरण्यक (अध्याय 15) के अनुसार सांख्यायन, उद्दालक आरुणि से दो पीढ़ी नीचे थे। शतपथ ब्राह्मण (xiii 5, 4, 1) के अनुसार इन्द्रौत देवापि या दैवापिशौनक जनमेजय के समकालीन थे। इनकी तीसरी शिष्यपरम्परा में पौलुशि के समकालीन उद्दालक आरुणि हैं। आरुणि से दो पीढ़ी नीचे सांख्यायन हैं। सांख्यायन से 2-3 पीढ़ी नीचे बुद्धकालीन लौहित्य है (कौशीतकि सांख्यायन आरण्यक)। इस प्रकार गौतम बुद्ध से पूर्व जनमेजय तक केवल 8-9 पीढ़ियां ही बैठती हैं।

डॉ. सीतानाथ प्रधान ने चन्द्रगुप्त मौर्य से बिम्बिसार तक का समय 325 ई. पू. से 522 ई. पू. तक माना है। उन्होंने मगध सोमाधि से रिपुंजय तक 21 पीढ़ियों का भोगकाल 588 वर्ष माना है। रिपुंजय 563 ई. पू. गद्दी पर बैठे, और 513 ई. पू. में मरे। इस प्रकार सोमाधि का समय 588 + 563 = 1151 ई. पू. ठहरता है। यही समय महाभारत संग्राम का है। इसी प्रकार परीक्षित (जो महाभारत संग्राम से 26 वर्ष बाद राजा हुए) से उदयन 22वीं पीढ़ी में हैं, जिनका समय 500 ई.पू. है। 22 पीढ़ी का भोगकाल 28 वर्ष प्रतिपीढ़ी मान कर 616 वर्ष होता है। इस प्रकार 500 अ 616 + 36 = 1152 ई. पू. महाभारत संग्राम ठहरता है। इसी प्रकार ऐक्ष्वाकु उर क्षय से प्रसेनजित 22वीं पीढ़ी में है, जिसका राज्यकाल 533 ई. पू. है। 22 पीढ़ी का भोगकाल 616 वर्ष हुआ। इस हिसाब से 533 + 616 = 1149 ई. पू. महाभारत संग्रामकाल है।

श्री तिलक का भी यही निर्णय है। श्री काशीप्रसाद जायसवाल महाभारत संग्रामकाल 1424 ई. पू. मानते हैं। श्री राधाकुमुद मुखर्जी भी इनसे सहमत हैं। जो हो, यदि महाभारत संग्राम का समय ई. पू. तेरहवीं शताब्दी हो तो वहीं द्वापर का अंत है। द्वापर का भोग काल लगभग 390 वर्ष है।

अतः त्रेता द्वापर सन्धिकाल ई. पू. सत्रहवीं या अठारहवीं शताब्दी ठहरता है, यही राम का निश्चित काल है। अर्थात् अब से 3850 वर्ष पूर्व राम काल है। जो भाष्यम xxxiv राम पैरा 160 में प्रूफ की अशुद्धि से 12वीं तेरहवीं ई. पू. छप गया।

■

परिशिष्टानि

(अ) अनुगेङ्गितानि

अनङ्ग-काम
अघोर-मंत्र
अनुराग
अभिसारिका
अधरामृत
आसंदी
उन्मुख यौवना
उपवन
उपानय
उत्कण्ठिता
उत्कता
काकिनी स्त्री
कान्त
काव्यम्
कान्ति
कालान्तरससिद्धिः
कुच-स्तन-यौवन
कुट्टिनी
केश-ग्रहण
कृशोदरी
कण्ठकित
कण्टकिता
कान्ता
क्रोध
गुण कीर्तनम्
गणिका
चतुर्धा प्रीति
चाटु भाव
तन्वी
ताल
तुरुष्क देश
दर्शन
दशस्मर दशा
दक्षिणानल
दूती
दयितः
नायक
निर्दय वामाचरण
नितम्ब
निर्लज्ज
नृतं
पंचतप
परिरम्भण
परिवर्त्तिनी विद्यां
बाला
भयान्विता दृष्टि
मन्मथज्वर-कामज्वर
मत्त वारण
मंत्री
मरुस्थल
मन्मथ-प्रभाव
मिलन यामिनी
मुकुलिता
माधुर्य
यौवन
रति दोष निराकरण
रमण
रतिसुखम्
रति अभेद
रति चक्र
रसांकुशी मंत्र
राग तरु
रागोऽनुराग
राग रज्जु
राग
रुच्य
रूपक
लज्जान्विद्या दृष्टि
लय
लावण्य
वरारोहा
विहसित
विषयाः
वासक सज्जा
वारस्त्रियः
विभ्रम
विट्
वेश्या
शठ
श्यामा
सात्विक भाव
सीत्कृत
सुरत
सुरतोत्सव
सुरत वंचिता
सुरत वर्धन
सुरतान्त
सुभग
सौकुमार्य
स्त्री रत्न
स्पृहा
स्नेह
सन्दीपनि विद्या
हृद्य

अनङ्ग-काम-कुसुमायुध-मनसिज-मनोज-अत्मभू-त्मर-मदन।
'कामं जानामि ते मूलं संकल्पांजयसे किल'
मनोहि मूलं हरदग्ध मूर्तेः (वृहत्संहिता)
'अनंगेनाबलासंगांजितायेनजागज्जत्रयी।' (रति रहस्य)
'घनुर्भृगश्रेणिजलतनुरमात्यः शशिधरो।
वसन्तः सामन्तः कुसुमषवः सैन्यमबलाः।
तथापित्रैलोक्यं जयति मदनो देहरहितः।'

'तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दार्द्वयमिदमयथार्थ दृष्यते-मद्विघेषु।' (शाकुन्तले)

अघोर मंत्र- ओऽम हां हीं हम् अघोरतर प्रस्फुट-प्रस्फुट प्रकट-प्रकट कह -कह शमय-शमय जात-जात दह-दह पातय-पातय
ओऽम हीं हीं हम् अघोराय फट्
इति अघोर मंत्रः (रसरत्न समुच्चय अध्याय 6)।
अनुराग-स्यादृश्ढेयं रतिः प्रेमा प्रोद्यन् स्नेहः क्रमादयम्।
स्यान्मानः प्रणयो रागोऽनुरागो भावइत्यापि।
अभिसारिका–उद्दाममन्मथमहाज्वरवेपमाना,
रोमांचकंटिकितगात्रलतां वहंती।
निश्शंकिनो ब्रजति या प्रिय-संगमाय,
सा दारिका निगदिता त्वभिसारिकेति। (भरत कारिका)।
अधरामृत-प्रस्मृतं न त्वया तावद्यन्मोहनविमोहितः।
अतृप्तोऽधरपानेषु रसनामपिवं तव। (नैषध काव्ये)।
आलिंगन-भावासक्ताः कामुकाः कामिनीनामिच्छन्त्यंगेषवम्भसीव प्रवेष्टुम्।
सम्प्रवेष्टुमिवयोषित ईषुः श्लिष्यतां हृदयमिष्टतमानाम्।
आत्मानः सततमेव तदन्तर्वेतिनो न खलु नूनमजानत्। (माघ)।
आसन्दी-बेत्रासन। कुर्सी।

उन्मुख यौवना- उत्कलिका-उत्कंठिता उद्रिक्ता स्फुटा स्पष्टा ओष्ठस्फुरणादिलिंगैः।

उपवन–कृत्रिमः आरामः।

उपायन–प्रियाख्यानक-भेंट-सौगात।
रिक्तापाणिनं वश्येत्तु राजनं भिषजं गुरुम्।
नैमित्तिकं विशेषेण सुहृदं फलकामुकः।
तथा–इष्टं भार्या प्रियं मित्रै पुत्रै चापिकनीयसम्।
रिक्तपाणिनंपश्येत्तु तथा नैमित्तिकं प्रभुम्।
ताम्बूल प्रेषण भी उपायन है–कामशास्त्र में ताम्बूल संकेत भी है–
'तांबूल वटिकाः पंचकीर्तिताः नरपुंगवैः।
कौशलांकुशकंदर्पपर्यं क चतुरस्रकाः।
कौशलः स्नेह बाहुल्ये चाहूतावंकुशस्तथा।
मदनातौ ज कंदर्पः पर्यकः संगमाशये।' (नागर सर्वस्व)

उत्कण्ठिता–'दुर्वारदारुणमनोभवबाणपातपर्याकुलांनरलमानसमुद्वहन्तीम्।
प्रस्वेदवेपथुयुतां पुलकांचितांगीमुक्तण्ठितां वदित तां भरतः कवीन्द्रः।'
पश्यामितामितइतः पुरतश्च पश्चादन्तर्बहिः परितएव विवर्तमानाम्।
(मालतीमाधव)।

'सौधादुद्विजयेत्यजत्युपवनं द्वेष्टि प्रभामैन्दवीम, द्वारान्नश्यति चित्रकेलिसदसो वेषं विषं मन्यते। आस्ते केवलमब्जनीकिसलय-प्रस्तारशय्यातले, संकल्पोपनतत्वदाकृतिरसायत्तेन चित्तेन सा।'

उत्कता- उत्कता = उत्कण्ठा, उत्क = उत्कण्ठिता

काकिनी : स्त्री-रससिद्धों ने काकिनी स्त्री की बहुत महिमा बखान की है। रसायन कर्म में उसका बहुत उपयोग बताया है, उसका लक्षण यह है-
यस्यास्तु कुंचिताः केशाः श्यामा या पद्मलोचना।

सुरूपा तरुणोभिनन्नाविस्तीर्णजघना शुभा।
संकीर्णहृदया पीनस्तनभारेण नम्रिता।
चुम्बनालिंगनस्पर्शकोमला मृदुभाषिणी।
अश्वत्थपत्र सदृशा योनिदेश सुशोभिता।
कृष्णपक्षे पुष्पवती सा नारी काकिनी मता।
रसबन्धे प्रयोगे च उत्तमा सा रसायने।

(रसरत्न समुच्चय, अध्याय 6)

कान्त– कथाभिः कामनोयाभिः काम्यैर्भोगैश्च सर्वदा।
उपचारैश्च रमयेद्यः स कान्तः इतीरितः (भाव प्रकाश)

काव्यम्–लोकौत्तरवर्णनानिपुणस्य कवेः सरसशब्दसंघटनात्मकं यत्कर्म तत्काव्यम्।

कान्ति– मन्मथोन्मेषणा शोभा विस्तृता क्रान्तिरुच्चयते।

प्राचीन काल में देहसिद्धि और लौहसिद्धि की साधना में अनेक सिद्ध रहते थे। जन्म-मरण को दूर करने वाली दिव्यौषध और हल्की धातु से कीमती धातु बनाने की विधि भारत की गुह्य विद्या थी। लंका में ताड़पत्र पर लिखित एक ऐसी दुर्लभ शिव- संहिता के कुछ अंश तथा नागार्जुन-संहिता नाम के ग्रंथों के अंश मिले हैं। ऐसा ही नित्यनाथ सिद्ध का 'रसरत्नाकर' पांच खंडों का ग्रंथ था, जिसके तीन खंड ही उपलब्ध थे, चतुर्थ खंड रसायन खंड दुर्लभ था, उसमें यह प्रयोग है–

कालान्त रस सिद्धिः-

कालान्तरससिद्धिर्या प्रोक्ता मन्थान भैरवे।
तदर्थ पंच तत्वानि षष्ठं जीवं च साधयेत्।
काकिन्या पुष्पकाले तु संगं कृत्वा समाहरेत्।
तद्योनिस्थं रजोवीजं गगनं तं विदुर्बुधाः।
काकिन्युत्पन्नपुत्रस्य सद्यो विड्वायुरुच्यते।
तेजस्तु काकिनी-पुष्पं जलं तत्पुत्र-शोणितम्।
काकिनी-पुत्र सर्वांग पृथ्व–तत्वमुच्यते।
रससेवकदेहीत्यवीर्य जीवस्तु कथ्यते।
तत्प्रत्येक कोटिवेधं कर्षेकरससंयुक्तम्।
कृत्वा संरक्षयेद्यिननं सुपिष्टं गोलकं कृतम्।
उन्नतं पौरुषं यावत् विस्तारेण तदर्धकम्।
कुर्यात्ताम्रकटाहं तं सिद्धचक्रं ततोऽचंयेत्।
कुमारी गुरुं देवाग्नीन् भैरवं भैरवीयुतम्।
तर्पयेद्वलिमांसेन क्षेत्रपालं च पूजयेत्।
धमनं तत्र कुर्वीत चतुर्विक्षु शनैः शनैः।
चतुर्विर्वकनलैश्च खदिराग्ङार-योगतः।
सुतप्तं फेननियुक्तं निर्धूमं च यदा भवेत्।
चन्द्रार्कग्रहनक्षत्रदेवता भुवनानि च।
नमस्कृत्य गुरुंदेवं देहं तत्र विनिक्षिपेत्।
सुद्रुतंतं विजानीयान्निक्षिपेत् पार्थिवं रसम्।
धमन्नैव यत्नेन यावत् तत् कल्पतां व्रजेत्।
अप्तत्तवाख्यं रस तस्मिनं क्षिपेद्रक्त भवेतु सत्।
वायुयुक्तं रसं क्षित्त्वा शुभ्रं वर्ण प्रजायते।
तेजोयुक्तं रसं क्षिप्याद्घनीभूतं भवेतु तत्।
ततः आकाशसंयुक्तं रसं तत्र विनिक्षिपेत्।
आवर्तितं सुवर्णभं जायते तत्र निक्षिपेत्।
जीवमुक्तं रसं दिव्यं ततो हुंकारमुच्चरेत्।
कृत्वा तत्र महारावं हुङ्कार–त्रयसंयुतम्।
ततश्चोत्तिष्ठते सिद्धः पूर्वाणहे भास्करो यथा।
दिव्यतेजा महाकायो महाबलपराक्रमः।
नवनाग-सहस्राणां बलं तस्याधिकं भवेत्।
जीवते वज्रदेहः सन् सत्यं सत्यं शिवोदितम्।
क्षुत्तपासाविनिर्मुक्तो जगन्नासे न नश्यति।
भुंजानः सर्व भोगांश्च इच्छासिद्धो भवेन्नरः।
(पार्वतीपुत्र श्रीनित्यनाथ विरचिते रसरत्नाकरान्तर्गत रसायन खण्डे वर्णिता)

कुच स्तन-यौवन
सुवृतमुन्नतं पीनमदूरोन्नतमायतम्।
स्तन-युग्मं सदा शस्तम्। (भविष्य पुराण) उ-33
'कासां न सौभाग्यगुणोऽङ्गनानां कष्टः परिभ्रष्टपयोधराणाम्।'

(काचित् सूक्तिः)

'पतितानां संसर्ग त्यजंति दूरेण निर्मला गुणिनः।'
इति कथयंजरतीनां हारः परिहरति कुचयुगलम्। (वाग्भटालंकार)
'सुवृतस्यैकरूपस्य परप्रीत्यै कृतोन्नतेः।
साधोः स्तनयुगस्येव पतनं कस्य तुष्टये (काचित् सूक्ति)

कुट्टिनी–कुट्टयति छिनत्ति नाशयति नाशयति स्त्रीणां शीलामिति कुट्टनी अथवा पुरुषेण सह परस्त्रीसंयोग-संपादिका।

केश ग्रहण–शिरोहृदयोपस्थानां त्रीणां कामस्थानानां आद्यः शिरस्थ
शशिकलां-पीडनाय कचाकर्षण्।
स्निग्धा घना कुंचित नीलवर्णाः केशाः प्रशस्तास्तरुणीजनानान्म।
प्रेमाभिवृद्धयै विधिनैव मन्दं ग्राह्या नरैश्चुम्बनदानकाले।
चिकुरान्परिगृह्या चुम्बति करयुग्मेन पतिः प्रियां यदि।
समहस्तकमित्यर्थकतो यदि हस्तेन तरंगरङ्गकम्।
नच दूती, नच याच्त्रा न चांजलिने च कटाक्ष-विक्षेपः।
सौभाग्यमानिनां सखि कचग्रहः प्रथममभियोगः।
हास्ययैर्वचोभिर्घनमुष्टिघातर्नखक्षतैर्दन्तनिपीडनैश्च।
विश्वासवाचा भण्तैः प्रसिद्धैर्वश नयेत प्रियवाक्ययुगल्भाम्।
बाहु-पीडनकुचग्रहणाभ्यामाहतेन नखदन्त-निपातैः।
बोधिस्तनुशयस्तरुणीनामुन्निमील विशदं विषमेषुः। (माघ)

कुच– ग्रहमनुग्रहं, दशन-खण्डनं मंडनं, दृगंचनमवंचनं, मुखरसार्पणं तर्पणम्। नखार्दनमतर्दनं दृढमपीडनं पीडनं, करोति रति संगरे मकरकेतनः कामिनाम्। (सुवृत्तलिके)
कर्णप्रदेशस्थकचान् विगृह्य परस्परं चुम्बति यत्र नारी।
पतिश्चरागात्सुरतावतारे कामावतंसः स कचग्रहः स्यात् (अ. रं.)

कृशोदरी–उदरेणतितुच्छेन विशिरेणमृदुत्वचा।
योषिद्भवति भोगाढ्या नित्यं मिष्टान्नसेविनी। (काशी खण्डे)

कण्टकित– कंटकः शुद्रशत्रौच रोमांचेऽपि च दृष्यते। (इति विश्वः)
कण्टकिता-रोमांचिता।

कान्ता– 'कान्ता ददाति मद्देनं, मदनः संतापमनुपशमम्।
संतापो मरणहो, तथापि शरणं नृणां सैव' (काव्यालंकार)
आनन्दममन्दमिमं कुवलयलोचने ददासि त्वम्।
विरहस्त्वयैव जनितस्तापयतितरां शरीरं मे

क्रोध– अप्रिये वस्तुनि श्रुते स्मृते दृष्टे च सति मनःक्षोभकोपोद्वेग परिपाकः स क्रोधः।
प्रतिकूलेषुतैक्ष्णयस्य प्रबोधः क्रोध उच्चयते।

गुण कीर्तनम्–सौन्दर्यहसितालापैनस्त्यन्यस्तस्समो युवा। (श्रृंगार तिलक)
इतिवाणी भवेद्यत्र तदित्थं गुणकीर्तनम्।

गणिका– कला-प्रागल्म्य धौत्यभि्यां गणयति कलयति सा गणिका।
वाग्भिः प्रीतिकरैर्विलोचनशतैः संतर्जनैः सस्मतैः।

क्रोधैरोषधमंत्रतंत्रमणिभिः कृत्वा वशं नायकम्।

हत्वा तस्य समस्तवस्तुनिचयं, त्यवस्तवा तमन्यं शठंसेवन्ते धनिनं वृथैव सततं वारांगनानां रतिः। (शृंगार दीपिका)

प्राप्ते कान्ते कथमपि धनादानपात्रे च वित्ते।

त्वं मे सर्व, त्वमसि हृदयं, जीवितं मेत्वमेव।

इत्युक्त्वा तं क्षपितविभवं कंचुकाभं भुजंगी।

त्यक्त्वा गच्छेत्सधनमपरं, वैशिकोऽयं समास,। (क्षेमेन्द्र)

दीर्घाप्रीति– अभ्यासादभिमानाच्च तथा संप्रत्ययादर्पि।

विषयेभ्यश्च तंत्रज्ञाः प्रीतिमाहुश्चतुर्विधाम्। (वात्स्यायन)

अनभ्यस्तेष्वपि पुरा कर्मस्वविषयात्मिका।

संकल्पाज्जायते प्रीति र्या सा स्यादाभिमानिकी। (वात्स्यायन)

चाटुभाव–अस्त्री चाटुश्चटुः श्लाघा प्रेम्णामिथ्याभिशंसनम्। (कोशः)

तन्वी– अप्रसूता भवेच्छ्यामा त्नवो चन नवयौवना।

ताल–नर्तनगलवादनक्रियाणां कालेन मानम्।

तुरुष्क देशः–तुर्किस्तान।

दर्शन–अनिमेषलदृष्टया दर्शनं दर्शनं मतम्। (शृंगार दीपिका)

दशस्मरदशा– नयन-प्रीतिः प्रथमं चित्तासङ्गस्ततोऽथसंकल्पः।

निद्राच्छेदस्तनुता विषय निवृत्तिस्त्रपानाशः।

उन्मादो मूर्छा मृतिरित्येता स्मरदशा दशैव स्युः।

अभिलाषोऽय चिन्ता स्यात्स्मृतिश्च गुणकीर्तनम्।

उद्वेगोऽय प्रलापः स्यादुन्मादो व्याधिरेव च।

जड़ता मरणं चैव दशमं जायते ध्रुवम्। (शृंगार तिलक)

दक्षिणानिल– 'ग्रीष्माषाढानुपहतेषूपवाशुद्धमन्त्रिणि। (हैम.)

दक्षिणः सरलावामपरछन्दानुवर्तिषु, (विश्वलोचन)

दूती– सुवेषिता दुःखसहिष्णुता च सुशीलता कोमल वाग्मिता च,

संमन्त्रिताऽऽच्छादितेमंत्रता च च्छन्दानुर्तित्वर्मजिता च।

प्रोत्साहनं गुणकथा-कथनं कलानां विश्मण बहुलताधन-दर्शन च।

गाथानुरागरचनं वचनस्यसिद्धिः कर्मेतिषोडषविधं कथयंति दूत्याः। (आदि पुराणे)

दयितः– वासोऽगंरागमाल्याद्यैः कृत्यैर्यः प्रेयसीरहः।

प्रसादयन् रमयति दयितः सोभिधीयते।

भजते यः प्रियामिष्टैः शयनासनभोजनैः,

अभीष्टाभिश्चशोभाभिर्जीवितेश इतीरितः। (भाव प्रकाश)

नायक– प्रणयो दयतिः कान्तो नाथः स्वामी प्रियः सुहृत्।

नंदनो जीवितेशश्च सुभगो रुचिरस्तथा।

इत्थं नायक-संज्ञा स्युः स्त्रीभिः प्रीति-प्रयोजिताः।

निर्दय वामाचरण–आहतानखपदैःपरिरम्भाश्चुम्बितानि घनदन्त-निपातैः।

सौकुमार्य–गुणसंभृतकीर्तिर्वाम एव सुरतेष्वपि कामः।। (किरात)

नितम्ब– नितम्बबिम्बो नारीणा मुनतो मासलः पुथुः।

महाभोगाय संप्रोक्तः (स्कान्दे, काशीखण्डे) अथवा–निभृतं तम्यते कांक्ष्यते कामुकैः इति नितम्बः।

निर्लज्ज– परुषैरवमानैश्च वार्यमाणो मुहर्मुहुः।

सापराधोऽपि यो गच्छेत् स निर्लज इतीरितः।

नृतं–ताललयाश्रयम्। (दशरूपक)

पंचतप– पंचातपो वा पंचाग्नि साध्यः तपोविशेषः।

यज्ञियैर्दारुभिः शुष्कैश्चतुर्दिशु चतुष्कृतम्।

वहि– संस्थापनं ग्रीष्मे तीवरांशुस्तत्र पंचमः। (कल्कि पुराण)

परिरम्भण– प्रिय-गात्रस्पर्श-सुख ग्रहग्रस्ततया तदंगेप्रविविक्षतोरिव अभेद मभिलषतोरिव–भावासक्ताः कामुकाः कामिनीनामिच्छन्त्यगे ष्वम्भसीव प्रवेष्टुम। (जयमंगल)

परिवर्तिनी विद्या– देखिए कथा सरित्सागर तरंग 6।

बाला– बालेतिगीयते नारी यावत् षोडशवत्सरम। (नागर सर्वस्वम्)

का नाम बाला द्विराज पाणिग्रहाभिलाषंकथयेल्लज्जा (नैषध)

सर्वा एवहि कन्याः पुरुषेण प्रयुज्यमानं वचनं विषहन्ते, न तु लघु मिश्रामपि वाचं वदन्तीति घोटकमुखः। (वात्स्यायन कन्याविश्रम्भणे)

बाला तन्वी मृदुरियमिति त्यज्यतामत्र शंका,

काचिद् द्रष्टा भ्रमर-भरती मंजरी भज्यमाना

तस्मादेषा रहसि भवता निर्दय पीडनीया

मनदाक्रान्ता वितरतिरसंनेक्षुयष्टिः समग्रम्।

रतिकलां कलयत्यसुवल्लभे किमपि कंजमुखी सुमुखी नवा।

हहननेति ममेति वचोमिषान्मदन-दीपन मंमाभिवास्मरत। (हम्मीर काव्ये)

भायन्विता दृष्टि–विस्फारितोभयपुटा भयकम्पिततारका।

निष्क्रांत मध्यायादृष्टि भयंभावे भयान्विता।

मन्मथज्वर–काम ज्वर–स्मर एव ताप हेतुर्निर्वापयिता स एव मे जातः।

दिवस इवाभ्रश्यामस्तापात्यये जीवलोकस्य। (अभिज्ञान शाकुन्तले)

मत्तवारणः– प्रसाद प्रावारक प्रासादवीथीनां वरण्डकः– छज्जा

मन्त्री– स्थितस्य कार्यस्य समुद्भावार्थमनर्थ कार्यप्रतिघातनार्थम्।

आगामिनोऽथैस्य च संग्रहार्थ यो मंत्रकृत्यस्यात परमः स मंत्री।

(विक्रमांक चरिते)

स्वामिकार्यार्थमुद्यमः पापाद्भयं, प्रजानां हितं परिवाराणां संयोजनम्।

राज्ञश्चित्तवृत्यनुसरणं, समयोचितपरिज्ञानं, अपायकार्याद्वाजनिवारणं

एवंविधगुणायुक्तः कुलक्रमागतः कामंदक चाणक्य धोम्यशुक्रवाचस्पत्या-दिनीतिशास्त्राभिज्ञो मंत्रिपदयोग्यो भवति।

मरुस्थल–म्रियन्ते प्राणिनः तृष्णाया यत्र स मरुः।

मन्मथ प्रभाव–अविनय एव विभूषणमश्लीलाचरणमेव बहुमानः।

निःशंकतैव सौष्ठवमनवास्थितिरेव गौरवाधानम्।

केशग्रहणमनुग्रह उपकारस्ताडनंमुदे दंशः।

नखदिलिखनमभ्युदयो दृढ-देहनिपीडनं समुत्कर्षः। (कुट्टनीमते)

मिलनयामिनी–किमपि किमपि मंदं मंदमासत्तयोगादविरलित कपोलं जल्पतोरक्रमेण-1 अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैदोष्णोरविदिदगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्। (उत्तर रामचरिते)

रमकलिता–खेदालसा दृष्टिः

रतान्ते च श्रमे चैव सुखसम्भोगभावने।

गन्धे सपर्शे च मुकुला दृष्टिरिष्यते। (भरत)

माधुर्य– सरसत्वम्। काव्यगुणः।

'चित्तद्रवी भावमयो ह्यदो माधुर्यमुच्यते' (साहित्य दर्पण)

यौवन–बाल्यानंतर गात्राणांवैपुल्सौष्ठविभक्तताविधायी स्फुटिता-दाडिमोपमः स्मरवसतिः अवस्थाभेदः यौवनम्।

रतिदोषनिराकरण– यद्दूरमुक्तविनयं यदनुष्ठितेच्छं, यन्निर्दयं यदसमाधि यदस्तलज्जम्। यद्रागनिघ्नहृदयं यदरोढधर्य, तत्तद्बभूव सुरतेषुगुणो न दोषः।

परिवेष्ट्य करेण कुन्तलान्मदनार्तो यदि धारयेत् प्रियाम्।

रतिकेलिकलापकोविदाः कथयन्तीति भुजंगवल्लिकम्।

रमण– रमणस्तु प्रिये स्मरे इति विश्वलोचनः। रत्युत्पादकः, विशेषेण कामशास्त्रोपदिष्ट्युक्तिर्भिः क्रीडकः।

रति सुखम्– चलापांगा दृष्टि स्पृशसि बहुशो वेपथुमर्ती, रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदुकर्णान्तिकचरः। करौव्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वम-धरम्। वयतत्वान्वेषान्मधुकर। हतास्वं खलुकृती (शाकुन्तले) (अथ च)

विलोलतां चक्षुषि, हस्तवेपथुं, भ्रुवोर्विभंगं, स्तनयुग्मवल्गितम्।

विभूषणानां क्वणितं च यद्पदः गुरुर्यथा नृत्यविधौ समादधे।

(भट्टिकृत रावणवध काव्ये)

रतिअभेद–सुरते निराकुलाऽसौ द्रवतामिव याति नायकरस्यांगे।

न च तत्र विवेवनुमलं कोऽयं काऽहं किमेतदिति। (रुद्रभटः)

आश्लिष्टा रभसाद्विलीयतइवाक्रान्ताऽप्यनंङ्गेन या

यस्याः कृत्रिम चण्डवस्तुकरणाकूतेषु खिन्नं मनः।

कोऽपं काऽहमिति प्रवॉत्ति सुरता जानाति या नान्तरम्।

रन्तुः सा रमणी स एव रमणः शेषौ तु जायापती। (अमरुक सुभाषितावलि)

रतिचक्र--शास्त्राणां विषयस्तावद्यावन्मन्दरसा नराः,

रतिचक्रे प्रवृत्तस्य नास्ति शास्त्रं न च क्रमः। (कामसूत्र)

नास्त्यत्र गणना काचिन्न च शास्त्रपरिग्रहः।

प्रवृत्ते रतिसंयोगे राग एवात्र कारणम्।

स्वप्नेष्वर्पि न दृष्यन्ते ते भावास्ते च विभ्रमाः।

सूरत व्यवहारेषु ये स्युस्तत्क्षणकल्पिताः।

सहजप्रेमरसानां गुररपि लघुतामुपैति तनुरङ्गे।

कुसुम मसोढनखांङ्क तुन्दिलमधुपांल्लघूद्वहति। (पञ्चायुधप्रपंच भाणे)

रसाङ्कशी मंत्र- ॐकामराज शक्ति बीज रसांकुशार्य आज्ञैयां विद्यां रसांकुशोम्। इतिरसांकुशी मंत्रः। (रसरत्नसमुच्चय अध्याय 6)

रागतरु– प्रेमरूपी तरु-कामिनी-कामिनी प्रथमयौवनान्वितां मंद वल्लगुमृदुपीड़ितस्वनाम्।

उत्स्तनो समवलंव्य या रतिः सा न धातृभवनेऽस्ति में मतिः।

रागोनुराग– स्याद्दृढेय रतिः प्रेमा प्रोद्न् स्नेहः क्रमादयम्।

स्यान्मानः प्रणयो रागोऽनुरागो भाव उच्यते।

रागरज्जु–सप्रत्यवायदुर्लभनिषेधविषयश्च यो विषमः।

कामः स्वभाववामः प्रसरति तत्रैव डुर्वारः। (रति रहस्य)

राग– दुःखमप्यधिकं चित्ते सुखत्तवेनैव रज्यते।

येन स्नेह-प्रकर्षेण सराग इति कथ्यते। (रसार्णव सुधाकर)

स एष चेद् ग्रुणद्रव्यदेशकालादिभिहदि।

रज्यते दीप्यते चित्ते स राग इति कथ्यते।

रुच्य-रुचिर– भोज्येषु यत्राभिरुचिस्तद्दानैरभिरोचयन्।

रुच्या प्रियां रमयति रुचिरः सोऽभिधीयते। (भाव प्रकाश)

रूपक– दृश्यकाव्य।

लज्जान्विता दृष्टि- किंचिदंचितपक्ष्माग्रा पतितोधर्वपुटा ह्रिया।

त्रपाधोगत तारा च दृष्टिर्लज्जान्विता तु सा।

लय– नृत्यगीतवाद्यानां साम्यतम्। अथवा– तालान्तरालवर्ती यः कालोऽलय इतीरतिः।

तालकालान्तरस्थायी द्रुतमध्यविलम्बितः।

विधा लय इति प्रोक्तो वदरामलविल्ववत्।

लावण्य–मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमथान्तरा।

प्रतिभाति यदंगेषु लावण्य दतिहोच्यते। (रासार्णव सुधाकरः)

वयं रक्षामः– वयं रक्षामः यह शब्द भाव सौष्ठव के लिए प्रयुक्त हुआ है। यज्ञ को भोग योनि कहा गया है, इसी भाव का द्योतक शब्द वयं रक्षामः प्रयोग किया है। व्याकरण की दृष्टि से यह शुद्ध नहीं है, परन्तु निरंकुशा कवयः, मापस्य च मर्ष कुर्यात् छन्दोभंगेन कारयेत्। (पिंगल सूत्र)

वरारोहा–वरः सुन्दरः आरोही नितम्बः यस्याः सा वरारोहा।

अविनय एवं विभूषणमश्लीलाचरणमेव बहुमानः।

निःशंकतैव सौष्ठवमनस्थितिरेव गौरवाधानम्।

विहसित– विहसितं मध्यमो हासः।

आकुंचित कपोलाक्षं सस्वनं निःस्वनं तथा।

प्रस्तावोत्थं सानुरागमाहुर्विहसितं बुधाः।

विषयाः–विशेषेण सिन्वन्ति बध्यनंति पुरुषं ते विषयाः।

वासस्सज्जा–या वासवेश्मनि सुकल्पिततल्पमध्ये, ताम्बूलपुष्पवसनैश्च समं ससज्ज। कान्तस्य संगमरसं समवेक्षमाण, सा कथ्येत कविवैरिह वाससज्जा।

वारस्त्रियः– वारस्य वृन्दस्य उपभोग्याः। अथवावारो गणिकाध्यक्षः तं प्रतिबद्धा स्त्री। (सर्वानन्द)

विभ्रम–विलास। श्रृंगार-चेष्टा।

'कामौत्सुक्यकृताकारं रूपयौवनसम्पदा।

अनवस्थितचेष्टत्वं विभ्रमः परिकीर्तितः। (भरत)

विट्– भक्षितनिजबहुविभवाः परविभवक्षपणदीक्षिताः पश्चात्।

अनिशं वेश्यावेशस्तुतिमुखरमुखा विटाश्चिन्त्याः।

वेश्या नागरकयोः परस्परं संदेशं विटति कथयति विटः।

वेश्या–'वेश्यावाटः वेशः, तत्र या स्त्री सा वेश्या, यद्वानेशमर्हति, वेशेन दीव्यति व्यवहरति, वेशेन पणययोगेन जीवतीति वा वेश्या।'

'सामान्या वनिता वेश्या सा वित्तं परमिच्छति।

निर्गुणेऽपि न विद्वेषो न रागोऽस्या गुणिन्यपि।'

इत्येवं बहुहृदया, बहुजिह्वा बहुकराश्च बहुमायाः।

तत्वेन सत्यरहिताः को जानाति स्फुटं वेश्याः।

अथ श्रृंगारपराः सामान्या, वनिताः पुरमण्डनाः हृदलासिन्यः

वारस्त्रियः रूपाजीवाः भण्डहासिन्यः पण्यांगना स्मरणवीथिकाः

आदि बहुनामाभिः प्रसिद्धाः वेश्याः। वेश्यारतमपि क्वचित्प्रशंसितं यथाः-

'गाढालिंङ्गनपांडितस्तनतटं स्विद्यतकपोलस्थलं,

संदष्टाधरमुक्तसांत्कृतलसद् भ्रूभ्रान्तनृत्यत्करम्।

चाटुप्रायवचोविचित्रभणितं घातैरुतश्चांकितं,

वेश्यानां घृतिधाम पुष्पधनुषः प्राप्नोति धन्योरतम्। (काव्यालंकारे)

तावच्चतूर्ण धनमाहरेत यावत् स रगेण विनष्टसंज्ञः।

प्रशान्तरागानलशीतलस्तु स लोहपिंडो कठिनत्वमेति (क्षेमेंद्र)।

शठ- प्रियं वक्ति पुरोऽन्यत्र विप्रियं कुरुते भृशम्।

ज्ञातापराधचेष्टश्च कुटिलोऽसो शठो यथा। (श्रृंगार तिलक)

पुनश्च यथोक्तं भरतेन– 'दुःशीलोऽथ दुराचारःशठो वामो विकत्थनः।

निर्लज्जो निष्ठुरश्चेति प्रियं क्रोधेऽभिनिर्दिशेत्।'

यथा श्रृंगार तिलके– किं कि वक्त्रमुपेत्य चुम्बसि बालान्निर्लज्ज लज्जा क्व ते।

वस्त्रान्तं शठ मुंच, मुंच शपथैः कि धूर्त वाग्वन्धनैः।

खिन्नाऽहं तव रात्रिजागरवशत्तामेव याहि प्रियां।

निर्माल्योझितपुष्प-दाम निकरे का षटपदानां रतिः।

श्यामा–अप्रसूता भवेच्छ्यामा, तन्वी च नवयौवना। तन्त्री श्यामा शिखरिदशना (मेघदूते)

सात्विक भाव– अत्र सत्वं जीवच्छरीरं तस्य धर्माः सात्विकाः, तथा च शारीराः भावाः स्तम्भादयः सात्विका भावाः। (रस तरंगिणी)

स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमांचः स्वरभंगोऽथ वेपथुः।

वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्विका मताः।

सीत्कृत–यूनोः प्रहणनाज्जातः पीड़ा व्यक्तिकृते भवेत्।

गलादिजातो यः शब्दः विशेषस्तद्धि सीत्कृतम्। (रत्नदीपिका)

वंश- विस्फुटनवच्च सीत्कृतम्। (रतिरहस्य)

सुरत– बाला मृदुगात्रलता दृढपुरुषाक्रान्तविग्रहा न परम्।

न व्यथिता, मुद्माप, प्रभवति खलु चित्तजन्मनः शक्तिः।

अचिन्त्य शक्तिभगवाननंगः

या सा चंदनपङ्कमङ्गपतितं भारं गुरुं मन्यते।

सुप्ता कोमलपद्मपत्रशयने खेदं परं गच्छति
सा सर्वागभरं प्रियस्य सहते केनाऽप्यहो हेतुना,
चित्रं पश्य किमत्र चित्रमथवा, कामस्य किं दुष्करम्।
सुरतोत्सव–विगलितहृदययोः प्रणयार्द्रयोः शयनमेकमजस्रमुपेयुषोः।
भगवतः कृपयैव मनोभुवो भवतु वामनिशं सुरतोत्सवः। (श्रृंगार तिलक)
सुरतवंचिता–बालेति गीयते नारी यावत्षोडशवत्सरम्।
तस्मात्परं च तरुणी यावता त्रिंशता भवेत्।
तदूर्ध्वमधिरूढा स्याद्यावत्पंचाशता भवेत्।
वृद्धा तत्परतो ज्ञेया सुरतोत्सववंचिता। (नागर सर्वस्व)
सुरतवर्धन– सौन्दर्य प्रीतिसंपत्तिश्चणडवेगोऽथ यौवनम्।
एकैकमनुरागाय किमु यत्र चतुष्टयम्।
सुरतान्त– आलोलामलकावलिं विलुलितां विभ्रंचलत्कुण्डलं,
किंचिन्मृष्टविशेषकं तनुतरैः स्वेदाम्भसां जालकैः।
तन्व्या यत्सुरतान्त तान्तनयनं वक्त्रं रतव्यत्यये,
तत्वां पातु चिराय किं हरिहरब्रह्मादिभिर्देवतैः।
सुभग- सर्वोन्नतत्वं सौभाग्य तद्वान् सुभग उच्यते।
अथवा-सपत्नी नखदन्तादिचिन्हे यस्य न दृश्यते।
विस्मार्यमाणमानेर्ष्यः सुभगः सोऽभिधीयते। (भाव प्रकाश)
सौकुमार्य- यत्स्पर्शासंहितागेषु कोमलस्यापि वस्तुनः।
तत्सौकुमार्य त्रेधा स्यान्मुख्यमध्याधमः क्रमात्।
अंग पुष्पादिसंस्पर्शासहं येन तदुत्तमम्।
न सहेत करस्पर्श येनांगं मध्यमं हि तत्।
येनांगयातपादीनामसहेत्तदिहाधमम्। (रसार्णवसुधाकरे)
स्त्रीरत्न– जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्धि रत्नं प्रचक्षते,
सारं तु महिलारत्नं संसार इति निश्चयः,
द्विपहयवनितादीनां स्वगुणविशेषणरत्नशब्दोऽस्ति (वृहत्संहिता)
स्त्रीणां गुणा यौवनरूपवेषदाक्षिणयविज्ञानविलासपूर्वाः।
स्त्रीरत्नसंज्ञा च गुणांवितासु स्त्री व्याधयोऽन्याश्चतुरस्य पुंसः। (वृहत्संहितायाम्)
स्पृहा–तृष्णा, अभिलाषा।
स्नेह–आरुह्य परमा काष्ठां प्रेमार्चिद्दीपदीपनः।
हृदयं द्रावयन्नेष स्नेह इत्यभिधीयते।
अत्रोदिते भवेज्जातु न तृप्तिर्दशनादिषु।
संदीपिनी विद्यां– देखिए कथा सरित्सागर तरंग 6।
हृद्य–योविप्रियं न कुरेत नाना युक्तं प्रभाषते।
तथार्जवं समाचारः हृद्यइत्याभिधीयते। (भरतोक्त)

साधन ग्रन्थानां वर्णानुक्रमणी (सहायक ग्रंथ)

अर्थशास्त्र–कौटिल्य
अलंकार सर्वस्व
अमर कोश
आर्य विद्या सुधाकर, (यज्ञेश्वर भट्ट)
उत्तर रामचरित-नाटक
उपनिषद्– मुण्डक
उपनिषद्-छान्दोग्य
उपनिषद्– वृहदारण्यक
उपनिषद्–मैत्रायण
उपनिषद्-कौशीतकी
कला विलास
काव्य प्रकाश, टीका सुधासागर
काव्यालङ्कार सूत्र
कुलार्णवतन्त्र
गीता
चक्रदत्त
चम्पू रामायण
जानकी परिणय
जातक अट्ठकथा
जैन इतिहास, भाग दूसरा
तैत्तिरीय संहिता
तैत्तिरीय आपस्तम्ब (हिरण्यकेशी)
निरुक्त
निरुक्तालोचन (सत्यव्रत सामश्रमी)
पुराण-पद्म
पुराण-विष्णु
पुराण-हरिवंश
पुराण-मत्स्य
पुराण-वायु
पुराण-ब्रह्माण्ड
पुराण-ब्रह्मवैवर्त
पुराण-वराह
पुराण-स्कन्द
पुराण-भविष्य
पुराण-मार्कण्डेय
पुराण-अग्नि
पुराण-लिङ्ग
पुराण-साम्ब
पुराण-देवीभागवत
बुद्ध पूर्व भारत (मिश्रबन्धु)
बौधायन सूत्र
ब्राह्मण-शतपथ
ब्राह्मण-ऐतरेय
ब्राह्मण-ताण्ड्य
ब्राह्मण-तैत्तिरीय
बुद्ध चरित्र
वृहत्संहिता
भारतीय संस्कृति और अहिंसा (धर्मानन्द कोसाम्बी)
मनुस्मृति
महाभारत-निर्णय सागर प्रेस
मङ्ख कोश
भाष्य-वेदान्त (शंकर)
भाष्य-वेद (द्विवेदाङ्ग)
भाष्य-वेद (विद्यारण्य)

भाष्य-यजुर्वेद (महीधर)
भाष्य-वेद (सायण)
योग वाशिष्ठ
रघुवंश
रामायण (वाल्मीकि)
रावणवध-काव्य
वाग्भट काव्यानुशासन
विजय नगर साम्राज्य का इतिहास-वासुदेव उपाध्याय
विश्वलोचन (कोश)
वाजसनेयि संहिता
वेद-ऋग्
वेद-यजुः
वेद-अथर्व
वृहत्संहिता-वराहमिहिर, वेंकटेश्वर प्रेस
वेदान्त दर्शन
वैदिक सम्पति, (रघुनन्दन शर्मा)
वैदिकवाङ्मय का इतिहास (भगवदत्त शास्त्री)
सांख्यायन श्रोतसूत्र
शंकर दिग्विजय
श्रीमद्भागवत
सौंदरानन्द महाकाव्य
ृंगार तिलक (भाण)
ृंगार दीपिका
सुभाषितावलि
हर विजय महाकाव्य-टीका
हिन्दूधर्म समीक्षा-लक्ष्मण शास्त्री
त्रिपिटिक-राहुल सांकृत्यायन
विविध पत्र पत्रिकाएं और स्फुट लेख
Book of Eyekcl
Chamber's Luger English Dictionary
Chamber's Parlour Atlas
Cunningham
Genesis
Historical History of World
History of India by E. W. Thomson
History of Jews Mitman
History of Arabia by A. Crichton
History of Rome by Milman
History of Persia by Lt. Co. Sykes
History of Persia Index
Hebrend Scriptures
Inslial of Manu by Sir W. Jones
Muirs Sanskrit Texts
Mosaic Narrative
Myths of Babylonia and Assyria
Psalm of Moses
Province of Angola of Africa
Turners History और उसके फुटनोट
Tod's Rajasthan
The Englishman of 20-4-25
The Greek Legends by Hamilton
The Greeks in India by Poccok
ऐत्तरेय ब्राह्मण भाष्य–डॉ. मार्टिन हाग कृत

इति शब्दः रचना-समाप्ति-द्योतकः। अनया कृतेरस्याः कर्तुश्चास्य स्वस्य पुण्यं पाठकानां च श्रेयःप्राप्तिः, 'दृष्टसुखार्थी हि लोकः' इति सर्वजनाभिलषणीयौ अर्थकामाख्यौ पुरुषाथावधिकृत्य मे रचनाप्रवृत्तिः, अपि च अनेनोपाख्यान-ग्रन्थेन मया पण्णार्महिकफलानां सिद्धिः साधिता, गुणालंकारसौचित्तयादिभिः, विचित्रार्थरसभावचमकारप्रादुर्भावेन, अनिवर्चनीय-सर्वातिशायिविलक्षणानन्दजनकत्वं-कान्ताकान्तवचनतुलितसुधामयवचनेनातीत रसदातृत्वं चेति। साधुविर्गहितादपथान्निवर्तनं सत्पथे प्रवर्तनं साहित्यस्य परमोत्कर्षः।

'वयंरक्षामः' विधिनिषेधावगति हेतुभूतमहावाक्योपाख्यान काव्यमेव। यत् 'उत्पाद्यवस्तु काव्यं' यद्धा काव्येषु प्रायः पुरुषार्थानां उपदेशः शृंगारादि त्रिचतुराररसाश्च समस्तयंते, एतद्दृष्टयाऽशृंगारकरुणावीरा रसाः पुरुपार्थानां बोधः, तथाऽत्र लंकाऽपोध्या-किष्किन्धोरपुर नगरवर्णनं, नायक प्रशंसनं, क्रीड़ा- रत्योत्सव-विप्रलंभः कथाविशेषश्चनिवद्धाः, इति महाकाव्य गुणानां बाहुल्यम्। तद्दृष्टयेदां प्राधान्येन रसवत्तया विविधोपाख्यान वर्णनमयत्वाचन भवतु आख्यानकाव्यम्। काव्याहारेऽस्मिन द्विविधोरसः वाग्रसोवस्तुरसश्चेति।

अतो आनन्दरूपमृतं यद्विभाति, आत्मनः आनन्दस्वरूपं कविनिबद्ध रसादिभावनया प्रकाशते, अतो रस एवात्मा काव्यस्य, काव्यं च रसात्मकं वाक्यम्। रसो हि काव्यस्यऽऽत्मा, शब्दार्थो च शरीररूपतयाः। रसाभिव्यक्तिश्चप्रसादगुणेन सुतरां भवति, यथाच सुरूपा सालंकाराऽपि युवतिः गुणमन्तरा न रसं स्वदते, तथैवं शब्दालंकारप्रधानमपि निर्गुणं काव्यं वेदयाय न प्रभवति। भावनिबंधनोरसः तत्र भावस्य विभावानां चिरकाल वर्तित्वे स्थायित्वम्। रसस्योत्कर्षापकर्षहेतू गुणदोषी शब्दार्थयोरुपचर्यते, तत्र ओजः प्रसादसमताश्लेषादयोगुणाशब्दार्थोभयनिष्ठाः। अपिच सुभाषित निष्पत्तौ साहित्यकारस्य नैसर्गिकी प्रतिभा, लोकावेक्षणात् वैदग्धयंच अपेक्षितं, अन्वोनेमेषशालिनी प्रज्ञा प्रतिभा। 'योवक्रोक्तिप्रधानः स्थात्स विद्ग्ध कीर्यते। यदुक्तं महाकवेर्लक्षणं-शब्दार्थोक्तिषु यः पश्येदिहकिंचन नूतनम् वल्लिखेत् किंचन प्राच्यं दृश्यतां स महाकविः।'

नूनं ध्वनिरसालंकाररीतिस्फुटकविकर्मकाव्यमर्मपरिशीलनपरमानन्द-प्रसवः, स्वबुद्धिज्ञानवैभवानुसारेण रसास्वादनपरा रसिकाः, विविधवर्णनाकर्माणगणगुम्फितेस्मिन्रसनिर्बन्धे यावद्विवक्षितरसग्राहिणः, सद्यः परमानन्दानुभाविनो भवन्तु।

इति सर्वेश्रीसम्पन्नम्।

■

स्वत्वाधिकारी भारतीय विद्या मन्दिर, कोलकाता के लिए सचिव शंकरलाल सोमानी द्वारा कल्याणी प्रिंटर्स, अलखसागर रोड, बीकानेर के लिए कंप्यूटर-एन-मीडिया, 25ए, सी. आ. एवेन्यू, कोलकाता-72 में मुद्रित एवं भारतीय विद्या मंदिर से प्रकाशित। संपादक- डॉ. बाबूलाल शर्मा।

सादर स्मरण श्रद्धांजलि

इस वर्ष कई प्रिय और आदरणीय व्यक्तियों से बिछुड़ने का दंश रहा। इस दौरान भारतीय विद्या मंदिर से आत्मीयतापूर्ण संबंधों वाले कई ग्रंथों के लेखक-रचनाकार दो मनीषी विद्वानों का निधन हो गया। भारतीय विद्या मंदिर से प्रकाशित और चर्चित रहे ग्रंथ 'रामकथा की कथा' (दो भाग) और 'श्री ध्रुव चरित्र' के लेखक **आचार्य सोहनलालजी रामरंग** का गत वर्ष निधन हो गया था। इस वर्ष नवम्बर में, भारतीय विद्या मंदिर से प्रकाशित 'Human Values' (हिन्दी अनुवाद- 'मानव मूल्य') तथा 'चाणक्य नीति' के लेखक व अनुवादक-सम्पादक **सत्यव्रतजी शास्त्री** का निधन हो गया। पद्मभूषण तथा ज्ञानपीठ पुरस्कार एवं साहित्य अकादमी फैलोशिप से सम्मानित विश्व प्रसिद्ध संस्कृत-विद्वान शास्त्रीजी कई देशों में अतिथि प्रोफेसर भी रहे थे।

राजस्थानी भाषा-साहित्य के गहन अध्येता एवं शोधकर्ता **डॉ. हीरालाल माहेश्वरी** (जयपुर) नहीं रहे। जिनसे दो बार मिलने और बातें करने का अवसर मिला, सुप्रसिद्ध कहानी-उपन्यास लेखिका **मन्नू भंडारी** (दिल्ली) चली गयीं। वैचारिकी के वरिष्ठ लेखक **डॉ. शेरसिंह बिष्ट** (अल्मोड़ा) अब नहीं हैं। मुम्बई में वैचारिकी के सुधी पाठक और उसके हर अंक पर अपने मित्रों से चर्चा करने वाले, राजस्थानी संस्कृति के प्रति अत्यंत लगाव रखने और उसे समृद्ध करने में लगे रहने वाले **मनमोहनजी बागड़ी** नहीं रहे। कोलकाता में-- खिलखिलाते चेहरे से बाहों में भरकर मिलने वाले **कवि नवल** चले गये, भारतीय विद्या मंदिर की सह-संस्था भारतीय संस्कृति संसद के पूर्व अध्यक्ष बांग्ला के कवि सीधे-सादे **नरनारायणजी हरलालका** अब हमारे बीच नहीं हैं जिनके नेतृत्व में किये गये नैनीताल, राजगीर, चित्रकूट आदि के भ्रमण याद रहेंगे। हरलालकाजी वैचारिकी के सुधी पाठकों में थे और अंक प्राप्त होते ही फोन पर अपनी प्रतिक्रिया देते थे। वे कहते थे वैचारिकी किसी समय कोलकाता से प्रकाशित होने वाली अंग्रेजी पत्रिका मॉडर्न रिव्यू जैसी गम्भीर पत्रिका है। ... और अभी-अभी एक सहज-सरल व्यक्तित्व, जहां जब मिलते खिल उठ बाहों में भर लेने वाले वयोवृद्ध समालोचक, कई पुस्तकों के लेखक-सम्पादक व छपते-छपते दैनिक के साहित्य सम्पादक **श्रीनिवास शर्मा** भी चले गये जिनके द्वारा सम्पादित छपते-छपते के दीपावली विशेषांक संग्रहणीय हैं।

गीतेश शर्मा पहले ही चले गये जिनकी दमदार आवाज से लगता नहीं था कि वे अभी जायेंगे। 'वैचारिकी' में गीतेशजी का एक लेख 'वियतनाम के हिन्दू मंदिर' प्रकाशित हुआ था, तभी से उनसे विशेष परिचय हुआ। कोलकता की चौरंगी रोड (जवाहरलाल नेहरू रोड) के 10 नम्बर में मेरा आवास और 19वी में पहले तल्ले पर गीतेशजी का अपरिवारीय आवास (परिवार दिल्ली में)। वहीं उनके अखबार 'जनसंसार' 'भारत-वियतनाम सांस्कृतिक संबंध' तथा 'डायलॉग सोसाइटी' का कार्यालय। दरवाजा खुलते ही गुफानुमा गैलेरी जिसमें दोनों तरफ खजुराहो की लोकप्रिय मूर्तियों के बड़े फोटो। हॉलरूम में रवीन्द्रनाथ टैगोर, शरतचन्द्र, नजरुल इस्लाम, प्रेमचंद, राहुल सांकृत्यायन इत्यादि रचनाकारों के साथ भगत सिंह, वियतनाम के क्रांतिकारी राष्ट्रपति हो-ची-मिन्ह इत्यादि के चित्र लगे हैं। वहीं गोष्ठियां होती और रोजाना साहित्यिक अड्डा जमता। गोष्ठियों व अड्डों में गाहे-बगाहे मैं भी जाता। घंटों, कहां किसने क्या लिखा, संस्मरणों, तथ्यों को लेकर बहस एवं निन्दा-स्तुति का दौर चलता, गीतेशजी को संवाद करने एवं जिसे लिखने से लोग बचते हैं उसे लिखने का शौक था। उनकी 24 पुस्तकें प्रकाशित हुई लेकिन उन्होंने जिन विषयों को लेकर तथ्यात्मक लिखा उन्हें छिद्रान्वेषण मानते हुए उन्हें कोई भी लेखक मानने की जोखिम उठाने को तैयार नहीं होता। तथ्य को मुंहफट-पने से कहने के कारण लोग उन्हें अपना मंच देने से भी कतराते थे। कोरोना काल में मैं जयपुर चला गया था। मार्च'21 में कोलकाता आना हुआ और अप्रैल के प्रारम्भ में उनसे मिला। अड्डा लगा जिसमें श्रीनिवास शर्मा, जितेंद्र धीर भी थे। जैसा कि हमेशा होता अड्डे के अंतिम दौर में कुछ काम की बात भी होती। गत दिनों वे उड़ीसा के केंद्रापाड़ा गये थे, मैंने उनसे केंद्रापाड़ा के उत्खनन पर लिखकर देने को कहा। उन्होंने कहा कि इस पर आपको बहुत अच्छा लेख लिखकर दूंगा (जिसे वे फिर लिख नहीं पाये), अभी तो कलकत्ता के हिन्दी जगत पर मेरा यह लेख ले जायें, इसमें घटा-बढ़ी कर सुसम्पादित करने और शीर्षक बदलने तक के लिए आप अधिकृत हैं। 20-25 दिन में उनके पास नहीं जा पाता तो उनका फोन आता-- 'भई ! नाराज हैं क्या ? मैं जिन्दा हूं, मरा नहीं हूं, आये नहीं, कहें तो मैं आ जाऊं।' ... और 6 अगस्त 1932 को जन्मे गीतेशजी 2 मई 2021 को, कोरोना पॉजिटिव होकर सचमुच मर गये। हमारे यहां मरने वाला हर व्यक्ति 'स्वर्गीय' ही होता है, बुरे से बुरा व्यक्ति भी 'नरकीय' नहीं होता। गीतेशजी ईश्वर, स्वर्ग, नर्क को मानते ही नहीं थे, अतः वे स्वर्गीय या नरकीय न होकर केवल मरकर, बिछुड़ गये।

वैचारिकी परिवार की सबको सादर स्मरण के साथ हार्दिक श्रद्धांजलि!

\- सम्पादक

From
BHARATIYA VIDYA MANDIR
12/1, Nellie Sengupta Sarani
Kolkata -700087 (W.B.)

TO

भारतीय सशस्त्र सेनाओं के महासेनापति

जनरल बिपिन रावतजी और उनकी पत्नी श्रीमती मधुलिका रावत
एवं
12 सैन्य अधिकारियों के अकास्मिक निधन पर

वैचारिकी परिवार की भावभीनी श्रद्धांजलि